# कर्मयोगी घनश्यामदास

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

कर्मयोगी

# घनश्यामदास

# कर्मयोगी : घनश्यामदास

घनश्यामदास बिड़ला का प्रामाणिक जीवन-चरित्र

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन, नयी दिल्ली

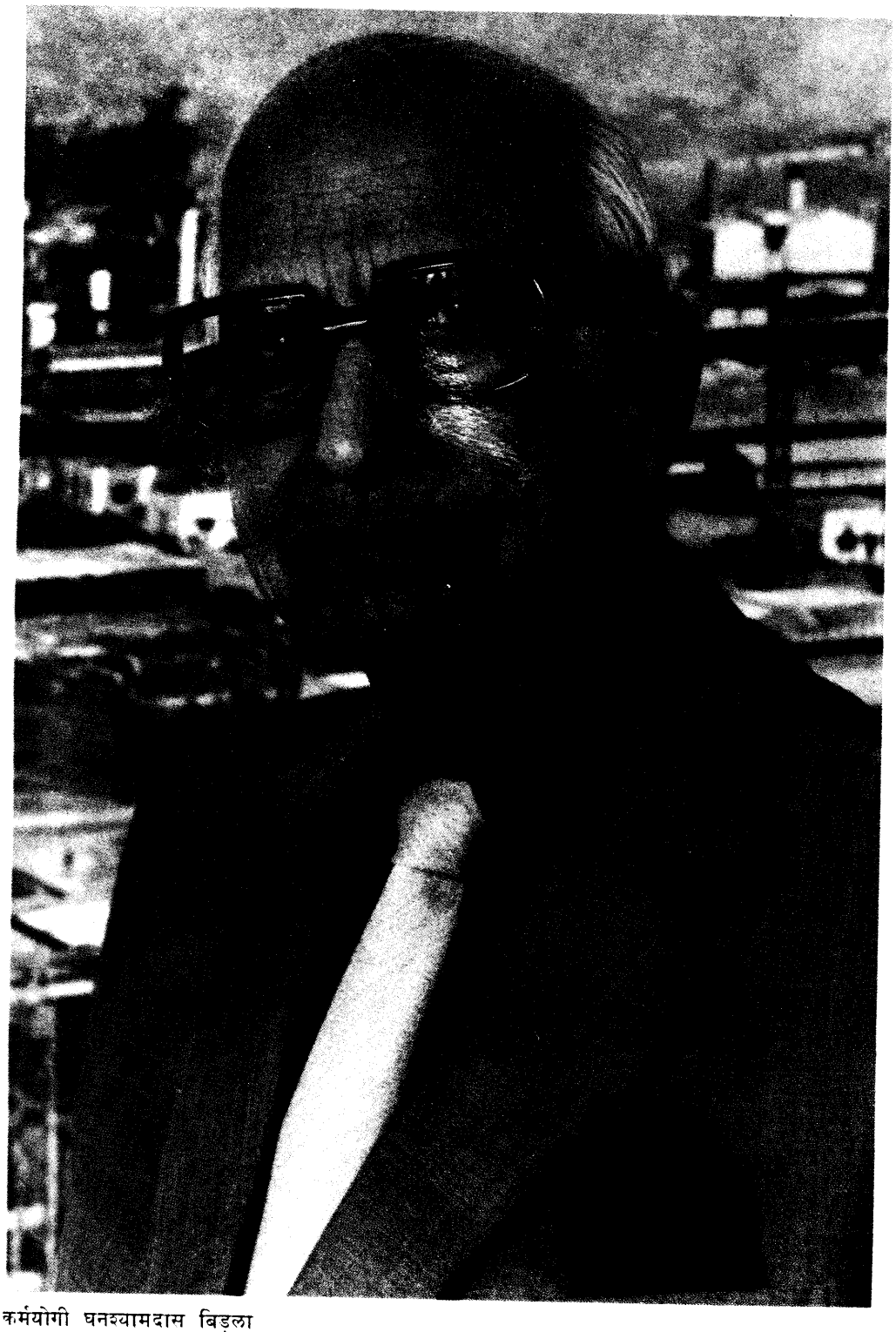

कर्मयोगी घनश्यामदास बिड़ला

अपने पिता के बारे में
बचपन में किसी भी बालक
में उसके भीतर अपने पि
व्याप्त हो जाती हैं। ऐसे
जब मनुष्य इतना सौभाग्य
में ही एक मिथक बन गये थे
व्यक्ति के लिए अतिशयोक्ति
की गरिमा को यदि मैं
साथ न्याय नहीं कर सकूंग

इसलिए जब हिंदुस्ता
मुझसे 'दो शब्द' लिखने क
हुआ, लेकिन जब मुझे कहा
के नाते यह आशा की जाती
सिवाय कोई विकल्प ही नह

मेरे पिताजी ने पंडित
हिंदुस्तान टाइम्स की स्थाप
के बुजुर्ग की तरह सम्मान
तक इसी पद पर रहे, यद्यपि
प्रारंभ से करते रहे। सन

# दो शब्द

अपने पिता के बारे में निष्पक्ष भाव से लिखना किसी भी पुत्र के लिए कठिन है। बचपन में किसी भी बालक के लिए पिता किसी देवता से कम नहीं होता और युवावस्था में उसके भीतर अपने पिता की विशेषताओं और महानताओं की सुखद स्मृतियां व्याप्त हो जाती हैं। ऐसे पिता के बारे में लिखना तब और भी कठिन हो जाता है, जब मनुष्य इतना सौभाग्यशाली हो, जैसा मैं हूं, कि जिसके पिता अपने जीवनकाल में ही एक मिथक बन गये थे। ऐसे मिथकपूर्ण जीवन का सही चित्रण किसी भी अनजान व्यक्ति के लिए अतिशयोक्तिपूर्ण लग सकता है। दूसरी ओर अपने पूजनीय पिताजी की गरिमा को यदि मैं विनम्रतावश कुछ कम बताना चाहूं तो अपने अंत:करण के साथ न्याय नहीं कर सकूंगा।

इसलिए जब हिंदुस्तान टाइम्स के प्रबंधकों ने, जो इस पुस्तक के प्रकाशक हैं, मुझसे 'दो शब्द' लिखने का आग्रह किया तो इन्हीं विचारों के कारण मुझे संकोच हुआ, लेकिन जब मुझे कहा गया कि हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन समूह के अध्यक्ष होने के नाते यह आशा की जाती है कि मैं इस संबंध में कुछ लिखूं, तब मेरे सामने इसके सिवाय कोई विकल्प ही नहीं था कि मैं उनके आग्रह को स्वीकार करूं।

मेरे पिताजी ने पंडित मदन मोहन मालवीय के सहयोग से सन १९२७ में हिंदुस्तान टाइम्स की स्थापना की थी। मालवीयजी, जिनका मेरे पिताजी परिवार के बुजुर्ग की तरह सम्मान करते थे, इस प्रतिष्ठान के अध्यक्ष बने और सन १९४७ तक इसी पद पर रहे, यद्यपि वास्तविक रूप में मेरे पिताजी ही इस कंपनी का निर्देश प्रारंभ से करते रहे। सन १९४७ में मालवीयजी की मृत्यु के बाद पिताजी हिंदुस्तान

टाइम्स के अध्यक्ष बने। सन १९५७ तक वे इसका संचालन करते रहे। बाद में उन्हीं के निर्देशों के अनुसार मैं प्रबंध-मंडल में शामिल हुआ। इस तरह हिंदुस्तान टाइम्स के साथ मेरा सक्रिय संबंध स्थापित हुआ। कई वर्षों तक पिताजी निरंतर यह दबाव डालते रहे कि मैं अध्यक्ष बन जाऊं। अंततः सन १९७० में पिताजी ने इस प्रतिष्ठान के अध्यक्ष-पद से अवकाश ले लिया और मुझे कार्यभार सम्हालना पड़ा।

पिताजी महान व्यक्ति थे––इसलिए नहीं कि पुत्र होने के नाते मैं ऐसा कहता हूं बल्कि इसलिए कि दूसरे लोगों के भी उनके बारे में यही विचार थे। वे श्रेष्ठता, ईमानदारी, साहस, संतुलन और निष्पक्षता की प्रतिमूर्ति थे। इन सबके परे वे कर्मयोगी थे जो विचारों तथा कर्म की शुद्धता पर विश्वास रखते थे।

सन १८९४ में मेरे पिताजी का पिलानी में जन्म हुआ। जब वे बड़े हुए तो उन्होंने अपना व्यापार स्थापित करने के लिए मेरे पितामह से किसी तरह की आर्थिक सहायता नहीं मांगी। दूसरों पर आश्रित होना बचपन में भी उनकी प्रकृति के विरुद्ध था जबकि उन दिनों भी हमारा परिवार अच्छा खाता-पीता माना जाता था और पिताजी सहज ही दादाजी से सहायता मांग सकते थे। एक उद्योगपति अथवा व्यापारी के रूप में वे आत्मनिर्भर व्यक्ति थे।

पिताजी चाहते तो बिना किसी कठिनाई के वही व्यवसाय कर सकते थे, जो मेरे प्रपितामह श्री शिवनारायणजी और पितामह श्री बलदेवदासजी किया करते थे––वस्तुओं का व्यापार––तैयारी और वायदा। निःसंदेह पिताजी ने परंपरागत व्यवसाय से अपना जीवन आरंभ किया, लेकिन वे व्यवसाय के क्षेत्र में एक युवक के लिए जो संभावनाएं उपलब्ध थीं, उनके विषय में बहुत सोचते-समझते रहे। उन्होंने स्थितियों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने के बाद व्यापार को तिलांजलि ही दे दी। वायदे के बाजार में व्यापार करना बहुत अनिश्चित और खतरनाक है। इस काम में आदमी बहुत थोड़े समय में बहुत फायदा भी कर सकता है और रातों-रात कंगाल भी बन सकता है। पिताजी की दृष्टि में यह कोई निश्चित व्यापार नहीं था बल्कि एक तरह का जुआ था। बहुत सोच-समझकर पिताजी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दलाली का धंधा उनके लिए सर्वोत्तम होगा। इसके लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता नहीं थी; जरूरत थी दक्षता की, बाजार के सही अध्ययन की और चीजों की मांग और पूर्ति पर आधारित कीमतों की प्रवृत्तियों के मूल्यांकन की। इसके लिए और आवश्यकता थी मधुर व्यवहार की, स्पष्टवादिता की और उससे भी अधिक, पूर्ण ईमानदारी की। पिताजी में ये सभी गुण बहुतायत से जन्मजात थे।



पहले महीने में ही उ
से मेरे पितामह बहुत प्रसन्न
दलाल के रूप में अपनी धा
थ और उन्हें सामान्य अर्थव
विचार भी उपयुक्त ढंग से
में भी पिताजी का एक
भारतीय और विदेशी दोनों

मैंने पिताजी से संबंधि
करने के तुरंत बाद घटी
निर्मल ईमानदारी का पत
से वे मिला करते थे। वे
और दूरदर्शिता से प्रभावि
बोरे और हैशियन उसी
बहुत से व्यापारियों से
जितना माल बेचने के लि
अपने आसामी को सूचित
कीमत भी बता दी। एक
भेजे गये तो मैनेजर यह
बतायी थीं, उससे कहीं ऊं
किया और पूछा कि उन्ह
की बिक्री कैसे हुई? पि
सावधानीपूर्वक अध्ययन कि
बतायी गयी कीमत पर बे
आसामी की चिंता दूर क
जबकि अपने आसामी को
की बजाय बुद्धिमत्तापूर्ण म
को अधिक कीमत दिलाने
होकर प्रबंधक ने पूछा––
जाती तो क्या होता? पि
को बरदाश्त करते। इस

पहले महीने में ही उन्हें धारणा से अत्यधिक आय हुई। अपने पुत्र की सफलता से मेरे पितामह बहुत प्रसन्न हुए। थोड़े ही समय में पिताजी ने एक प्रमुख और विशिष्ट दलाल के रूप में अपनी धाक जमा ली। उन दिनों अधिकांश दलाल अर्द्धशिक्षित होते थे और उन्हें सामान्य अर्थव्यवस्था के बारे में कोई जानकारी नहीं होती थी। वे अपने विचार भी उपयुक्त ढंग से व्यक्त नहीं कर पाते थे। दूसरी ओर उस छोटी-सी आयु में भी पिताजी का एक बुद्धिजीवी की तरह विकास हो रहा था। फलतः उन्होंने भारतीय और विदेशी दोनों व्यावसायिक समुदायों से सम्मान अर्जित किया।

मैंने पिताजी से संबंधित एक दिलचस्प घटना सुनी है। यह उनके व्यवसाय शुरू करने के तुरंत बाद घटी थी। इस घटना से उनकी व्यावसायिक दूरदर्शिता और निर्मल ईमानदारी का पता चलता है। दलाल के रूप में जूट मिलों के कई प्रबंधकों से वे मिला करते थे। वे सब उनके सौजन्यपूर्ण व्यवहार, ईमानदारी, ज्ञान, योग्यता और दूरदर्शिता से प्रभावित थे। एक दिन पिताजी को उनके एक आसामी ने कुछ बोरे और हैशियन उसी दिन शाम होने से पहले बेचने के लिए कहा। पिताजी ने बहुत से व्यापारियों से बातचीत की और स्थिति का लेखा-जोखा करने के बाद जितना माल बेचने के लिए कहा गया था, उसका कुछ हिस्सा ही बेचा। परंतु उन्होंने अपने आसामी को सूचित कर दिया कि सारा माल बेच दिया गया है और उसकी कीमत भी बता दी। एक-दो दिन बाद जब कंपनी को वास्तविक बिक्री के मसविदे भेजे गये तो मैनेजर यह जानकर आश्चर्यचकित हो गया कि पिताजी ने जो कीमतें बतायी थीं, उससे कहीं ऊंची कीमत पर माल बेचा गया था। उसने पिताजी से संपर्क किया और पूछा कि उन्होंने जो कीमतें बतायी थीं, उनसे अधिक कीमत पर माल की बिक्री कैसे हुई? पिताजी ने उत्तर दिया कि उन्होंने बाजार की स्थिति का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया था और उन्हें विश्वास हो गया था कि वे सारा माल पहले बतायी गयी कीमत पर बेचने में सफल हो सकेंगे। सारा माल जल्दी बेचने की अपने आसामी की चिंता दूर करने के लिए उन्होंने कह दिया कि सारा माल बिक गया है, जबकि अपने आसामी को अच्छी कीमत दिलाने के लिए उन्होंने एकाएक माल बेचने की बजाय बुद्धिमत्तापूर्ण माल बेचने की नीति अपनायी। इस कारण वे अपने आसामी को अधिक कीमत दिलाने में सफल हो सके। उनकी बातों से प्रभावित और प्रसन्न होकर प्रबंधक ने पूछा--यदि इस सौदे की खबर देने के बाद बाजार में कीमत घट जाती तो क्या होता? पिताजी ने उत्तर दिया कि ऐसी स्थिति में वे स्वयं उस घाटे को बरदाश्त करते। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि वस्तुएं ज्यादा कीमतों पर बेची

जातीं तो उसका लाभ आसामी को मिलता, परंतु गिरी हुई कीमतों पर यदि माल बिकता तो पिताजी घाटा उठाने को तैयार थे । प्रबंधक उनकी ईमानदारी, योग्यता और अपने आसामी के हितों की सुरक्षा के प्रति उनकी भावना से बहुत प्रभावित हुआ । इस घटना की चर्चा तुरंत चारों ओर फैल गयी और पिताजी के सारे आसामियों को उन पर अटूट श्रद्धा हो गयी ।

कुछ दिन दलाली का काम करने के बाद उस दिन उन्होंने अपने को बहुत अपमानित महसूस किया जिस दिन उन्हें कहा गया कि वे उस लिफ्ट में नहीं जा सकते जिसमें कोई गोरा हो । इस घटना के बाद दलाली के रूप में काम करना उनके लिए असहनीय हो गया । उसी समय उन्होंने दलाली का धंधा छोड़कर उद्योग के क्षेत्र में प्रवेश करने का निर्णय किया ।

वैसे भी बहुत समय से पिताजी कोई उद्योग आरंभ करने के विषय में सोच रहे थे । लिफ्ट वाली घटना ने आग में घी का काम किया और उन्हें जल्दी निर्णय लेने को बाध्य कर दिया । उनका लगाव उद्योग के प्रति इसलिए था कि उद्योग का अर्थ है समृद्धि का सृजन । यह उनकी रुचि का काम था । परिणाम-स्वरूप सन १९१८ में केवल २५ वर्ष की आयु में पिताजी ने उद्योग के क्षेत्र में प्रवेश किया। समय पाकर परिवार के अन्य सदस्यों ने भी उन्हीं के पथ पर चलना शुरू किया । इस प्रकार ६० वर्षों से अधिक व्यापार करने के उपरांत हमारे परिवार ने उद्योग क्षेत्र में प्रवेश किया ।

अनेक गतिविधियों में से व्यवसाय पिताजी की केवल एक गतिविधि थी । उन जैसे श्रेष्ठ और आदर्शवादी व्यक्ति के लिए पैसा ही सब-कुछ नहीं था। उन्होंने हमेशा जीवन के उच्च मूल्यों की कामना की । बहुत कम आयु में ही उन्होंने भगवद्गीता का गहन अध्ययन किया और उससे वे बहुत प्रभावित हुए । जीवनभर वे गीता में बताये हुए कर्मयोग के दर्शन का अनुसरण करते रहे । उपनिषदों का भी उन्होंने गहन अध्ययन किया । वे वाल्मीकि रामायण और तुलसीदास के 'रामचरित मानस' से भी बहुत प्रभावित थे । जब कभी उन्हें भाषण देना होता या कभी वे निजी तौर पर बातचीत करते तब भी इन्हीं पुस्तकों से अक्सर वे उद्धरण दिया करते थे । लेकिन गीता उनके लिए मुख्य मार्गदर्शक थी । उन्होंने पाया कि उपनिषदों और अन्य ग्रंथों में जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है, गीता उनका सारतत्त्व है । गीता में वे अपनी सारी समस्याओं का हल पाते थे ।

पिताजी ने अपने जीवन में हमेशा नैतिक मूल्यों को महत्त्व दिया, जैसे सात्विकता, निश्छलता और विशेषकर सत्यनिष्ठा । मुझे एक घटना का स्मरण आता है । तब मैं



बहुत छोटा था और कलब
और चित्रकला कक्षा में प
पिताजी की बहुत रुचि थी
मुझे और मेरे चचेरे भाई
किया ।

एक दिन स्कूल के चि
दिया। हम लोगों ने अप
दिखाया । हमारे निजी अ
जाये तो उस रेखाचित्र में
अपने रेखाचित्र को स्कूल
द्वारा बनाये हुए इतने अच
नहीं था कि इस चित्र में ब
कक्षा के सारे विद्यार्थियों
बहुत ईर्ष्या हुई ।

घर आकर हमने बहु
काम की स्कूल में प्रशंसा
लिए हमने अपनी सफलता
बहुत क्रोधित हुए और दुख
कम न था । उन्होंने हमें
सब-कुछ बता दें । हम ल
जाएं । हमने यह भी वच
अपनी बात पर अड़े रहे ।
के साथ हम दोनों को मुख्य
उनके सामने सब-कुछ स्वी
कामों के लिए हमें क्षमा
उन्होंने कहा कि अपने जी
अभिभावक ने अपने लड़के
किया हो। इसके बाद उन
है । इस घटना के बाद बच
दारी सफलता की कुंजी

बहुत छोटा था और कलकत्ता के हेयर स्कूल में पढ़ता था। मैं आठवीं क्लास में था और चित्रकला कक्षा में पढ़ाये जाने वाले विषयों में एक थी । ललित कलाओं में पिताजी की बहुत रुचि थी। उन्हें जब पता लगा कि चित्रकला मेरा एक विषय है तब मुझे और मेरे चचेरे भाई को चित्रकला पढ़ाने के लिए एक विशेष अध्यापक नियुक्त किया ।

एक दिन स्कूल के चित्रकला पढ़ाने वाले शिक्षक ने हमें घर के लिए कुछ काम दिया। हम लोगों ने अपना काम पूरा किया और उसे अपने निजी अध्यापक को दिखाया । हमारे निजी अध्यापक ने उसमें बहुत-से परिवर्तन किये। यदि सच कहा जाये तो उस रेखाचित्र में उनका योगदान हम लोगों से कहीं अधिक था। जब हमने अपने रेखाचित्र को स्कूल के शिक्षक को दिखाया तो उन्हें मेरे और मेरे चचेरे भाई द्वारा बनाये हुए इतने अच्छे चित्रों को देखकर सुखद आश्चर्य हुआ । उन्हें यह पता नहीं था कि इस चित्र में बहुत-से परिवर्तन हमारे निजी अध्यापक ने किये थे। उन्होंने कक्षा के सारे विद्यार्थियों के सामने हम दोनों की बहुत प्रशंसा की, दूसरे लड़कों को बहुत ईर्ष्या हुई ।

घर आकर हमने बहुत प्रसन्नता से पिताजी को बताया कि किस तरह हमारे काम की स्कूल में प्रशंसा की गयी । पिताजी पर अपनी बुद्धिमानी की धाक जमाने के लिए हमने अपनी सफलता के रहस्य की बात गर्व से उन्हें बतायी । यह सुनकर पिताजी बहुत क्रोधित हुए और दुखी भी । उन्होंने कहा कि हमने जो कुछ किया, वह धोखे से कम न था । उन्होंने हमें निर्देश दिया कि हम स्कूल जाकर अपने मुख्याध्यापक को सब-कुछ बता दें । हम लज्जित हुए और उनसे याचना की कि वे इस घटना को भूल जाएं । हमने यह भी वचन दिया कि भविष्य में ऐसा नहीं होगा । लेकिन पिताजी अपनी बात पर अड़े रहे । दूसरे दिन उन्होंने हमारे आफिस के एक उच्च-अधिकारी के साथ हम दोनों को मुख्याध्यापक के पास स्कूल भिजवाया । भय से कांपते हुए हमने उनके सामने सब-कुछ स्वीकार कर लिया । मुख्याध्यापक भले थे, उन्होंने हमारे गलत कामों के लिए हमें क्षमा कर दिया और हमारे पिताजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की । उन्होंने कहा कि अपने जीवन में उन्हें ऐसा कभी देखने को नहीं मिला जहां किसी अभिभावक ने अपने लड़के को इस तरह अपनी गलती स्वीकार करने के लिए मजबूर किया हो। इसके बाद उन्होंने कहा कि केवल एक महान व्यक्ति ही ऐसा कर सकता है। इस घटना के बाद बचपन में ही हमें इस कहावत की सचाई पता लग गयी, 'ईमानदारी सफलता की कुंजी है' ।

एक पुस्तक भगवद्गीता और एक व्यक्ति गांधीजी ने मेरे पिताजी के जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया। पिताजी की गांधीजी से पहली मुलाकात २२ वर्ष की आयु में सन १९१५ में कलकत्ता में हुई थी। उस समय तक दक्षिण अफ्रीका के गोरों के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन में अहिंसा और असहयोग के एक नये राजनैतिक सिद्धांत का प्रतिपादन करके गांधीजी ने प्रतिष्ठा अर्जित कर ली थी। पहली ही भेंट में गांधीजी ने पिताजी को अत्यधिक प्रभावित किया। पिताजी को लगा, जैसे गांधीजी इस दुनिया के पुरुष नहीं हैं। ऐसे व्यक्ति से अब तक उनकी भेंट नहीं हुई। पिताजी उनकी पवित्र निष्ठा, बाल-सुलभ निश्छलता और उदात्त नैतिकता से बहुत प्रभावित हुए। उन्हें गांधीजी के चारों ओर एक आध्यात्मिक प्रकाशपुंज दिखायी दिया। गांधीजी भी अपने इस युवा प्रशंसक से प्रभावित हुए। गांधीजी में मनुष्य को पहचानने की अद्भुत शक्ति थी, उन्होंने अनुभव किया कि पिताजी कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। उन्हें लगा, ऐसे चरित्र वाले और सात्विक व्यक्ति बहुत कम होते हैं जिनके सामने खुलकर वे अपने विचार और दृष्टिकोण रख सकते हैं। वास्तव में उन्होंने ऐसा किया भी। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति में पिताजी का इसीलिए महत्वपूर्ण योगदान रहा।

कलकत्ता की पहली भेंट में पिताजी ने गांधीजी से पूछा कि क्या वे उनके पत्रों का उत्तर देंगे। गांधीजी ने 'हां' भरी। पिताजी ने गांधीजी को जिज्ञासावश पत्र लिखा, केवल यह परखने के लिए कि गांधीजी अपने वचन का पालन करते हैं या नहीं। उन्हें तुरंत गांधीजी का उत्तर मिला, जो अपने आप में विशिष्ट था। लंबे पत्र लिखने वाले नेताओं से भिन्न गांधीजी ने केवल एक पोस्टकार्ड भेजा! पत्र छोटा था लेकिन उसका प्रत्येक शब्द नपा-तुला था। इस तरह उसमें शब्द, जगह और खर्च की बचत थी। पिताजी अत्यधिक प्रभावित हुए।

शीघ्र ही यह पहचान घनिष्ठता में बदल गयी और घनिष्ठता पिता और पुत्र के संबंधों में परिवर्तित हो गयी। पिताजी और गांधीजी के बीच किसी तरह की औपचारिकता नहीं थी। वे एक-दूसरे से निःसंकोच बात करते थे। गांधीजी की उपस्थिति में पिताजी अपने को अत्यंत सहज महसूस करते थे। वे उनसे बहुत-सी बातें पूछा करते थे और बिना हिचक के अपनी बात पर जोरदार बहस भी करते थे। पूरी तरह से संतुष्ट होने के बाद ही वे गांधीजी की बात को स्वीकार करते थे। कई बार पिताजी के विचारों से प्रभावित होकर गांधीजी भी अपने विचार बदल लेते थे। इसीलिए सन १९२४ में गांधीजी ने एक पत्र में उन्हें अपना 'परामर्शदाता' स्वीकार किया।



आर्थिक विषयों पर पि
आर्थिक विचारों से कभी-कभ
का बहुत सम्मान करते थे
भाग लेने के लिए लंदन गये
में किस तरह की आर्थिक नी
गांधीजी के उन पर आस्था

जैसा पहले कहा जा चु
और ये संबंध निरंतर ३०
रहे। गांधीजी के संपर्क में
गांधीजी की रचनात्मक यो
थे। उनकी उन योजनाओं
क्षेत्र में प्रयोग और आश्रम
चाहा, उन्होंने कभी इंकार

२९ जनवरी १९४८
उस समय उत्तर प्रदेश के
श्रीकृष्णचंद्र पंत---राजा---
दिल्ली में ठहरे हुए थे और
था। उन्होंने पिलानी जाने
हमें गांधीजी की हत्या का स

उस रात पिताजी ने ए
उन्होंने कहा कि यह अच्छा
उनकी हत्या के पीछे एक
की और फिर कहा कि अब
संस्कार के लिए ले जाएंगे,
गये। पिताजी चौंककर उठ
अनुभव ?

गांधीजी के सिवाय ए
पता था, लेकिन जिसने पि
जब उनकी मृत्यु हुई तब मैं
स्मरण है। लेकिन सभी कह

आर्थिक विषयों पर पिताजी के अपने स्वतंत्र विचार थे। यद्यपि पिताजी के आर्थिक विचारों से कभी-कभी गांधीजी सहमत नहीं होते थे तब भी वे उनके विचारों का बहुत सम्मान करते थे। इसी कारण जब गांधीजी द्वितीय गोलमेज परिषद में भाग लेने के लिए लंदन गये तो उन्होंने पिताजी से कहा कि ब्रिटेन को भारत के हित में किस तरह की आर्थिक नीति अपनानी चाहिए, इस विषय में वे पहल करें। यह गांधीजी के उन पर आस्था और विश्वास का प्रमाण था।

जैसा पहले कहा जा चुका है पिताजी सन १९१५ से गांधीजी के संपर्क में आये और ये संबंध निरंतर ३० जनवरी १९४८ तक, जब तक गांधीजी जीवित रहे, बने रहे। गांधीजी के संपर्क में आने के बाद पिताजी के संबंध उनसे गहरे होते गये। गांधीजी की रचनात्मक योजनाओं के लिए पिताजी आर्थिक सहायता किया करते थे। उनकी उन योजनाओं में खादी को लोकप्रिय बनाना, हरिजन उद्धार, शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग और आश्रम का व्यय आदि शामिल थे। पिताजी से गांधीजी ने जब जो चाहा, उन्होंने कभी इंकार नहीं किया।

२९ जनवरी १९४८ को पिताजी पिलानी गये। मैं भी उनके साथ था। हम उस समय उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पंडित गोविन्द वल्लभ पंत और उनके पुत्र श्रीकृष्णचंद्र पंत--राजा--को लेकर पिलानी गये। उस समय गांधीजी बिड़ला हाउस दिल्ली में ठहरे हुए थे और पिताजी को उन्हें छोड़कर जाना अच्छा नहीं लग रहा था। उन्होंने पिलानी जाने के लिए गांधीजी से दो दिन की छुट्टी ली। पिलानी में ही हमें गांधीजी की हत्या का समाचार मिला। हम तुरंत दिल्ली वापस आ गये।

उस रात पिताजी ने एक विचित्र स्वप्न देखा। उन्हें गांधीजी दिखायी दिये और उन्होंने कहा कि यह अच्छा हुआ कि तुम दिल्ली लौट आये हो। गांधीजी ने कहा कि उनकी हत्या के पीछे एक गहरा षड्यंत्र है। कुछ देर उन्होंने पिताजी से बातचीत की और फिर कहा कि अब समय आ गया है जब लोग उनके पार्थिव शरीर को अंतिम संस्कार के लिए ले जाएंगे, इसलिए वे अब फिर लेट रहे हैं। यह कहकर गांधीजी लेट गये। पिताजी चौंककर उठ बैठे। वे हतप्रभ थे। क्या वह स्वप्न था अथवा असली अनुभव ?

गांधीजी के सिवाय एक और व्यक्ति, जिसके बारे में बाहरी दुनिया को कम पता था, लेकिन जिसने पिताजी पर बहुत प्रभाव छोड़ा, वे थीं मेरी मां--महादेवीजी। जब उनकी मृत्यु हुई तब मैं मात्र सात वर्ष का बालक था। उनके विषय में मुझे कम स्मरण है। लेकिन सभी कहते हैं कि वे बहुत सात्विक स्वभाव की महिला थीं।

पिताजी की आयु केवल ३३ वर्ष की थी जब मां का देहांत हुआ। उस समय वे केवल २६ वर्ष की थीं। दोनों अपने पूर्ण युवाकाल में थे। मां का देहांत तपेदिक से हुआ। उन दिनों इस बीमारी का कोई इलाज नहीं था। पिताजी ने मां की बहुत सेवा की, यद्यपि वे जानते थे कि उन्हें बचाना कठिन है। धीरे-धीरे मां और कृश होती गयीं। फिर वह अंतिम दिन भी आ गया। वह मर्मस्पर्शी दृश्य था। मां के अंतिम समय में पिताजी उनके समीप थे। अंत तक मां चेतन थीं। उन्होंने पिताजी से कहा कि अब कुछ ही क्षणों में उनकी मृत्यु होने जा रही है। उन्हें इस बात का खेद था कि अपनी बीमारी के कारण वे अपने पति और बच्चों के लिए अधिक कुछ न कर सकीं। पिताजी ने, जो मेरी मां से बहुत प्रेम करते थे, उनके सिर पर हाथ रखा। उन्होंने उन्हें सांत्वना दी और कहा कि वे उनके बहुत ऋणी हैं। उन्होंने कहा कि मृत्यु के बाद वे जहां भी रहें, पिताजी को अपनी शुभाकांक्षाएं और बच्चों को आशीर्वाद देती रहें, इतना ही पर्याप्त होगा। मां को सांत्वना मिली और उन्होंने शांतिपूर्वक प्राण त्याग दिये।

जहां एक ओर मां का पिताजी से बेहद लगाव था, दूसरी ओर वे भी उन्हें उतना ही चाहते थे। उन दिनों पिताजी जैसे युवा पुरुष के लिए दूसरा विवाह करना आम-रीति थी। यह उस समय की सामान्य सामाजिक परंपरा थी। मां की मृत्यु के बाद पिताजी ने दृढ़तापूर्वक निश्चय किया कि वे फिर विवाह नहीं करेंगे। सभी के लिए यह आश्चर्य की बात थी। उनके बहुत-से मित्रों और शुभाकांक्षियों ने तथा मेरे दादा-दादी ने भी उन्हें यही सलाह दी कि उन्हें अपने लिए न सही तो अपने छोटे बच्चों के लिए ही, फिर से विवाह कर लेना चाहिए। मैं तब केवल सात वर्ष का नन्हा बालक था। छोटा भाई बसंतकुमार पांच वर्ष का था। मेरी दो छोटी बहनें थीं और उनमें छोटी शांति दो वर्ष की भी नहीं हुई थी। पिताजी ने फिर से विवाह करने के लिए जितनी भी दलीलें थीं, सब अस्वीकार कर दीं। यद्यपि उन्होंने यह कभी व्यक्त नहीं किया, लेकिन सभी जानते थे कि उनके हृदय में मां का स्थान और किसी के लिए लेना संभव नहीं था। जो एक रीतापन वे छोड़ गयीं, वह कभी भरा नहीं जा सकता था। पिताजी ने इस दुख को बहुत संतुलन और धैर्य के साथ सहन किया।

पिताजी की मृत्यु ८९ वर्ष की आयु में हुई। इस तरह मां की मृत्यु के बाद ५६ वर्ष उन्होंने एकाकी जीवन बिताया। हमारा परिवार बहुत बड़ा था। इसके बावजूद पिताजी कभी मां को नहीं भूले। जब कभी उनके बारे में बात चलती तो पिताजी मां की निष्ठा, उदारता और परोपकार की कहानियां बहुत चाव और संवेदनशीलता

से सुनाया करते थे। वास्तव में मां की यही विशेषताएं थीं जिनकी पिताजी बहुत प्रेम से प्रशंसा किया करते थे। उन्हीं विशेषताओं ने उनके जीवन को प्रभावित भी किया।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में पिताजी निरंतर मां के बारे में सोचते रहते थे। मुझे एक मर्मस्पर्शी घटना याद आती है--दिल्ली के उस मकान में जहां पिताजी रहते थे, मां का फ्रेम किया हुआ एक चित्र दीवार पर टंगा था। यह चित्र उस सोफे के पीछे लगा था जिस पर अक्सर पिताजी बैठा करते थे। एक दिन मेरे छोटे भाई बसंतकुमार की पत्नी सरला देवी ने सोचा कि वह चित्र सामने की दीवार पर अधिक अच्छा दिखेगा। उन्होंने इसलिए उस चित्र को वहां से हटाकर सामने लगा दिया। जब पिताजी ने देखा कि चित्र उनके सामने लगा है तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सरला की सराहना की कि पीछे लगे रहने की अपेक्षा उस चित्र को उसने सामने लगा दिया। उन्होंने सरला और कई अन्य लोगों से कहा कि अब वे अपनी पत्नी का चित्र बराबर देख सकते हैं, इसलिए उन्हें अकेलापन महसूस नहीं होगा। उन्होंने बताया कि जब कभी उन्हें अकेलापन महसूस होगा, वे चित्र में अपनी पत्नी का चेहरा देख लेंगे, वह पर्याप्त होगा। कुछ लोगों का विश्वास था कि पिताजी के अंतिम वर्षों में मेरी मां अदृश्य रूप से उनके समीप थीं।

पिताजी के हृदय में मां की याद निरंतर बनी रही। मां की मृत्यु के बाद उनके जीवन में व्यग्रता आ गयी। यह व्यग्रता जीवन पर्यंत पिताजी के स्वभाव में स्पष्ट रूप से झलकती रही। परिणामों को शीघ्र प्राप्त करने की आतुरता उनकी इसी व्यग्रता का उदाहरण है। लेकिन एक तरह से इसका परिणाम अच्छा भी हुआ क्योंकि उनके समस्त अधिकारियों ने यह जान लिया था कि पिताजी चाहते थे कि काम शीघ्र पूरे कर दिये जाएं। अधिकारी यह भी जान गये कि यदि काम शीघ्रता से नहीं हुए तो वे इसके लिए बहाना सुनने को तैयार नहीं होंगे। उनकी आंतरिक अशांति एक दूसरी दिशा में भी स्पष्ट रूप से झलकती थी। मां की मृत्यु के बाद वे किसी एक स्थान पर बहुत समय तक नहीं ठहर सके। वे निरंतर भ्रमण करते रहे। वे मां को कभी भी नहीं भूल पाये। उनकी याद हमेशा उनके हृदय में बनी रही।

पिताजी अपने बच्चों से हमेशा प्यार करते थे। मां की मृत्यु के बाद वे हम सबसे और अधिक प्रेम करने लगे। यहां भी उनकी श्रेष्ठता सहज ही देखी जा सकती थी। मुझे एक घटना याद आती है। पिताजी ने एक बार मेरे छोटे भाई बसंतकुमार को सुपारी खाते देखा। पिताजी ने बहुत वात्सल्यपूर्वक उसे समझाया कि सुपारी नहीं

खानी चाहिए क्योंकि बच्चों के लिए सुपारी खाना अच्छा नहीं है। ६ वर्ष के सरल-हृदय बालक बसंतकुमार ने पिताजी से पूछा था कि यदि ऐसा है तो फिर वे क्यों सुपारी खाते हैं ? पिताजी ने उसी क्षण सुपारी खाना बंद कर दिया और तब तक सुपारी नहीं खायी जब तक बसंतकुमार बड़ा नहीं हो गया। आदर्श पुरुष वही है, जिसका व्यवहार आदर्शमय हो।

पिताजी बहुत साहसी वृत्ति के व्यक्ति थे, लेकिन जब भी ऐसा कोई अवसर आता कि किसी भी बच्चे को कोई परेशानी उठानी पड़ती तो वे बहुत चिंतित हो जाते थे। कई बार तो वे विक्षुब्ध भी हो उठते थे। इसका क्या कारण हो सकता है ? मेरे विचार से कारण यह था : जब हमारी मां की मृत्यु हुई तो हम-सब भाई-बहन बहुत छोटे थे। इसलिए मां की मृत्यु के बाद पिताजी का सारा प्रेम हमारी ओर केन्द्रित हो गया। वे अपने बच्चों के लिए मां और पिता दोनों ही थे। जब कभी हमें कोई कठिनाई होती तो पिताजी के स्वभाव में मां की ममता उमड़ पड़ती थी और वे जरूरत से ज्यादा ध्यान देने लगते थे।

महात्मा गांधी की हत्या के बाद की एक घटना मुझे याद आती है। जब बिड़ला हाउस से गांधीजी की शव-यात्रा चली तो इतनी ज्यादा भीड़ इकट्ठी हो गयी थी कि सारे प्रबंध लगभग बेकार हो गये। पिताजी शव-यात्रा में सम्मिलित होने के लिए बहुत बेचैन थे। उन्होंने बहुत प्रयत्न किये लेकिन इसमें शामिल होने की होड़ में लोगों ने उन्हें धक्का देकर एक किनारे कर दिया। पिताजी ने कई बार प्रयत्न किये लेकिन जब सब व्यर्थ हुए, तब उन्होंने जाने का विचार छोड़ दिया और वापस आ गये। मेरी भी इच्छा गांधीजी की इस अंतिम यात्रा में शामिल होने की थी। इसलिए पिताजी को बिना सूचना दिये मैं चुपचाप खिसक गया और भीड़ में शामिल हो गया। मुझे पता था कि पिताजी से यदि मैंने आज्ञा मांगी तो पैत्रिक स्नेह के कारण वे फौरन इंकार कर देंगे। मैंने केवल यही किया कि पुराने बिड़ला हाउस के अपने नौकरों को बता दिया कि मैं शव-यात्रा में जा रहा हूं। तब मैं ३० वर्ष का बलिष्ठ युवक था और मैं धक्का खाने के लिए तैयार था और इसके लिए भी तत्पर था कि यदि मौका आ जाये और कोई मुझे धक्का दे तो मैं भी उसको उसी तरह धकिया दूं।

शव-यात्रा बिड़ला हाउस से आरंभ हुई और विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़कर हर आदमी को पैदल चलना पड़ा। मैं विशिष्ट व्यक्ति नहीं था, इसलिए मुझे पूरे रास्ते राजघाट तक पैदल चलना पड़ा। जब चिता में अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी गयी तो जो लोग पूरे दिन से काम में लगे थे और थक गये थे, अपने घर वापस जाने लगे। मैं भी

तुरंत घर की ओर चल पड़ा। मैंने एक सहायक को निर्देश दिया था कि वह एक विशिष्ट स्थान पर मोटर भिजवा दे ताकि मैं मोटर से वापस आ सकूं। लेकिन जिस आदमी से मैंने यह कहा था, उसने दो रातें बिना सोये बितायी थीं। इसलिए जैसे ही शव-यात्रा बिड़ला हाउस से रवाना हुई, वह सो गया और यह भूल गया कि उसे मेरे लिए गाड़ी भिजवानी है। बहुत खोज करने के बाद मुझे निराशा ही हाथ लगी और मैंने देखा कि वहां मेरे लिए कोई गाड़ी नहीं है। अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था कि मैं पैदल ही घर लौटूं। लौटते समय विदर्भ के विख्यात नेता और मेरे छोटे भाई वसंतकुमार के श्वसुर श्री ब्रिजलाल बियाणी ने देखा कि मैं थका हुआ धीरे-धीरे अकेले घर वापस जा रहा हूं। वे मुझसे बहुत प्रेम करते थे। मेरी स्थिति से चिंतित होकर वे भी अपने एक सहयोगी सहित मेरे साथ शामिल हो गये। सारा रास्ता हमने पैदल ही तय किया। केवल थोड़ी दूर के लिए हमें एक तांगा मिल गया था। जब हम बिड़ला हाउस पहुंचे तब काफी देर हो चुकी थी। पिताजी को कर्मचारियों से यह सूचना मिल चुकी थी कि मैं शव-यात्रा में गया हूं। लेकिन जब काफी देर हो गयी और मैं वापस नहीं लौटा तो उन्हें मेरी सुरक्षा के संबंध में चिंता हुई। किसी ने उन्हें बताया कि आकाशवाणी ने यह घोषणा की है कि शव-यात्रा में भगदड़ मच जाने के कारण बहुत से लोग घायल हो गये हैं। इससे पिताजी और भी चिंतित हो गये। उन्होंने तुरंत बहुत-से लोगों को विभिन्न अस्पतालों में यह पता करने भिजवाया कि मैं भी कहीं दाखिल तो नहीं हूं। पिताजी स्वयं बिड़ला हाउस के द्वार पर मित्रों और कर्मचारियों सहित खड़े आतुरतापूर्वक मेरी प्रतीक्षा करने लगे। मैं जैसे-तैसे जब बिड़ला हाउस पहुंचा तो पूरे दिन मुझे जो परेशानियां हुई थीं, उन पर हमदर्दी दिखाने की जगह मेरी भर्त्सना की गयी और तीखे उपदेश दिये गये। ब्रिजलालजी को भी पिताजी के उपदेश सुनने पड़े, यद्यपि उनका कोई दोष नहीं था। जहां अपने पुत्र की सुरक्षा के लिए पिता की ममता सामने आ जाती है, वहां किसी भी तर्क का स्थान नहीं था। बाद में मुझे बताया गया कि पिताजी बिड़ला हाउस के मुख्य द्वार पर खड़े चिंतातुर अपलक मेरा रास्ता दो घंटे से देख रहे थे।

**साहस और निर्भीकता** पिताजी के चरित्र की विशेषताएं थीं। सन १९२० के दशक में कलकत्ता में दंगे हुए जिसमें सैकड़ों हिंदू और मुसलमान मारे गये। उस समय पिताजी भरी जवानी में थे। उन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर कई मोहल्लों का भ्रमण किया। उन्होंने मुसलिम-बहुल क्षेत्रों से हिंदुओं की रक्षा की और मुसलमानों की हिंदू क्षेत्रों से। हिंदू और मुसलमान दोनों ने पिताजी का आभार

माना और उनके साहस के लिए कृतज्ञता व्यक्त की। साहस के ऐसे काम वे जीवन-भर करते रहे।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए, सन १९४२ में कांग्रेस वर्किंग कमेटी द्वारा 'भारत छोड़ो आंदोलन' पर बहस हो रही थी। 'भारत छोड़ो आंदोलन' का प्रस्ताव बंबई के बिड़ला हाउस में स्वीकृत किया गया था। उस समय पिताजी और मेरे ताऊ श्रीरामेश्वरदासजी दोनों बंबई में थे, गांधीजी हमारे यहां ही ठहरे हुए थे। पिताजी को अंग्रेज किसी तरह परेशान न करें, इस विचार से गांधीजी बिड़ला हाउस छोड़कर जाना चाहते थे और वह प्रस्ताव कहीं और स्वीकृत कराना चाहते थे। पिताजी ने उनकी एक नहीं सुनी। उन्होंने गांधीजी से कहा कि उन्हें इसका तनिक भी भय नहीं है कि इसके परिणाम क्या होंगे और गांधीजी को बिड़ला हाउस में ही रहना होगा। अंततोगत्वा वह प्रस्ताव ८ अगस्त, १९४२ को बिड़ला हाउस में स्वीकृत हो गया। दूसरे दिन ९ अगस्त को गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया।

यह उनके साहस का ही परिणाम था कि ८८ वर्ष की आयु में भी पिताजी पैदल केदारनाथ की यात्रा कर सके, जबकि मेरे छोटे भाई वसंतकुमार और उसकी पत्नी सरला ने उन्हें पैदल यात्रा करने से बहुत रोका।

पिताजी जैसे-जैसे वृद्ध होते गये, उनकी प्रतिष्ठा वैसे-वैसे ही बढ़ती गयी। उन्हें सभी समुदायों के लोगों से आदर मिला—व्यवसायी, राजनेता, प्रतिष्ठानों के कर्मचारी और अधिकारी, गरीब और जरूरतमंद। पिताजी मृत्युपर्यंत लगातार एक कर्मयोगी की तरह काम करते रहे। वे सुबह १०.३० बजे कार्यालय पहुंच जाते थे और शाम ४ बजे तक काम करते थे। वे प्रतिदिन एक घंटे से अधिक घूमा करते थे। वृद्धावस्था में भी उनकी स्मरण-शक्ति, तीक्ष्ण-बुद्धि और निर्णय की क्षमता अक्षुण्ण बनी रही। वे अंत तक लिखते रहे और भाषण के निमंत्रण भी स्वीकार करते रहे। वृद्धावस्था के बावजूद वे अपने विचारों की स्पष्टता, अभिव्यक्ति की क्षमता और धारा-प्रवाह भाषणों से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। अपने दैनिक जीवन में एक घंटे से अधिक समय उन्होंने सुरक्षित रखा था, जब उनसे कोई भी मिल सकता था। पिताजी से उस समय जो भी सलाह लेने आता, उसे सलाह देते और समस्याओं का समाधान किया करते थे। जो भी उनके पास कोई समस्या लेकर आया, वह उनकी प्रशंसा करते हुए और आदर देते हुए संतुष्ट होकर गया।

उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सबसे बड़े स्मारक हैं—वे उद्योग जो उन्होंने देश की आर्थिक क्षमता को बढ़ाने और रोजगार के अवसर प्रदान करने

के लिए स्थापित किये अ
संस्थान, मंदिर और विशे
आफ टेक्नोलाजी एंड साइ

पिताजी बहुत वर्षों
के साथ पिताजी के जो दी
संस्थान ने उन पर पुस्तक
लाल को सौंपा गया जो
विशिष्ट स्थान है। संस्था
में उनकी मृत्यु के बाद उ
मुझे खेद है कि बहुत प्रयत
कर सके क्योंकि प्रतिष्ठान
लिपि को पढ़ूं और अपने
इन्हीं कारणों से बहुत सम

इस पुस्तक में यह प्र
के जीवन की विवेचना ही
के राजनैतिक और आर्थि
विशेष उल्लेख किया गया
प्रकार गांधीजी के राजनै
के विचारों से महात्माजी
मतभेदों को दूर कर शीघ्र
पर बहुत परिश्रम किया

यह भी उचित समझ
अवस्थी की भी सहायता
श्री अवस्थी को भी धन्यव
किया है।

मेरे बड़े भाई लक्ष्मी
और परिवार के अन्य स
हिंदुस्तान टाइम्स प्रतिष्ठान
सदस्य की तरह हैं, कई

के लिए स्थापित किये और वे विभिन्न संस्थाएं--स्कूल, कालेज, अस्पताल, शोध-संस्थान, मंदिर और विशेषकर पिलानी की स्वायत्तशासी संस्था--बिड़ला इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलाजी एंड साइंस। वे अपने जीवन में ही मिथक बन गये।

पिताजी बहुत वर्षों तक हिंदुस्तान टाइम्स के मार्ग-दर्शक रहे। इस संस्थान के साथ पिताजी के जो दीर्घ, सुखद और उत्साह-वर्धक संबंध रहे, उनके कारण इस संस्थान ने उन पर पुस्तक लिखाने का निर्णय किया। यह कार्य डा० लक्ष्मीनारायण लाल को सौंपा गया जो हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक हैं और हिंदी जगत में जिनका विशिष्ट स्थान है। संस्थान की इच्छा थी कि यह पुस्तक ११ जून, १९८३ को लंदन में उनकी मृत्यु के बाद उनकी पहली जन्मतिथि रामनवमी पर प्रकाशित हो जाये। मुझे खेद है कि बहुत प्रयत्न करने के बावजूद हम इस पुस्तक को पहले प्रकाशित नहीं कर सके क्योंकि प्रतिष्ठान के वरिष्ठ अधिकारी यह चाहते थे कि मैं स्वयं पूरी पांडु-लिपि को पढ़ूं और अपने सुझाव दूं और जहां आवश्यक हो, वहां उसमें संशोधन करूं। इन्हीं कारणों से बहुत समय लग गया।

इस पुस्तक में यह प्रयत्न किया गया है कि केवल पारंपरिक तरीके से पिताजी के जीवन की विवेचना ही न हो बल्कि यह भी बताने का प्रयत्न किया जाये कि इस देश के राजनैतिक और आर्थिक जीवन में उनकी भूमिका क्या रही है ? इस बात का विशेष उल्लेख किया गया है कि गांधीजी के साथ उनके क्या संबंध थे, उन्होंने किस प्रकार गांधीजी के राजनैतिक विचारों से अंग्रेजों को परिचित कराया और अंग्रेजों के विचारों से महात्माजी को अवगत कराया, ताकि भारत और इंग्लैंड के बीच के मतभेदों को दूर कर शीघ्रातिशीघ्र स्वतंत्रता प्राप्त हो सके। डा० लाल ने इस पुस्तक पर बहुत परिश्रम किया है, हम उनके कृतज्ञ हैं।

यह भी उचित समझा गया कि इस कार्य में 'कादम्बिनी' के सम्पादक श्री राजेन्द्र अवस्थी की भी सहायता ली जाये, जो स्वयं हिंदी के विशिष्ट विद्वान लेखक हैं। हम श्री अवस्थी को भी धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक को तैयार करने में काफी श्रम किया है।

मेरे बड़े भाई लक्ष्मीनिवासजी, छोटे भाई बसंतकुमार और उसकी पत्नी सरला और परिवार के अन्य सदस्यों ने कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। इन सबके लिए हिंदुस्तान टाइम्स प्रतिष्ठान उनका आभारी है। श्री वियोगी हरि ने, जो मेरे पारिवारिक सदस्य की तरह हैं, कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। हम उनके अनुगृहीत हैं।

मैं उप-राष्ट्रपति श्री वेंकटरामन का अत्यंत ऋणी हूं, जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखना स्वीकार किया। श्री वेंकटरामन पिताजी को बहुत समय से जानते थे और उनके मित्र रहे हैं। पिताजी उनका बहुत आदर करते थे। अपनी बहुल गति-विधियों और व्यस्त कार्यक्रमों के बावजूद उन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखी, यह हमारे लिए अत्यधिक संतोष का विषय है। श्री वेंकटरामन ने यह कार्य पिताजी के प्रति आदर और मेरे प्रति स्नेह के कारण किया है। हम सदा उनके आभारी रहेंगे।

इस प्रतिष्ठान के अध्यक्ष के नाते मैं हिंदुस्तान टाइम्स के कार्यकारी अध्यक्ष श्री सूरजमल अग्रवाल, 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' की संपादिका श्रीमती शीला झुनझुनवाला, हिंदुस्तान टाइम्स के संपादक श्री एन० सी० मेनन, उप-महा-प्रबंधक श्री नरेश मोहन, दैनिक 'हिंदुस्तान' के संपादक श्री विनोद मिश्र और प्रतिष्ठान के अन्य अधिकारियों को धन्यवाद देना चाहूंगा जिनके सहयोग से यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी। इन सबने बहुत लगन के साथ काम किया। उनकी मदद के बिना यह पुस्तक समय पर प्रकाशित नहीं हो सकती थी।

मैं आशा करता हूं कि पाठक इस पुस्तक का स्वागत करेंगे। इसी में हम सबके प्रयासों की सार्थकता है।

बृजमोहन कुमार बिड़ला

रामनवमी, १९८५

अध्यक्ष
हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन समूह

इस पुस्तक की
समय से जानते
पनी बहुल गति-
प्रस्तावना लिखी,
ह कार्य पिताजी
आभारी रहेंगे।
ार्यकारी अध्यक्ष
श्रीमती शीला
उप-महा-प्रबंधक
ीर प्रतिष्ठान के
पुस्तक प्रकाशित
बिना यह पुस्तक

सी में हम सबके

बिड़ला

अध्यक्ष
प्रकाशन समूह

सत्यमेव जयते

उपराष्ट्रपति, भारत
नई देहली
VICE-PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI

FEBRUARY 21, 1985.

FOREWORD

It is a pleasure for me to write the foreword to a biography of G.D. Birla whom I had known and respected for many years. I first came into contact with him when I was Industries Minister in the Tamilnadu Government. He was appreciative of the efforts made by the State to industrialise it. Our discussions proved that G.D. Birla was a man of new ideas and that he was fired with a firm conviction that industrialisation was the only panacea for Indian poverty.

He firmly believed that prosperity came only through increased production and that unless the nation was free and master of its destiny, no progress could be achieved, be it industrial growth, social development or cultural expansion. It is a measure of the man that he did not consider the task over, once independence was achieved. On the contrary, he believed that it is when a nation becomes free that its tasks of taking the country forward on the path of progress and of uplifting society as a whole begin in real earnest.

G.D. Birla carried on a relentless campaign on controls and restrictions. In his view restricted production is the root cause of inflation; and that the only remedy for inflation is higher production.

G.D. Birla was a friendly and amiable person, but the steel within the soft exterior came to the fore whenever he felt that his self-respect was being challenged. When he first entered the brokerage business,which was then the exclusive preserve of the British, many attempts were made to discourage him by subtle methods of humiliation. But he stood his ground with dignity and ultimately the Englishmen who had been set to thwart him became his close friends.

G.D. Birla dedicated himself to whatever cause he took up. As a pioneering industrialist, he set norms of initiative and enterprise that are timeless. As an ardent protagonist of national independence, he supported Mahatma Gandhi's freedom movement materially and in

CONTD../2.

spirit. His generous assistance to the freedom movement marks a shining chapter in the annals of our history.

In fact, the initial rapport between the Mahatma and G.D. Birla developed into a close bond. It took considerable courage in those days to be associated with Gandhiji and the nationalist movement, but G.D. Birla steadfastly maintained his close links. He was in constant touch with Gandhiji, either personally or through correspondence. The Mahatma once described G.D. Birla as not only his friend, follower and supporter, but also his mentor.

Being close to Gandhiji and at the same time held in high regard by the British establishment from the Viceroy down, G.D. Birla was often able to act as a bridge between them. His mediatory role brought the two sides closer and made them understand each other.

G.D. Birla recognised that education, science and technology were vital to a nation's progress. He, therefore, set up various educational institutions, including the Birla Institute of Technology and Science in Pilani, which is now recognised as one of the best in the country.

G.D. Birla had the genius to recognise talent and the generosity to support it wherever it was found. No deserving person left his presence without ample assistance. When C.V. Raman was struggling to develop his theory of light, he approached G.D. Birla for assistance to procure an equipment. Birla, obviously impressed with Raman's earnestness, promptly offered to help. The rest is history.

G.D. Birla was a social reformer. His contribution to Harijan welfare was born out of a conviction that all men are equal. Likewise, quite ahead of his times, he believed in Labour-Management Cooperation and to establish harmony in industrial relations.

His sense of the need for cooperation was not, however, confined to segments within Indian society. Apart from amity and joint endeavour within each nation, he also called for cooperation among nations.

Time has proved Birla correct. Produce or Perish is now a worldwide slogan, and global inter-dependence is a term which is now constantly heard in world forums.

Like many great men, G.D. Birla was a multi-faceted, well-rounded personality whose interests ranged far and wide. He was a lover of nature and was particularly fond of mountains. His rovings round the world resulted

CONTD../3.

in a number
painter, pho
also had an

G.D. Bi
versed in th
be well nigh
and contribu
institutions
pired by the
it was no co
day - the da
life and tho
him to great
a better pla
tribute can
succeeding
virtues.

"Lives

That

in a number of enjoyable travelogues. He was a good painter, photographer, marksman and equestrian. He also had an abiding passion for music.

G.D. Birla was a deeply religious man, well-versed in the Shastras and Indian philosophy. It will be well nigh impossible to catalogue all the charities and contributions he had made to temples, religious institutions and Ved Pathshalas. He was greatly inspired by the Geeta and the Ramcharitmanas. Perhaps it was no coincidence that he was born on Ramnavami day - the day Lord Rama was born. An account of his life and thoughts will inspire those who come after him to greater endeavour in order to leave this world a better place than when they entered it. No finer tribute can be paid to anyone. May his life inspire succeeding generations of our country to imbibe his virtues.

"Lives of great men all remind us,
That we can make our life sublime".

R. Venkataraman

(R. VENKATARAMAN)

# प्रस्तावना*

मेरे लिए यह अत्यंत हर्ष की बात है कि मुझे श्री घनश्यामदास बिड़ला के जीवन-चरित्र की भूमिका लिखने का अवसर मिल रहा है, जिन्हें मैं अनेक वर्षों से जानता रहा हूं और सम्मान करता रहा हूं। सबसे पहले उनसे मेरा संपर्क तब हुआ था, जब मैं तमिलनाडु शासन में उद्योग-मंत्री था। राज्य में औद्योगीकरण के प्रयासों की उन्होंने सराहना की थी। श्री घनश्यामदास बिड़ला से जो विचार-विमर्श हुआ, उससे मुझे विश्वास हो गया कि उनमें नये-नये विचार देने की क्षमता थी और उनके भीतर एक गहरा और अमिट विश्वास था कि भारत से गरीबी दूर करने के लिए औद्योगीकरण ही एकमात्र रास्ता है।

उनका यह दृढ़ विश्वास था कि केवल उत्पादन-वृद्धि से ही समृद्धि आयेगी और जब तक राष्ट्र स्वतंत्र और अपने भाग्य का स्वयं नियामक नहीं होगा, तब तक किसी भी क्षेत्र में प्रगति नहीं हो सकती चाहे वह औद्योगिक विकास का मामला हो या सामाजिक विकास का या सांस्कृतिक उन्नति और विस्तार का। यह उनकी विशेषता थी कि स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के बाद भी उन्होंने इस कार्य को समाप्त नहीं समझा। इसके विपरीत उनका विश्वास था कि जब कोई राष्ट्र स्वतंत्र हो जाता है, तभी देश को प्रगति और समाज को तरक्की के रास्ते पर आगे ले जाने का वास्तविक कार्य शुरू होता है।

घनश्यामदास बिड़ला नियंत्रणों और प्रतिबंधों के विरुद्ध निरंतर आंदोलन करते रहे। उनका यह मत था कि प्रतिबंधित उत्पादन ही मुद्रास्फीति की असली जड़ है और मुद्रास्फीति का एक-मात्र उपचार अधिक-से-अधिक उत्पादन है।

* मूल अंग्रेजी से अनूदित

घनश्यामदास बिड़ला आत्मीय और मिलनसार व्यक्ति थे, परंतु उनके कोमल और मृदु बाह्य रूप के भीतर इस्पाती दृढ़ता भी थी और जब भी वे अनुभव करते थे कि उनके आत्म-सम्मान को चुनौती दी जा रही है तो उनका यह रूप सामने आता था। जब पहली बार उन्होंने दलाली के धंधे में प्रवेश किया तब उस पर अंग्रेजों का एकछत्र प्रभुत्व था। उन्हें अपमानित करने के अनेक प्रच्छन्न तरीकों द्वारा हतोत्साहित किया गया। इसके बावजूद वे सम्मान के साथ अपनी बात पर अड़े रहे और अंततः वही अंग्रेज, जिन्होंने उनके प्रयासों को असफल करने की कोशिश की थी, उनके घनिष्ठ मित्र बन गये।

घनश्यामदास बिड़ला जो भी कार्य हाथ में लेते थे, उसमें समर्पित भाव से जुट जाते थे। एक अग्रगामी उद्योगपति के नाते उन्होंने पहल लेने और खतरे उठाने के जो नीति-नियम निर्धारित किये, वे कालातीत रहेंगे।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता के एक प्रखर समर्थक के रूप में उन्होंने महात्मा गांधी के स्वाधीनता आंदोलन का न केवल आर्थिक और भौतिक रूप से बल्कि अंतरात्मा से समर्थन किया। स्वाधीनता आंदोलन में उन्होंने जिस तरह मुक्त-हस्त सहायता दी, वह हमारे इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है। वास्तव में महात्मा गांधी और घनश्यामदास बिड़ला के बीच जो एक प्रारंभिक समझ-बूझ पैदा हुई, वह अंततः घनिष्ठ संबंधों में परिवर्तित हो गयी। उन दिनों महात्मा गांधी और राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जुड़ने के लिए बहुत अधिक साहस की जरूरत होती थी, परंतु अपने घनिष्ठ संबंधों को बनाये रखने में घनश्यामदास बिड़ला सदैव दृढ़ रहे। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से अथवा पत्राचार के माध्यम से गांधीजी के साथ हमेशा संपर्क बनाये रखा। एक बार महात्मा गांधी ने घनश्यामदास बिड़ला को न केवल अपना मित्र, अनुयायी और समर्थक बताया था बल्कि अपना अनुभवी परामर्शदाता भी कहा था।

गांधीजी के निकट होने के साथ-साथ वाइसराय से लेकर अंग्रेज शासन के अन्य अधिकारी भी उनका बहुत सम्मान करते थे। फलतः घनश्यामदास बिड़ला अक्सर इन लोगों के मध्य एक सेतु की भी भूमिका निभाने में समर्थ होते थे। उनकी मध्यस्थ की भूमिका दोनों पक्षों को निकट लाती थी और उन्हें एक-दूसरे को समझने में सहायता पहुंचाती थी।

घनश्यामदास बिड़ला की मान्यता थी कि किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए शिक्षा, विज्ञान और तकनीकी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अतः उन्होंने विभिन्न शैक्षणिक

संस्थाओं की स्थापना की। उनमें पिलानी-स्थित बिड़ला इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी एंड साइंस भी शामिल है, जिसे देश का सर्वोत्तम शिक्षा संस्थान माना जाता है।

घनश्यामदास बिड़ला में प्रतिभा को पहचानने की अंतर्दृष्टि थी और जहां कहीं ऐसी प्रतिभा मिलती, उसे उदारतापूर्वक सहायता देते थे। कोई भी योग्य व्यक्ति उनसे पर्याप्त सहायता पाये बिना खाली हाथ नहीं लौटता था। सी० वी० रमण जब अपने प्रकाश संबंधी सिद्धांत का विकास करने के लिए संघर्ष कर रहे थे, तब एक उपकरण को प्राप्त करने के लिए सहायता हेतु वे घनश्यामदास बिड़ला के पास गये। निःसंदेह बिड़ला श्री रमण के उत्साह से प्रभावित हुए और उन्होंने तत्काल सहायता देने की पेशकश की। शेष बातें तो इतिहास में हैं।

घनश्यामदास बिड़ला समाज-सुधारक थे। हरिजन कल्याण में उनका योगदान उनके इसी विश्वास से उपजा था कि सभी मनुष्य समान हैं। इसी तरह श्रमिकों और व्यवस्थापकों के बीच सहयोग और औद्योगिक संबंधों में सौहार्द्र बनाये रखने का उनका विश्वास समय से बहुत आगे था।

वे केवल भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में सहयोग की आवश्यकता को जरूरी नहीं समझते थे बल्कि प्रत्येक राष्ट्र में मित्रतापूर्ण और संयुक्त प्रयास शुरू करने के अलावा वे राष्ट्रों के बीच भी सहयोग पर बल देते थे।

समय ने यह सिद्ध कर दिया कि बिड़ला सही थे। 'उत्पादन कीजिए अथवा नष्ट हो जाइए', आज यह विश्वव्यापी नारा है। विश्व के मंचों पर राष्ट्रों के मध्य परस्पर निर्भरता की बात अब लगातार की जा रही है।

अन्य अनेक महापुरुषों की तरह घनश्यामदास बिड़ला के जीवन के भी विविध आयाम थे। उनका व्यक्तित्व दृढ़ था और उनकी अभिरुचियां भी बहुत विस्तृत और नाना प्रकार की थीं। वे प्रकृति के प्रेमी थे, उन्हें पर्वतों से विशेष लगाव था। निरंतर विश्व-भ्रमण के परिणामस्वरूप वे अनेक दिलचस्प यात्रा-वृत्तांत लिख सके। वे बहुत अच्छे चित्रकार, छायाकार, निशानेबाज और घुड़सवार थे। संगीत के प्रति भी उनकी आत्मीय अभिरुचि थी।

घनश्यामदास बिड़ला अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति के पुरुष थे और शास्त्रों तथा भारतीय दर्शन का उन्हें अच्छा ज्ञान था। उन्होंने मंदिरों, धार्मिक संस्थाओं और वेद पाठशालाओं को इतना दान और सहायता दी कि उन सबको गिनना बहुत कठिन है। उन्होंने गीता और रामचरितमानस से प्रेरणा ली। संभवतः, यह मात्र संयोग

नहीं था कि उनका जन्म रामनवमी के दिन हुआ, जिस दिन भगवान राम ने भी जन्म लिया था। उनके जीवन और विचार आने वाली भावी पीढ़ियों को प्रेरणा देते रहेंगे और विश्व में जीने के लिए अपने भीतर नया उत्साह और नयी शक्ति का संचयन कर सकेंगे। किसी भी व्यक्ति को इससे बेहतर श्रद्धांजलि भेंट नहीं की जा सकती। हमारे देश में आने वाली पीढ़ियों को उनका जीवन इतनी प्रेरणा दे कि वे उनके आदर्शों और गुणों का अनुसरण कर सकें।

**यही सिखलाता जीवन हमें महान व्यक्तियों का**
**बना सकें हम निज जीवन को भव्य-अलौकिक।**

आर० वेंकटरामन

—आर० वेंकटरामन
उप-राष्ट्रपति

# भूमिका

सबसे पहले श्रीगणेश का स्मरण करते हैं। फिर ज्ञानदाता सद्गुरु का, जिन्होंने गणेश का अर्थ बताया ।

यह धर्म-संस्कार मेरे चरितनायक श्री घनश्यामदास बिड़ला को अपने पितामह श्री शिवनारायणजी, पिताश्री बलदेवदासजी, माता योगेश्वरी देवी और बड़े भाई श्री जुगलकिशोरजी से मिला था; अपने पूरे जीवन और समस्त कर्मों में जिन्होंने गणेश और वाग्देवता की साक्षात प्रतिष्ठा की है। गणेश का अर्थ यह है कि जो गण-गण अलग हो जाते हैं, विषयों के गण, इंद्रियों के गण, मनोवृत्तियों के गण, सब टुकड़े-टुकड़े जैसे सेना हो और उसका कोई नायक न हो, इन गणों का संचालक न हो तो ये सारे गण विघ्न रूप हो जाते हैं। जैसे किसी व्यक्ति का निर्माण हो रहा हो, कोई संस्था बन रही हो, कोई उद्योग लग रहा हो और उसके विभिन्न अंगों में फूट पड़ जाये, तो क्या होगा ? यही चिंता श्री घनश्यामदासजी के व्यक्तित्व की मूल धुरी थी। उन्होंने जिस तरह अपना जीवन जिया, जैसा अपना बिड़ला-परिवार संजोया, संस्थाएं बनायीं, उद्योग निर्मित किये, उनमें कहीं किसी तरह के विघ्न न आ जाएं, उनमें मर्यादा का उल्लंघन न उपस्थित हो जाये, इसका उन्हें सर्वत्र, हर स्तर पर ध्यान है।

जी० डी०की अपार श्रद्धा कर्म में थी, उद्योग में थी, सतत प्रयत्न में थी। वह कर्म चाहे लेखन हो, चाहे राष्ट्र-समाज-सेवा, वह उद्योग चाहे परतंत्र भारत में प्रथम जूट उद्योग शुरू करना हो, चाहे भारत की आर्थिक दुर्दशा के रहस्यों को खोजना, वह प्रयत्न चाहे घर-परिवार, संस्था और स्वास्थ्य की व्यवस्था हो, चाहे

महात्मा गांधी और वाइसराय को मिलाने-मनाने और दोनों को परस्पर सहमत करने का हो, सर्वत्र वही कर्म-दर्शन दिखता है, जिसे उन्होंने गीता से प्राप्त किया था। सभी स्रोतों और प्रमाणों से पता चलता है कि भगवद्गीता ही उनका निजी उपास्य कर्म-संगीत था।

पर गीता स्वयं अपने आपमें एक प्रश्न है। तो क्या 'जी० डी०', वे प्राय: इसी नाम से संबोधित किये जाते थे, अपने आपमें एक प्रश्न हैं ? यह प्रश्न अहर्निश उद्योग-क्षेत्र में खड़े इनके हृदय में क्यों है ? जैसे युद्ध के लिए आये और युद्ध-क्षेत्र में खड़े, फिर भी उस युद्ध के प्रति प्रश्न अर्जुन को क्यों है ? बुद्धि में इतनी जिज्ञासा-शक्ति क्यों है ? ऐसा लगता है कि कहीं कोई युद्ध और संघर्ष की परिस्थिति ही न हो। व्यवसाय-उद्योग में उपस्थित होकर भी कहीं कोई उसकी स्थिति न हो। इतनी शांति, इतनी एकाग्रता के साथ आजीवन अपने सिरहाने जी० डी० ने गीता की पोथी क्यों रखी ?

आदि से अंत तक किसी भी अवसर के उनके जितने चित्र हमने देखे हैं, उनमें एक सरल जिज्ञासा है---"हम जो कर्म करते हैं, उसका उद्देश्य क्या है ?" ऋतुत्वा अर्जुन:, जो सरल है, वही अर्जुन है; जो सरल है वही जिज्ञासु 'बिड़ला घनश्यामदास' है; जो जिज्ञासु है वही कर्म-पथ-यात्री है।

ऐसे पुरुष की जीवन-गाथा मुझे लिखनी थी। मुझ-जैसे साधारण से यह असाधारण कार्य होना था। जो स्वयं शब्द और वाणी का इतना सक्षम, इतना धनी था, जिसने महात्मा गांधी, जमनालाल बजाज, महादेव देसाई, ठक्कर बापा, मणिबेन के बारे में निराले ही ढंग से सजीव झांकियां और रेखा-चित्र प्रस्तुत किये, जिसने दो बार, दो ढंग से आत्मचरित लिखना शुरू किया---'वे दिन', 'कृष्णं वंदे जगद् गुरुम्' के नाम से, और उसे आगे लिखने से स्वत: रोक दिया, उसे किसी और के द्वारा पूरा करना क्या सरल कार्य था ? वस्तुत: परिस्थितियों से ऊपर उठे बिना जैसे परमार्थ विषयक जिज्ञासा और उसका समाधान नहीं हो सकता, उसी तरह घनश्याम-दासजी का जीवन, मात्र उनकी जीवन परिस्थितियों के भीतर नहीं बांधा जा सकता। अर्जुन की तरह घनश्यामदास का अर्थ है, जो सतत् कर्म से ज्ञान का अर्जन करे। जो विपरीत-से-विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी चित्त-वृत्ति को यथास्थान लगाये हुए है।

उल्लेखनीय है 'वे दिन' और 'कृष्णं वंदे जगद् गुरुम्' में व्यापार, उद्योग, माल, बाजार, कमाई, लाभ-हानि की कहीं कोई चर्चा नहीं है। जैसे अर्जुन गीता में युद्ध

को भूल गये हैं, वैसे जी० डी० अपने प्रश्नों में व्यापार-उद्योग, लाभ-हानि को भूल गये हैं।

हम लोगों के सामने कोई हमारी जरा-सी प्रशंसा कर दे, थोड़ा-सा धन और यश का अर्जन हो जाये तो उसी पर हमारा सारा ध्यान चला जाता है। पर जैसे अर्जुन को युद्ध का कोलाहल, हिंसक ध्वनियों से कोई विघ्न नहीं हुआ, उसी तरह घनश्याम-दासजी का उनके इतने कर्मों और कर्म-फलों से कभी ध्यान-भंग नहीं हुआ। यह एक आश्चर्यजनक बात थी, तभी तो उनके 'कृष्णं वंदे जगद् गुरुम्' से जैसे भगवद् स्वर निकला है—हां, यह है उत्तर देने योग्य, जिसका अब भी प्रश्न शेष है। उसी को अपने शब्द और व्यंजनाओं में बांधने का मैंने विनम्र स्वरों में भरसक प्रयत्न किया है। इसलिए यह जीवनी केवल एक जीवन-कथा नहीं है, जीवन-यात्रा है। इसका उद्देश्य भी है, कलात्मक और नैतिक दोनों। एक चरित्र की तस्वीर बनाने के साथ-साथ यह पाठक की आंखों में एक चित्र उभारना चाहती है, एक ऐसा चित्र, जो उसके लिए आदर्श सिद्ध हो और साथ ही उसे सतर्क करता हो।

प्रत्येक देश और काल में लोगों के मन में उठने वाली कामनाएं और इच्छाएं अपने को दोहराती चलती हैं। एक महान व्यक्तित्व के बनने में जो लक्ष्य, जो घटनाएं और सौभाग्य सहायक होते हैं, वे सारे-के-सारे दूसरे व्यक्तियों ने भी अपने अंदर महसूस किये होते हैं। इसलिए जीवनी पढ़ते-पढ़ते पाठक कई बार नायक के स्थान पर स्वयं को रखकर अपने आपसे पूछता है—ऐसी परिस्थितियों में 'उसे' क्या महसूस होता और भविष्य में यदि ऐसी परिस्थितियां 'उसे' घेर लें तो 'वह' क्या करेगा ?

सृष्टिकर्ता अपनी सृष्टि में व्याप्त रहता है, गोचर कहीं भी नहीं होता। ऐसा ही होता है साहित्यिक। वह व्याप्त तो होता है अपनी रचना में, लेकिन पाठक यदि किसी जगह उंगली रखकर कह दे कि यह है लेखक, तो वह रचना सृजनात्मक दृष्टि से निम्न कोटि की हो जाती है। 'जीवनी', यदि वह साहित्य की कोटि में आ सकने योग्य है तो 'जीवनी' का स्वामी लेखक के व्यक्तित्व से निकलकर आकाश की तरह चारों ओर फैल जाता है। यदि वह लेखक के दायरे में ही रह गया तो उसका व्यक्तित्व लेखक की सीमाओं में सिमटकर छोटा हो जाता है। शायद यही कारण है, हमारे यहां जीवनी लिखने के प्रति लोगों में इतनी घोर उदासीनता है।

आत्मकथा या जीवनी लेखन को घनश्यामदासजी ने आत्मविज्ञापन का पर्याय ठहराया। इस नाते वह आत्मचरित लिखने के विरोध में थे। उनके जीवनकाल में

कोई उनकी जीवनी लिखे, यह भी उन्हें उचित नहीं लगा। उन्होंने व्यक्तिगत स्मृतियों तक का महत्त्व नकार दिया था--"मेरे आपके संस्मरणों का क्या महत्त्व है? यह छियासठ करोड़ की आबादी वाला देश है। हर व्यक्ति की रामकहानी है, स्मृतियां हैं, आत्मकथा है। लेकिन उससे आता-जाता क्या है? कुछ नहीं। अगर आप यह कहते हैं कि जी० डी० के जीवन का इसलिए महत्त्व है कि उसने दूसरों को प्रभावित किया है तो मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि कोई व्यक्ति ऐसा नहीं, जिसके जीवन से कुछ अन्य व्यक्ति प्रभावित न हुए हों। संसार में हर चीज दूसरी चीजों से जुड़ी हुई है और हर व्यक्ति एक-दूसरे पर असर डाल रहा है।"

जी० डी० के व्यक्तित्व की यही विशेषता और इसके पीछे छिपी हुई उनकी बहुमुखी प्रतिभा और कर्मठता के स्रोत तक पहुंचना किसी भी जीवनीकार के लिए बड़ा ही चुनौतीपूर्ण कार्य है। इसलिए और भी कि जी० डी० लोक-व्यवहार और कर्म-योग में इतने आकंठ डूबे होने के बावजूद अपने आपमें ही रहने और जीनेवाले एक अंतर्मुखी व्यक्ति थे।

ऐसे घनश्यामदासजी की जीवनी मुझ-जैसे लेखक को लिखनी पड़ेगी, यह कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। लेकिन संयोगवश एक ऐसी दिशा से यह प्रस्ताव मेरे पास आया कि इसे स्वीकार करना मेरे लिए सौभाग्य की बात लगी। घनश्यामदासजी को अपना विषय बनाने में जितना अध्ययन, पठन-पाठन, चिंतन-मनन, भ्रमण, देखना-सुनना और अनेकानेक लोगों से मिलना-जुलना करना पड़ा, वह मेरी एक उपलब्धि रही। मुझे अनुभव हुआ, घनश्यामदासजी का समूचा जीवन इतना विशाल और विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत और प्रशस्त है कि समूचे घनश्यामदासजी को किसी एक पुस्तक में बांधना संभव नहीं है। पर उन्हें किसी एक पुस्तक में कलात्मक ढंग से अभि-व्यक्त करना किसी भी लेखक के लिए उसके जीवन का महत्त्वपूर्ण कार्य हो सकता है। इसी संकल्प से मैंने यह स्वीकार किया।

इस सारस्वत कार्य की प्रेरणा मुझे घनश्यामदासजी के सुपुत्र श्री कृष्णकुमारजी बिड़ला से मिली। इस कार्य को सारस्वत यज्ञ बनाने का आशीर्वाद मुझे घनश्यामदासजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला से प्राप्त हुआ।

घनश्यामदासजी के सबसे छोटे पुत्र बसंतकुमारजी और उनकी धर्मपत्नी सरलाजी और उनके परिवार से घनश्यामदासजी के अंतरंग चित्र की प्राप्ति में मुझे बहुत सहायता मिली।

हिंदी के सुपरिचित विद्वान और घनश्यामदासजी के समीप रहे साहित्यकार श्री वियोगी हरिजी ने पूरी पांडुलिपि पढ़कर महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूं।

अपना धन्यवाद व्यक्त करना चाहता हूं, श्रीमती पुष्परेणु श्रीवास्तव, श्री राकेश तिवारी, कुमारी नीलम, सतपाल, जिनका सहयोग मुझे इस कार्य के संपादन में प्राप्त हुआ है।

आभारी हूं हिंदुस्तान टाइम्स के कार्यकारी अध्यक्ष श्री एस० एम० अग्रवाल और व्यवस्थापक श्री नरेश मोहनजी का, जिन्होंने इस कार्य में व्यक्तिगत रुचि लेकर मुझे सहयोग दिया।

जी० डी० का कृतित्व जितना नानाविध है, उतना ही बहुमुखी उनका व्यक्तित्व है। उन्हें किसी एक श्रेणी या वर्ग-विशेष में रखकर नहीं देखा जा सकता। मेरा विश्वास है, उनके जीवन के विविध पहलुओं पर जब विधिवत कार्य किया जायेगा तो घनश्यामदासजी के चिंतन, सृजन और स्वप्न का पूरा रूप हमारे सामने आयेगा। जी० डी० का वह संपूर्ण रूप न केवल उनके स्वयं के जीवन का समग्र चरित होगा, बल्कि आधुनिक भारतवर्ष की महान जीवनगाथा होगी।

१ जनवरी, १९८५

—लक्ष्मीनारायण लाल

# अनुक्रमणिका


**दो शब्द** : श्री कृष्णकुमार बिड़ला
अध्यक्ष, हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन समूह

**प्रस्तावना** : श्री आर० वेंकटरामन
उप-राष्ट्रपति, भारत सरकार

**भूमिका** : डा० लक्ष्मीनारायण लाल

**उद्धरण**

**प्रथम पर्व : किशोरावस्था**

| | |
|---|---|
| आमुख | ५ |
| ऐसा जीवन | १५ |
| अंक से अक्षर ज्ञान | २९ |
| जीवन-व्यापार | ४३ |
| संकल्प-मार्ग | ५९ |

**द्वितीय पर्व : युवावस्था**

| | |
|---|---|
| दीपक जल उठा | ७३ |
| स्वराज्य के पथ पर | ८७ |
| श्रीमद्भागवत की बांसुरी | १०१ |
| बापू का लाड़ला बालक | ११७ |
| इतिहास का निर्माण | १३९ |
| समृद्धि का अर्थ | १९३ |

## तृतीय पर्व : प्रौढ़ावस्था


| | |
|---|---|
| संपन्नता का मर्म | २१७ |
| स्वप्न : सीमाहीन | २५३ |
| शब्द-स्वर-रंग-लय | २६९ |


## चतुर्थ पर्व : उत्तरयोग


| | |
|---|---|
| चरैवेति चरैवेति | २८७ |
| सम पर संगीत | २९९ |
| दृष्टि और विचार | ३२५ |
| चारित्रिक विशेषताएं | ३४९ |


## परिशिष्ट


| | |
|---|---|
| विशिष्ट व्यक्तियों के पत्र | ३६७ |
| चित्रमय जीवन-झांकी | ३७५ |
| संदर्भ (Index) | ४०९ |


मनुष्य के अ
कि उसमें सच
प्रयोग नहीं क
है, जिसने न
व्यायाम का,
के निमित्त कर
नहीं करनी च
उनके नाम क
देना चाहिए
अव्यवस्थित

कुछ लोगों ने
भेजा था, 'ई
बनाओ।' चा
रूपेण धारण

१७
५३
६९

२८७
२९९
३२५
३४९

३६७
३७५
४०९

मनुष्य के अत्यंत साधारण आचरण से ही पता चल जाता है कि उसमें सचाई कहां तक है। जो छोटी-छोटी बातों में सचाई का प्रयोग नहीं करता, जो अपनी सारी क्रियाओं के संबंध में अव्यवस्थित है, जिसने न सोने-उठने का नियम बना रखा है और न खाने और व्यायाम का, जो भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि से नहीं करता, केवल स्वाद के निमित्त करता है, ऐसे मनुष्य के जीवन से बड़ी-बड़ी बातों की आशा नहीं करनी चाहिए। जो लोग अव्यवस्थित हैं, समय के पावन्द नहीं हैं, उनके नाम को उच्चाकांक्षाओं के बहीखाते में 'बट्टे खाते नावें' लिख देना चाहिए। सफलता ऐसे लोगों के लिए पैदा नहीं हुई, जो अव्यवस्थित हैं, असंयमी हैं, और बिना चरित्र-बल वाले हैं।

कुछ लोगों ने महात्माजी से संदेश मांगा था, जो उन्होंने इस प्रकार भेजा था, 'ईमानदार बनो, आत्मसंयम रखो और चरित्र को ऊंचा बनाओ।' चाहे हम छोटे हों या बड़े, यदि हम सब इसको अविकल रूपेण धारण कर लें तो फिर किसी बात से डरना भी फिजूल है।

—घनश्यामदास

प्रथम पर्व

# किशोरावस्था

आमुख
ऐसा जीवन
अंक से अक्षर-ज्ञान
जीवन-व्यापार
संकल्प-मार्ग

# आमुख

शिवनारायणजी उस दिन पिलानी में सीताराम मंदिर से दर्शन करके हवेली में लौटे थे। तिबारे में बिछे पलंग पर बैठे ही थे कि उनके पास उनका छहवर्षीय पौत्र घनश्याम आ बैठा। बोला, "दादोजी · · · कथा सुणाओ।"

दादोजी ने उसका मुख देखकर कहना शुरू किया, "एक था राजा। राज्य के काम-काज के बाद एक दिन राजा अपने घर लौटा तो एक बूढ़े ने सामने आकर रास्ता रोक लिया और पूछा, 'लौट क्यों आये ?'

राजा ने कहा, 'मैं थक गया हूं।'

बूढ़े ने कहा, 'जो चलते-चलते थक जाते हैं वे राजा नहीं होते। राजा भी अगर थक कर बैठ जाये तो फिर बहुत बुरा होगा। इसलिए तुम चलते चलो, आगे बढ़ो।'

राजा घर से चला गया। कुछ दिनों बाद वह एक दिन फिर लौट आया। उसी बूढ़े ने फिर राजा का रास्ता रोककर पूछा, 'घर क्यों लौट आये ?'

राजा ने कहा, 'इस तरह लगातार चलते रहने से क्या लाभ है ?'

राजा फिर निकल पड़ा। एक दिन राजा जब लौटा तो उसी बूढ़े ने पूछा, 'फिर क्यों लौट आये ?'

राजा ने कहा, 'अब नहीं चला जाता।'

बूढ़ा बोला, 'यह क्या बात है। जो आराम करता है, उसका भाग्य भी आराम करता है। जो उठ खड़ा होता है, उसका भाग्य भी उठ खड़ा होता है। जो आगे बढ़ता है, उसका भाग्य भी आगे बढ़ता है। तुम आगे बढ़ो, रुको मत।'

राजा फिर निकल पड़ा अपने राज्य में। राज्य-परिक्रमा कर जब फिर से वापस

आया तो वही बूढ़ा फिर मिला।

राजा ने कहा, 'मेरा रास्ता छोड़ दो। अब मैं तुम्हारे उपदेश भी नहीं सुन सकता। सतयुग में, हो सकता है तुम्हारा यह उपदेश काम आता। मेरे इस युग में यह बेकाम है।'

बूढ़ा मुसकराया और बोला, 'सोये रहना ही कलियुग है। जाग उठना द्वापर है। उठ खड़े होना त्रेता है और चलते रहना सतयुग है। इसलिए तुम आगे बढ़ो, और बढ़ो, रुको मत'।''

···और यह कथा बालक घनश्याम के मन पर अमिट छाप छोड़ गयी और उसके आगे के जीवन के लिए प्रेरणा-सूत्र बन गयी।

पिलानी गांव में जब बिड़ला हवेली बनी तब से आज तक कोई नहीं जानता, कब उस गांव में कैसे वह जमीन ली गयी। सरकार के कागज में क्या लिखा है, किसी को पता नहीं। तब के लोग इन सब जरा-जरा-सी बातों पर सिर नहीं खपाते थे। सब अपने में मस्त रहते। इसी जमीन पर कारीगरों और मजदूरों ने, दिन-रात एक करके यह हवेली खड़ी कर दी थी। उसी हवेली में तिरेसठवर्षीय पितामह शिवनारायणजी के सामने बैठा उनका पौत्र घनश्याम, जिसका नामकरण उन्हीं के मुख से हुआ था, एकटक दादोजी को देख रहा था।

दादोजी के सिर पर कसी हुई छोटी-सी पगड़ी, नीचे की ओर फैली घनी सफेद मूंछें, इकहरा किंतु कसरती आदमी-जैसा गठीला और चुस्त शरीर, बड़े-बड़े कान, लंबी नाक, गेहुंआपन लिये साफ रंग। तीन लांग की धोती और गोल गले का अंगरखा।

सामने बैठा है बालक घनश्याम। छोटे-छोटे, भूरापन लिये घने केश, कानों में गोखरू और बीरबली, घनी भौंहें, लंबी नाक, गोल चेहरा, रंग साफ, सिर पर गोल टोपी, ऊंची बांधी हुई धोती, ढीली कमीज के गले तक सारे बटन बंद, हाथ में कड़ा। मुख पर सहज गंभीरता।

दादोजी को वह बालक बड़े ध्यान से देख रहा है, जैसे उनके चेहरे के नाक-नक्श का गहरा अध्ययन कर रहा हो। ऐसा लग रहा था, जैसे उसे इस बात का अनुमान है कि शीघ्र ही यह सब कुछ उससे छिन जायेगा। वह अपने पितामह की ओर देखता है---चेहरे पर अथक परिश्रम के चिह्न ! उनके मुख की झुर्रियों पर उसका ध्यान जाता है। उन्हें नीला, पीला और केसरिया रंग बहुत पसंद हैं। अपने



पूर्वजों में से उन्हीं की
के साथ वह सबसे अधि
से बालक को हवेली के

पूरे भारत में भित्ति
अधिक-से-अधिक रचना
तक में भित्तिचित्रों की

दादोजी अपने बिस
था। फिर भी भरी-पू
घनश्याम को श्रद्धा से

दादोजी बोले, "दे
संस्कार हैं।"

बालक दादोजी के
सबसे पहले उसकी आं
के अंक में आसीन :

**डंको**
**पेली**

फिर देखा मरु-य
विरल वृक्ष, दो ऊंट स
हिरण भी चारों ओर

फिर नजर गयी
जाली-झरोखे, बड़ी-ब
राजा-रानी सिंहासना
सामंत बैठे हैं।

और आगे देखा,
पर कहीं भी कोई श्र

अशोक वाटिका
में बैठी हुई सीता, त
ऐसा लगा जैसे डूबती

पूर्वजों में से उन्हीं की छवि उस बालक के मन में सदा अंकित रहेगी, क्योंकि उन्हीं के साथ वह सबसे अधिक आत्मीयता का अनुभव करता है। वह अंगुली के इशारे से बालक को हवेली के भित्तिचित्र दिखाते हैं।

पूरे भारत में भित्तिचित्र मिलते हैं, मगर राजस्थान ही ऐसा अंचल है, जहां इनकी अधिक-से-अधिक रचना हुई है। छोटी-बड़ी हवेलियों, पंचायतघरों, कुएं-बावड़ियों तक में भित्तिचित्रों की भरपूर सजावट मिलती है।

दादोजी अपने बिस्तर पर लेट गये। उनका शरीर अब वजनदार नहीं रह गया था। फिर भी भरी-पूरी सफेद मूंछों से सुसज्जित उनका तेजस्वी चेहरा बालक घनश्याम को श्रद्धा से अभिभूत करने के लिए पर्याप्त था।

दादोजी बोले, "देखो, इन चित्रों को। इस कला में हमारे देश के सनातन संस्कार हैं।"

बालक दादोजी के पास से उठकर अपनी हवेली के भित्तिचित्रों को देखने लगा। सबसे पहले उसकी आंख पड़ी देवाधिदेव श्री गणेशजी पर, अपने पिताश्री व मातुश्री के अंक में आसीन :

**डंको बाज्यो नाम रो, धायो जै जै कार।**
**पेली पूजो गणपति, बिरमा सब्द उचार॥**

फिर देखा मरु-यात्रा का चित्र, जिसमें चारों ओर बालुका-राशि, इक्के-दुक्के विरल वृक्ष, दो ऊंट सवार निश्चित भाव से यात्रा कर रहे हैं। ऊंट तेज दौड़ रहे हैं। हिरण भी चारों ओर कुलांचें भर रहे हैं।

फिर नजर गयी राज्याभिषेक के चित्र पर। विशाल महल का दृश्य, चारों ओर जाली-झरोखे, बड़ी-बड़ी गुमटियां, सुंदर मेहराब। बीच प्रांगण में सिंहासन है। राजा-रानी सिंहासनासीन हैं। दो ऋषि राज्याभिषेक कर रहे हैं। चारों ओर वीर सामंत बैठे हैं।

और आगे देखा, कहीं रामायण के चित्र, कहीं महाभारत के, कहीं वीर पुरुषों के। पर कहीं भी कोई शृंगार चित्र नहीं।

अशोक वाटिका में सीता के चित्र पर बालक की आंख जम गयी। अशोक वाटिका में बैठी हुई सीता, तपःकृश विरहातुर सीता, सामने राम के संदेशवाहक हनुमान, ऐसा लगा जैसे डूबती हुई नौका को किनारा मिल गया हो। एकाग्र ध्यानस्थ सीता।

दादोजी तिवारे से चलकर आंगन में आ गये, जहां वह बालक खड़ा हुआ हवेली के चित्रों को देख रहा था।

बालक के मुंह से निकला, "इतने चटक रंग !"

अभी एक साल पहले उस बालक ने वहां भयंकर अकाल देखा था। वह भूल नहीं पाता। आषाढ़ गया, श्रावण गया, जब भादों गया तब लोगों के छक्के छूट गये। कुछ हिस्सों में, जहां पानी खारा है, कुओं का पानी भी सूख गया। पशु एक-एक करके मरने लगे थे। उनके बाद नंबर आया मनुष्यों का। भूख के मारे लोग बच्चे बेचने लगे, पर लेने वाला कहां ? लोगों की कमर में रुपये बंधे रह गये और वे भूखे मरते रहे। घनश्यामदासजी ने इस संबंध में लिखा है :

"मैंने अपनी आंखों बीसों मुरदे अपने गांव के आसपास सड़ते देखे और सैकड़ों खोपड़ियों को बिखरे हुए देखा। ··· मेरे पिताजी ने इन लोगों को काम देने के मतलब से कई जगह कच्चे तालाब और कुओं की मरम्मत करानी शुरू की। हजारों आदमी राजस्थान में मरे। यह एक अनहोनी घटना थी। लेकिन इतनी भूख पर भी कोई लूट-खसोट, कोई डाका नहीं पड़ा। लोग चुपचाप ईश्वर की शरण में जाते थे।"

ऐसा भयंकर दुर्भिक्ष था सन अठारह सौ निन्यानवे का। उस अकाल के समय पिलानी में जो कोई कहीं से आया उसे सदाव्रत की तरफ से कनीराम तोला एक मुट्ठी अन्न दे देता। बिड़ला-परिवार की तरफ से भी कुछ-न-कुछ प्रबंध था। बाहर से अच्छी तादाद में केसारी और मटर मंगा ली गयी थी और हर भूखे को दोनों अनाज एक-एक मुट्ठी बांट दिये जाते थे। भूखे, मटर और केसारी को कच्चा ही फांक जाते थे।

'बिखरे विचारों की भरोटी' में घनश्यामदासजी ने लिखा है—"क्षुधा की पीड़ा का यह रोमांचकारी दृश्य मैंने बचपन में ही देखा। मैं उस समय केवल पांच वर्ष का था, पर मेरे चारों ओर क्या हो रहा है, उसका मुझे अच्छी तरह भान था। भूखे लोगों का त्रास और जगह-जगह मुरदों और खोपड़ियों का जमघट, यह भयानक दृश्य था, जिसने मेरे हृदय पर काफी चोट की।"

और अगले ही वर्ष ऐसा चिरस्मरणीय सुकाल पड़ा कि गत वर्ष का अकाल जैसे धुल गया। भगवान बरसा तो ऐसा कि जहां खेती नहीं जोती गयी वहां भी बाजरी, मूंग, मोठ खूब उग गया। बाजरा बढ़ा तो ऐसा बढ़ा कि कई-कई बूंट पंद्रह-बीस फुट लंबे हो गये। एक-एक बूंट में सात-सात सिट्टियां लगीं। लोगों को फसल पकने का धीरज नहीं था, इसलिए कच्ची बाजरी भून-भूनकर खाने लगे और ऐसे ही ककड़ी और मतीरे। सूखी हुई हड्डियों में जान आयी और मांस चर्बी जो सूख गयी थी वह लोगों

के बदन पर फिर आने
अपरंपार है।

इस पृष्ठभूमि और
हुआ। उन्होंने जो बच
समाज का वातावरण
यूरोप की हवा का कं

उनके परिवार में
पिता दोनों धर्म-मर्यादा
थे और धर्म में उनकी

बचपन से ही सुबह
घर में नहीं बीड़ में ज
के बाद जो पहला काम
पूजा अनिवार्य थी उस

नौ साल के हुए तब
सहस्रनाम का गुटका,
दिया गया था। सुबह
पहले चंदन केसर साथ
पूरा पाठ करो।

और भी कई यम-
पड़े रहना, ग्रहण शुद्ध न
देना, सावन में सोमवा
बुखार हो तो भी संध्य
ज्यादा बीमार हो गये त
'वे दिन' का एक अंश :

"दुर्गा सप्तशती
छोड़ दिया। पर ईश्वर
रही, पर ज्यादा श्रद्धा

पर जो भी हो,
गया। एक ओर मरुभू

के बदन पर फिर आने लगी। चारों ओर यही सुनायी देता---भगवान की लीला अपरंपार है।

इस पृष्ठभूमि और वातावरण में बालक घनश्याम का जन्म और पालन-पोषण हुआ। उन्होंने जो बचपन में देखा और सुना, जैसी दिनचर्या रही, जैसा परिवार-समाज का वातावरण रहा, वैसे सांचे में ढल गये। उन पर फिर इंग्लैंड, अमरीका, यूरोप की हवा का कोई असर नहीं हुआ।

उनके परिवार में कुछ विशेषता थी। वह थी धर्म की भावना। पितामह और पिता दोनों धर्म-मर्यादा के कठिन जीवन के साधक होने के अलावा उदारवृत्ति के भी थे और धर्म में उनकी अपार श्रद्धा थी।

बचपन से ही सुबह पांच बजे उठ जाने की आदत डाल दी गयी। सबेरे उठकर, घर में नहीं बीड़ में जाकर निवृत्त होने और दातून और पोखर स्नान से निबटने के बाद जो पहला काम करने के लिए उन्हें बाध्य किया जाता, वह थी नित्य की पूजा। पूजा अनिवार्य थी उस घर में।

नौ साल के हुए तब उन्हें चंदन का एक बोटा, चकला, ताम्री, पंचपात्र, विष्णु सहस्रनाम का गुटका, आसन और पूजा की सामग्री का बाकायदा एक झोला सौंप दिया गया था। सुबह सात बजे आसन पर बैठ जाते, पिता और पितामह के साथ। पहले चंदन केसर साथ में घिसकर तिलक लगाओ, उसके बाद विष्णु सहस्रनाम का पूरा पाठ करो।

और भी कई यम-नियम पिताजी से मिले। जैसे, ग्रहण में कभी खटिया पर नहीं पड़े रहना, ग्रहण शुद्ध न हो तब तक भोजन न करना, ग्रहण में छाया-पात्र का दान देना, सावन में सोमवार का उपवास करके शिवपूजन के बाद फलाहार करना। बुखार हो तो भी संध्या समय खटिया पर नहीं लेटना---ऐसा कड़ा नियम था। ज्यादा बीमार हो गये तो सुंदर कांड का पाठ। इससे ज्यादा करनी हो तो शतचंडी। 'वे दिन' का एक अंश :

"दुर्गा सप्तशती का नित्य पाठ मैंने वर्षों किया। पर जब श्रद्धा हट गयी तो छोड़ दिया। पर ईश्वर में मेरी श्रद्धा रही, जो बढ़ती ही गयी। प्रार्थना में कुछ श्रद्धा रही, पर ज्यादा श्रद्धा काम में रही।"

पर जो भी हो, घर-परिवार में जो अभ्यास कराया गया वह स्वभाव बन गया। एक ओर मरुभूमि का कठोर जीवन और साथ में माता-पिता द्वारा दिये गये

नियम । इन्होंने वड़ी भलाई की ।

इस तरह जीवन के सुख-दुख, भाव-अभाव, अकाल-सुकाल, और जीवन-मृत्यु के रंग-विरंगे चित्र को इतनी गहन संचेतना से देखने और अनुभूत करने की सहज क्षमता बारह वर्ष की अवस्था तक पहुंचते-पहुंचते किशोर घनश्याम को इतना संवेदन-शील बना गयी कि सबमें रहते हुए, सबसे अलग 'देखने' लगे ।

बचपन में देखे हुए सारे जीवन-दृश्य एक ऐसे अतिसंवेदनशील बालक के मानस-पटल पर पड़े थे जहां की छाप अमिट थी । बाहर सब कुछ देखने वाली आंख के साथ अंतस में उसे अनुभूत करने वाली दृष्टि खुल गयी । जीवन-दृश्यों की छाप किसी साधारण मन पर नहीं, बल्कि स्वप्निल, महत्त्वाकांक्षी किशोर हृदय पर पड़ रही थी। इससे एक ऐसे जिज्ञासु चित्त का उदय हो रहा था, जिसके लिए देखना और अनुभव करना, दोनों एक साथ सहज था । कुल परंपरा की मर्यादा, घर-परिवार, माता-पिता, पितामह-प्रपितामह के प्रति आदर प्रेम ने उन्हें वह सुदृढ़ भूमि दी, जहां से उनको अदम्य आत्मविश्वास प्राप्त हुआ । धर्म में निष्ठा, ईश्वर में श्रद्धा ने उन्हें वह कर्म-भूमि दी, जहां उन्होंने महात्मा गांधी-जैसे युगपुरुष के साथ पुत्रवत भूमिका अदा की ।

उनमें देखने की अपूर्व शक्ति थी । ऐसा देखना कि संपूर्ण दृश्य स्मृति-पटल पर बन जाये स्मृति-दृश्य !

यही थी वह प्रतिभा जिसकी प्रेरणा से तेरह साल की अवस्था में स्कूली-शिक्षा जीवन को 'अंतिम नमस्कार' कर स्वाध्याय और आत्मशिक्षा का जो क्रम शुरू हुआ वह जीवनपर्यंत अबाध गति से चला । हिंदी, संस्कृत, गुजराती एवं बंगला भाषा का ज्ञान प्राप्त किया । इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, विभिन्न फिलासफरों की फिला-सफी और साइंस जैसे क्षेत्रों में रुचि बढ़ी और उस रुचि के अनुसार बौद्धिक भोजन स्वयं जुटाना पड़ा । बड़े लोगों की जीवनियां बड़े चाव से पढ़ गये ।

अपनी उसी प्रतिभा के प्रकाश में उन्होंने यह सत्य पा लिया कि मनुष्य को स्वयं ही अपने आपका गुरु बनना चाहिए । दत्तात्रेय ने तो पशु-पक्षियों तक से सीखा ।

इसी प्रतिभा के कारण विभिन्न उद्योगों और व्यवसायों के अलावा बंदूक चलाना, पहलवानी, घुड़दौड़, ऊंट-सवारी, तैराकी, संगीत, चित्रकला, फोटोग्राफी, मूर्ति और स्थापत्य-कला आदि शक्ति और सौंदर्य-बोध का शायद ही कोई क्षेत्र इनसे अछूता रह गया हो । इसी क्षमता विशेष के बल से वह जीवन जगत के हर क्षेत्र में दूरदर्शी बने ।

भगवान को भोग लगाकर खाना चाहिए, यह उनका सिद्धांत बचपन से ही था।

"तेन त्यक्तेन भुंजिथाः" ईशावास्योपनिषद् का यह वाक्य उन्होंने उस समय तक नहीं पढ़ा था। पर उनका विश्वास था कि भोग लगाकर खाने से भगवान खाने वाले का भला करते हैं। पितामह से बालक घनश्याम ने यह बात सुनी थी, "इस जीवन में छोड़ने के लिए जो जितना राजी है, उतना ही उसे मिलता है। जो छोड़ते हैं वे ही भोग पाते हैं।"

जीवन के नियम कैसे विरोधाभासी हैं, इस मर्म को उन्होंने दादा, माता-पिता और अपने बड़े भाई जुगलकिशोरजी से पा लिया--जिसने चाहा कि मैं धनी हो जाऊं उसे जितना धन मिलता जाता है, वह आदमी भीतर से उतना ही निर्धन होता चला जाता है। जिसने सोचा कि मैं मरने को राजी हूं, उसे अमृत का पता चल गया।

**देना, छोड़ना, अद्‌भुत है यह सूत्र।**
**इस सूत्र को कोई 'बिरला' ही पकड़ता है।**

# ऐसा जीवन

फाल्गुन कृष्ण एकादशी (११ फरवरी १९४२) के दिन की बात है। दिन ढल रहा था। सूर्य निस्तेज होकर अस्ताचल की ओर धीरे-धीरे जा रहा था। वर्धा शहर की ओर से एक लंबा जुलूस महिला आश्रम के आगे से गुजरता हुआ गोपुरी के टीले की ओर तेजी से बढ़ रहा था !

यह देखने वाले थे श्री घनश्यामदासजी, और दृश्य था सेठ जमनालाल बजाज की अंतिम यात्रा का। जुलूस गोपुरी के टीले पर पहुंचा। उनका शव जमीन पर रखा गया। अपार जनता ने नश्वर देह के अंतिम दर्शन किये। भीड़ ने कुंडली का आकार धारण कर चिता को चारों ओर से घेर लिया। हम जिसे प्यार करते थे, उसे ही फूंक डालेंगे, किसने ऐसा संकल्प-विकल्प किया होगा ?

घनश्यामदासजी के मुख पर परिव्याप्त यह प्रश्न !

ग्यारह जून उन्नीस सौ तिरासी, शनिवार सुबह नौ बजकर पच्चीस मिनट, लंदन का पार्क टावर्स। अचानक घनश्यामदासजी का देहांत हो गया। उनके शव को सफेद कपड़े से ढक दिया गया था। वहां पहुंचे हुए स्वजनों ने उनके मुख पर से कपड़ा हटाकर पुनः उनके चेहरे को देखा--तन्मय, किंतु शांत। चिर-निद्रा का भाव था। लगता था, मौन स्वरों में आज भी वही कह रहे हों, जो इसी तरह जमनालालजी को देखते हुए कहा था--"इस जगत में कोई लंबे अरसे तक एक साथ नहीं रह सकता। जब अपना शरीर ही चिरकाल तक अपने साथ नहीं, तो दूसरों का सहवास कैसे रह सकता है ? इसलिए हम अपना काम किये जाते हैं, तुम अपना काम किये जाओ।"[१]

---

१ रेखाचित्र : बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ ८०

जमनालालजी ने घनश्यामदासजी से कहा था, "ईश्वर से मांगो कि मुझे सुख की मौत मिले।" ईश्वर ने उन्हें वही दिया, जो चाहते थे।

घनश्यामदासजी ने केदारनाथ की पैदल यात्रा के समय स्वामी अखंडानंदजी से प्रणाम करते हुए कहा था, "मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि अंत तक भगवान की स्मृति बनी रहे और मैं इस दुनिया से चलते-फिरते चला जाऊं।" उनके ही शब्दों में उनकी अंतिम इच्छा :

**मेरी तो बस यह अभिलाषा--**
**चिता निकट भी पहुंच सकूं मैं**
**अपने पैरों पैरों चलकर !**[२]

सचमुच जो उन्होंने चाहा, वही हुआ। ऐसा अंत महान आत्माओं का ही होता है। ऐसे जीवन मनन करने योग्य है।

घनश्यामदासजी का जन्म चौदह अप्रैल सन अठारह सौ चौरानवे, तद्नुसार विक्रम संवत उन्नीस सौ इक्यावन, चैत्र शुक्ल रामनवमी, दिन शुक्रवार को हुआ। पिता बलदेवदासजी बिड़ला, माता योगेश्वरी देवी। पितामह सेठ शिवनारायणजी बिड़ला। इन्होंने ही अपने पौत्र का नाम घनश्यामदास रखा। शिवनारायणजी के पिता शोभारामजी, शोभारामजी के पिता उदयरामजी, उदयरामजी के पिता भूधरमलजी, भूधरमलजी के पिता सेठ जयमलजी। इस तरह श्री बिड़ला-वंशवृक्ष के आदि पुरुष बेहड़सिंह, प्रतिहार वंशी क्षत्रिय।

आठवीं सदी में प्रतिहार वंशी क्षत्रियों ने वैष्णव-धर्म अपनाया। तब उनमें से एक शाखा माहेश्वरी के रूप में विकसित हुई। माहेश्वरी श्रेणी चलाने वाले शूरवीरों की संख्या बहत्तर थी। बेहड़सिंहजी भी इन्हीं में एक थे, जो बाद में राजस्थानी लहजे में बेहड़ा, बेहड़ला, बेड़ला और बिड़ला या बिरला कहे जाने लगे। इस तरह बिड़ला वंश वृक्ष के मूल पुरुष 'सिंह' थे। बिड़लाओं का गोत्र शांडिल्य है। माहेश्वरी वैश्यों की बहत्तर शाखाओं में मोहता, डागा, बियाणी, मालाणी, मालपाणी, सोमाणी, जाजू, साबू आदि हैं। इन्हीं में 'बिड़ला' नाम की भी एक शाखा है, जो देश के विभिन्न स्थानों में निवास करती रही है। उनकी एक शाखा सम्वत् सोलह सौ पचास में शेखावटी (राजस्थान) के बुधोली ग्राम से आकर नवलगढ़ नगर में बसी और वहां से सेठ भूधरमलजी का परिवार पिलानी (शेखावटी) में निवास करने लगा।

२. बच्चनजी की कविता

सेठ भूधरमलजी के तीन पुत्र हुए--उदयरामजी, माणिकरामजी और रामसुखदासजी। माणिकरामजी और रामसुखदासजी पिलानी से बाहर चले गये। पिलानी का वर्तमान मूल वंश उदयरामजी की संतान से विकसित हुआ। उनके तीन पुत्र थे—शोभारामजी, रामधनदासजी और चुन्नीलालजी। चुन्नीलालजी निःसंतान रहे। रामधनदासजी के पुत्रादि ग्वालियर जाकर बस गये और शोभारामजी का सन अठारह सौ उनसठ में गदर की विफलता के बाद अजमेर में देहांत हो गया। शोभारामजी के एकमात्र पुत्र सेठ शिवनारायणजी बिड़ला हुए। सेठ शिवनारायणजी के पुत्ररत्न राजा बलदेवदासजी बिड़ला थे। उन्होंने स्वयं और अपने पुत्रों के हाथों बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय जीवन को अपने आर्थिक सौजन्य से सबल बनाया और देश को समादृत किया।

पिलानी शेखावटी का अंग है और जयपुर राज्य के अंदर स्थित है। पिलानी जिला हिसार और राजपूताना के संधि-स्थल पर लोहारू से बीस मील दक्षिण की ओर बसा है। पिलानी का नामकरण पिलाणिया जाट के नाम पर हुआ है। इतिहास बताता है कि राव शेख की सातवीं पीढ़ी में जयपुर राज्य का बंटवारा हो गया। आठवीं पीढ़ी में राज्य के कई और छोटे-छोटे टुकड़े हो गये। तब एक भाग बनेड़े में दलेलसिंहजी अपनी राजधानी बनाकर रहने लगे और पास ही एक गांव में उन्होंने अपना गढ़ बना लिया। इस गढ़ का नाम दलेलगढ़ था। आगे चलकर दलेलसिंह अपना क्षेत्र बढ़ाने के प्रयास करने लगे, तभी सीकर के राजा लक्ष्मणसिंहजी ने दलेलगढ़ पर धावा बोल दिया। उस लड़ाई में नवलगढ़ से आकर दलेलसिंह के बड़े भाई ने उन्हें सहायता दी। इसी मौके पर पिलाणिया नामक जाट ने बहादुरी दिखायी, जिससे दलेलसिंह की जीत हुई। तभी से इस गढ़ का नाम पिलानी पड़ गया। पिलानी के पट्टे में अभी तक इस स्थान का नाम दलेलगढ़ ही है।

पिलानी नगर, परगना तरहड़ का एक ग्राम था, जो वादे में शेखावत सरदार ठाकुर शार्दूलसिंह के पुत्र, ठाकुर नवलसिंह के हिस्से में आ गया था। 'शेखावटी-उद्गम प्रकरण' में लिखा है कि ठाकुर नवलसिंह ने अपने नाम से नवलगढ़ नगर बसाया था। तभी से यह पिलानी गांव नवलगढ़ के सरदारों के आधिपत्य में आया। बाद में नवलगढ़ भी दो ठिकानों--नवलगढ़ और मुकुंदगढ़--में विभाजित हो गया था। मुकुंदगढ़ के ठाकुर बाघसिंह थे। नवलगढ़ के ठाकुर रावल मदनसिंह से बिड़ला-परिवार का बहुत घनिष्ठ मैत्री संबंध रहा है।

घनश्यामदासजी के पिता बलदेवदासजी का मूल परिवार अठारह सौ तिरसठ

में चार पीढ़ियों से पिलानी में रह रहा था। जब बलदेवदासजी का जन्म हुआ तो उस समय पिलानी की जनसंख्या लगभग डेढ़ हजार थी। सौ घर वैश्यों के थे, जिनमें मुख्यतः अग्रवाल थे। दस-पंद्रह परिवार माहेश्वरियों के। बाद में पिलानी का विकास हुआ। राजस्थान के अन्य क्षेत्रों की तरह पिलानी के ये लोग उच्च आदर्शों को लेकर चले।

समूचे राजस्थान में श्रेष्ठि-जन लोक-कल्याण, हिंदुत्व की रक्षा और समाज के हित-साधन में लगे हुए थे। बीकानेर और जैसलमेर में तो ये श्रेष्ठि-जन राज्य के दीवान तक रहे। इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं कि क्षत्रिय राजाओं के यश को इन्हीं श्रेष्ठियों ने सुरक्षित और संचित रखा। इन्हीं ने राजस्थान के रेगिस्तानों को राज-महलों, अट्टालिकाओं, मंदिरों, सरोवरों, कुओं, धर्मशालाओं, पाठशालाओं और अन्य उपयोगी संस्थाओं से सजा दिया। श्रेष्ठियों ने ही प्रवासी बनकर और संपत्ति अर्पित कर शेखावटी को समृद्ध कर दिया।

अधिकतर श्रेष्ठि-जन (मारवाड़ी) अर्द्ध स्थायी प्रवासी थे। जवान तो क्या, कुमार अवस्था तक पहुंचते ही ये वीर-बांकुरे तमाम कठिनाइयों, सीमाओं के बावजूद व्यापार के लिए बाहर निकल पड़ते थे और कमाई करने के बाद ही उत्प्रयास से लौटते। ठीक यही कथा शिवनारायणजी की है।

शिवनारायणजी के पितामह उदयरामजी के समय तक बिड़ला-परिवार के पास पर्याप्त धन-संपदा रही, लेकिन शिवनारायणजी के पिता शोभारामजी के समय में सेठाई का ह्रास हो गया। कारण था, संपत्ति का बंटवारा, देश में राजनीतिक उथल-पुथल और राजस्थान में अकाल की काली छाया का पड़ना। फलस्वरूप शोभारामजी अजमेर के सेठ गनेड़ीवाला की पैड़ी पर काम करने लगे। उन्हें वार्षिक वेतन तो सिर्फ तीन सौ एक रुपया मिलता था, लेकिन इसके साथ ही नफे में भी उनको निश्चित हिस्सा दिया जाता था। सेठ गनेड़ीवाला शेखावटी के ही निवासी थे। उनके यहां मुख्य रूप से लेन-देन का काम होता था।

अठारह सौ उनसठ में अजमेर में शोभारामजी का देहांत हो गया। उस समय शोभारामजी के पुत्र शिवनारायण की आयु केवल सोलह वर्ष की थी। यह उन दिनों की बात है, जब ईस्ट इंडिया कंपनी केवल व्यापारी संस्था नहीं रह गयी थी। कंपनी के अधिकार समाप्त हो गये और भारत में ब्रिटिश शासन का प्रारंभ हुआ। अब यह अंग्रेजी हुकूमत राजनीतिक हथियारों की जगह व्यवसाय का अंकुश लगाकर आर्थिक शासन करने की पक्षपाती हो गयी। स्थानीय मंडियों का रूप अपनी सुविधानुसार

परिवर्तित कर दिया गया। देश के व्यापारिक केंद्रों की जगह बंबई, कलकत्ता जैसे बंदरगाहों वाले व्यावसायिक केंद्रों को महत्त्व दिया जाने लगा। यों तो राजस्थान से व्यापारियों का अन्य भागों में जाना जयपुर के महाराजा मानसिंह, जो कि अकबर के सेनापति थे, के समय से ही आरंभ हो गया था, परंतु सन १८५८ के बाद राजस्थान से मुख्यत: शेखावटी क्षेत्र से वैश्यों के काफिले-के-काफिले राजस्थान से बाहर बंबई और कलकत्ता जाने लगे। इसका कारण क्या था ? इसे जानने के लिए हमें राजस्थान का भूगोल समझना जरूरी है। राजस्थान बंजर भूमि है। वह रेगिस्तान है। पानी बहुत कम गिरता है और जमीन के नीचे पानी की सतह बहुत नीचे है। जीवन-यापन के लिए लोगों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है। प्रकृति यहां उदार नहीं है, लेकिन यही राजस्थान के लोगों के लिए वरदान सिद्ध हुआ है। इसी ने उन्हें कठोर श्रम करने और उद्यमी बनने के लिए प्रेरित किया। राजस्थान में व्यापार की बहुत कम संभावनाओं के कारण कई उद्यमी राजस्थान से बाहर अन्य क्षेत्रों में गये।

ऐसे समय में ही शिवनारायणजी के पुत्र बलदेवदासजी का जन्म सन अठारह सौ तिरसठ में हुआ।

पिता की मृत्यु तक पिलानी में शिवनारायणजी के जीवन की गाड़ी सामान्य रफ्तार से चल रही थी। लेकिन इस बीच उनके जीवन में जो भारी उथल-पुथल मची, उसने शिवनारायणजी को बंबई प्रवास की प्रेरणा दी। बंबई जाने से पहले वे कुल-मर्यादानुसार गनेड़ीवालों का आशीर्वाद लेने अजमेर गये। उनका भव्य कारोबार देखकर किशोर शिवनारायण के मन में बड़ा व्यापारी बनने की आकांक्षा जागी। गनेड़ीवालों ने उन्हें बहुत समझाया कि बंबई में व्यापार करने के लिए जाना बिलकुल ठीक नहीं है। इससे तो कहीं अच्छा होगा कि तुम भी अपने पिता की तरह हमारे यहां नौकरी कर लो। लेकिन शिवनारायणजी अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। अजमेर से लौटने के बाद उन्होंने माताजी से कुछ रुपये लिये और बंबई की राह ली।

उस समय शिवनारायणजी ऊंटों पर सवार होकर गये थे। तब बलदेवदासजी की आयु साढ़े चार वर्ष की थी। बंबई-प्रवास में जाते समय शिवनारायणजी की आयु तेईस वर्ष की थी। उन्होंने अपने साथ मानकरामजी के पोते सुखदेवदास बिड़ला को ले लिया था। सुखदेवदास उस समय केवल चौदह वर्ष के थे। रास्ता विकट था। चोर, डाकुओं का खतरा था। इसीलिए ऐसी यात्राएं एक समूह के साथ होती थीं, जिसे 'सागा' कहते थे। दिन भर ऊंटों पर चलना, रात को किसी धर्मशाला में या खुले में पड़ाव डालकर पड़े रहना, यह रोजमर्रा का कार्यक्रम था। अपार कष्टों के साथ

ऊंट पर एक हजार मील की यात्रा करना आसान नहीं था। एक अच्छा ऊंट साठ मील प्रतिदिन की रफ्तार से चलता था। एक दिन में इतनी ही यात्रा हो पाती थी। शिवनारायणजी और सुखदेवदासजी ऐसी ही जोखिमभरी पगडंडियों से होकर बीस दिन की रोम-रोम कंपा देने वाली यात्रा के बाद खंडवा पहुंचे। खंडवा से इन लोगों ने रेलगाड़ी में बैठकर बंबई तक की यात्रा पूरी की।

उस समय बंबई मूलतः गुजरातियों, भोटियों, पारसियों और खासकर अंग्रेजों की नगरी थी। फर्मों के मारवाड़ी मालिकों ने अपने क्षेत्र के प्रवासियों के ठहरने के लिए इस शहर में बासे बनाये थे। पिलानी और उसके आसपास के इलाकों से बंबई आने वालों के लिए यहां पर 'पिलानी मंडले' के नाम से एक बासा पहले से ही स्थापित था। शिवनारायणजी अपने साथी सुखदेवजी के साथ इसी बासे में ठहरे।

उस समय मैनचेस्टर अधिक मात्रा में भारत से सूत मंगाने लगा था। पहले सूत कुल निर्यात का छोटा-सा हिस्सा था, परंतु अमेरिकी गृह-युद्ध के कारण अमेरिका की प्रतिद्वंद्विता समाप्त होने के बाद सारा निर्यात तेजी से बढ़ा। इसके कारण ही यहां सूती कपड़ा उद्योग का जन्म हुआ, जिसका केंद्र बंबई था।

इस उद्योग का प्रमुख काम सुदूर पूर्व को निर्यात के लिए सस्ता कपड़ा तैयार करना था। "सन अठारह सौ पैंसठ के बाद कुछ समय तक सूती कपड़ों का बाजार थोड़ा नरम पड़ा, पर शीघ्र ही उसमें फिर तेजी आ गयी। अठारह सौ चौवन में पहली मिल लगायी गयी थी। अठारह सौ पिचानवे तक बंबई में ही ६४ मिलें काम करने लगीं।"[३]

उन दिनों भारत जितनी चीजों का आयात करता था, उससे अधिक चीजों का निर्यात भी करता था। इस निर्यात-कार्य से मारवाड़ी कई प्रकार से संबंधित थे। अठारह सौ उनहत्तर में भारत से कुल पंद्रह करोड़ बीस लाख पौंड स्टर्लिंग मूल्यों की चीजों का निर्यात हुआ, जिसमें दो करोड़ की कपास थी। इसके अलावा तीस-तीस लाख का तिल और अनाज, बीस-बीस लाख का पटसन और तिलहन तथा एक करोड़ दस लाख की अफीम निर्यात की गयी।

उस समय भारत से काफी मात्रा में अफीम चीन को भेजी जाती थी। मालवा और बंबई में तो अफीम के व्यापार की ओर आकर्षित होने वाले तमाम व्यापारी यहां बसने लगे थे। इस तरह देश का सबसे बड़ा व्यापार अफीम-निर्यात ही बन गया था।

३. मारवाड़ी समाज : व्यापार से उद्योग तक : टामस ए. टिंबर्ग, पृष्ठ ५८

अफीम के निर्यात-व्यापार के साथ-साथ अफीम के भाव पर औसत का सट्टा भी खूब होता था। चीन के लिए अफीम का निर्यात करने वाले व्यापारी बंबई में नीलामी में अफीम खरीदते थे। सट्टा इस बात को लेकर होता था कि सारे दिन अफीम का भाव क्या रहेगा ? एक दूसरी तरह का भी सट्टा था, जिसमें उस दिन चीन के लिए रवाना होने वाले जहाजों पर लदी हुई अफीम का औसत भाव भी बताना होता था। यह सट्टा किस्मत और कौशल दोनों का ही खेल था। शिवनारायण-जी ने इसी खेल में हाथ डाला।

इस तरह के सट्टे में उन्होंने लाखों रुपये कमाये। बंबई में शिवनारायणजी को पोद्दारों की फर्म 'चेनीराम-जेसराज' से बहुत सहारा मिला। चेनीराम-जेसराज की गद्दी में ही एक कोने में बैठकर वह अपना अलग धंधा करते थे।

तीन वर्षों में ही उन्हें अच्छी कमाई हो गयी थी। इतनी कमाई से उनके साथ आये सुखदेवजी को इतना संतोष हुआ कि वे पिलानी लौट गये, लेकिन शिवनारायण-जी की महत्त्वाकांक्षा बढ़ती ही चली गयी और वे इस व्यापार में बहुत दक्ष सिद्ध हुए।

तभी पिलानी से उन्हें चिट्ठी मिली कि बलदेवदासजी नौ साल के हो गये हैं और उनका यज्ञोपवीत करना है। पत्र पाते ही शिवनारायणजी बंबई से पिलानी की ओर चल पड़े। इस बीच रेल की एक और छोटी लाइन अहमदाबाद तक आ चुकी थी। शिवनारायणजी इसी छोटी लाइन से अहमदाबाद आये। वहां से ऊंट पर बैठकर पिलानी पहुंचे। पुत्र का यज्ञोपवीत-संस्कार धूमधाम से पुष्कर में जाकर किया। भागवत-कथा और पूजा-सप्ताह आदि भी संपन्न हुआ।

अब तक शिवनारायणजी 'सेठ' के नाम से विख्यात हो चुके थे। पर वह सेठ क्या, जिसकी अपने गांव में हवेली न हो। शिवनारायणजी ने अपने गांव में हवेली, शिवालय और कुंआं बनवाने का काम हाथ में लिया। सेठ शिवनारायणजी के खुदवाये हुए कुंओं में से मीठा पानी निकला। सारे गांव में यह बात फैल गयी कि सेठ की कमाई ईमानदारी की है, तभी तो कुएं में मीठा पानी निकला है। गांव के बाकी कुंओं का पानी खारा था।

शिवनारायणजी ने अपना स्वतंत्र व्यवसाय शुरू करने के लिए जब अजमेर में गनेड़ीवालों की नौकरी छोड़ी, तब उन्होंने गनेड़ीवालों से कहा कि उनके स्वर्गीय पिता शोभारामजी के बारे में वे पूरा हिसाब बता दें। गनेड़ीवालों ने जो हिसाब दिया, उसमें बताया गया था कि शोभारामजी से बहुत-से पैसे उन्हें वसूलने हैं।

शिवनारायणजी ने वचन दिया कि उनके पिताजी को जो देना है, उसका एक-एक पैसा वे चुका देंगे। कई वर्ष व्यतीत हो गये। अपनी योग्यता और दूरदर्शिता के कारण शिवनारायणजी ने बंबई में सफलतापूर्वक अपने को स्थापित कर लिया। बंबई से पिलानी लौटते हुए शिवनारायणजी, जो अब सेठ बन गये थे, अजमेर गये। वे गनेड़ीवालों से मिले और उन्होंने उनसे पूरे हिसाब की मांग की। उन्होंने मांग की कि जो पिछला बकाया उनके पिताजी को देना है, उस पर जो ब्याज बनता हो, वह भी जोड़कर बताएं। गनेड़ीवालों ने ब्याज सहित हिसाब दे दिया। शिवनारायणजी ने न तो ठीक तरह से हिसाब देखा और न ही कोई प्रश्न उनसे किया और सारा पैसा गनेड़ीवालों को दे दिया। इसके बाद उन्होंने गनेड़ीवालों से कहा कि जिस कागज पर उन्होंने हिसाब दिया है, उसी पर वे हस्ताक्षर कर यह लिखकर वापस कर दें कि उनके पिताजी को जो कुछ पैसा देना था, वह सबका-सब उन्हें मिल गया है और अब कुछ बकाया नहीं रह जाता। इस कागज को लेकर शिवनारायणजी पिलानी वापस चले गये और हिसाब के इस कागज को उन्होंने सावधानी से अपनी तिजोरी में रख दिया।

कुछ समय बाद गनेड़ीवाले कठिनाई में फंस गये, उनका व्यापार चौपट हो गया। एक दिन वे अचानक पिलानी जा पहुंचे और शिवनारायणजी से मिले। गनेड़ीवालों ने सोचा था कि इतने वर्ष व्यतीत हो गये हैं, शिवनारायणजी ने यह हिसाब संभालकर नहीं रखा होगा कि उनके पिताजी को कितना कर्जा वापस करना है। यही सोचकर गनेड़ीवालों ने शिवनारायणजी से कहा कि उन्हें अब भी उनके पिताजी के ऊपर कर्ज का बहुत-सा पैसा वापस लेना है। शिवनारायणजी को आश्चर्य हुआ, लेकिन उन्होंने गनेड़ीवालों से ठहरने के लिए कहा। उन्होंने हिसाब का वह कागज, जो संभालकर रखा था, खोज निकाला। उस कागज को उन्होंने गनेड़ीवालों को दिखाया। उसमें स्पष्ट रूप से लिखा था कि शोभारामजी से जो कुछ भी लेना था, वह सारे-का-सारा पैसा उनके लड़के शिवनारायणजी से प्राप्त कर लिया गया है। यह देखकर गनेड़ीवाले हक्के-बक्के हो गये। उन्हें बहुत शर्मिंदा होना पड़ा। शिवनारायणजी ने तब उनसे कहा कि यदि उन्हें इस समय आर्थिक कष्ट आ पड़ा है तो उनके लिए अच्छा यही होता कि वे आर्थिक सहायता की मांग करते। उन्होंने कहा कि उनके पिताजी के संबंध गनेड़ीवालों के परिवार के साथ दीर्घकालीन रहे हैं। इसलिए यदि वे अब आर्थिक सहायता की मांग करते तो शिवनारायणजी कदापि इंकार न करते। इसके बाद उनके इस व्यवहार पर थोड़ी-सी शिकायत करने के बाद शिवनारायणजी ने गनेड़ीवालों को काफी पैसा दिया।

शिवनारायणजी ने शानदार हवेली बनायी । गृह-प्रवेश धूमधाम से हुआ । तब उनकी इच्छा हुई कि घर में बहू भी लायी जाये । बारह वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने अपने पुत्र बलदेवदासजी का विवाह संपन्न किया । पुत्र-विवाह के ठीक चार माह बाद शिवनारायणजी दोबारा बंबई-प्रवास पर चले गये ।

विवाह करके घर में बैठना बलदेवदासजी को उचित नहीं लगा । अंततः एक दिन अंटी में पैसे और पीठ पर ढाल कसकर, कमर में तलवार लटकाकर वह भी दिसावरियों की एक टोली के साथ पिता के ही रास्ते बंबई पहुंच गये ।

पिता और पुत्र ने मिलकर बंबई में व्यापार बढ़ाना शुरू किया । चार वर्ष बाद बंबई में 'शिवनारायण-बलदेवदास' नामक फर्म की स्थापना की गयी । जो सपना लेकर शिवनारायणजी ने अजमेर में मुनीमगीरी ठुकराई थी और बंबई-प्रवास किया था, वह सपना पूरा हुआ । अठारह सौ अस्सी में बलदेवदासजी गौना कराने के लिए पिलानी वापस गये । गौने के कुछ ही दिनों बाद सत्रहवर्षीय बलदेवदास को एक तीर्थ-यात्रा दल का नेतृत्व करने का अवसर मिला । हरिद्वार में कुंभ का मेला था । पिलानी से हरिद्वार जाने के लिए सीधा रेलमार्ग नहीं था । तब राजस्थान के ग्रामीणों को रेल का अभ्यास ही नहीं था । इसलिए यात्रा ऊंटों पर होती थी ।

कुंभ-स्नान के इच्छुक गांव के लोग एक पैंसठवर्षीय वृद्ध के नेतृत्व में कुंभ-यात्रा करना चाहते थे । तभी खबर मिली कि हरिद्वार में हैजा फैला है । समाचार सुनकर नेतृत्व करने वाले वृद्ध महोदय पीछे हट गये । जोखिम उठाना खतरनाक था ।

जब प्रश्न उठा कि यात्रियों का नेतृत्व कौन करेगा, तब किशोर बलदेवदासजी नेतृत्व करने के लिए आगे आये । पूरे एक महीने यह यात्री-दल तीर्थ-यात्रा करता रहा और फिर सभी लोग सकुशल लौट आये । इसका पूरा श्रेय बलदेवदासजी को मिला । उन दिनों किशोर बलदेवदासजी कानों में कांकरू और हीरों की लौंग पहनते थे । गले में होता था हीरों का कंठा । कपड़े होते--थोड़ी ऊंची धोती और ऊपर से लंबा कोट । माथे पर टेढ़ी पगड़ी पहनते थे और गले में छपी हुई चादर । मूंछें हल्की होती थीं और मुखाकृति गंभीर । शरीर का डील-डौल भी अच्छा था ।

हरिद्वार की तीर्थ-यात्रा के फलस्वरूप अगले ही वर्ष उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई । पिलानी में जन्मे इस पोते का नाम रखा गया--जुगलकिशोर । यह नाम सुझाया बंबई से दादाजी ने । जुगलकिशोर आखिर इस परिवार के इष्ट-देवता जो थे ।

अठारह सौ उन्नासी में शिवनारायण-बलदेवदास फर्म की स्थापना के बाद

शिवनारायणजी ने मुंबा देवी के पास अपनी एक निजी दूकान भी ले ली। अफीम के व्यापार में भी शिवनारायणजी बराबर उन्नति कर रहे थे।

शिवनारायणजी ने एक बार स्वयं स्वीकार किया, "मैंने कुल मिलाकर अभी तक कमाया तो लाखों है, लेकिन घाटे में सिर्फ आठ हजार ही दिया है।"[४]

अठारह सौ तिरासी के आसपास शिवनारायणजी का स्वास्थ्य कुछ बिगड़ने लगा था। फिर भी वे नियम के पक्के थे। सुबह सात बजे ही दूकान में आकर बैठ जाते थे। पुत्र इस बीच व्यापार के सारे दाव-पेंच समझ चुका था। उसने पिता को सुझाव दिया कि वे स्वास्थ्य लाभ के लिए पिलानी चले जाएं। यहां का काम वह संभाल लेगा।

ऐसा ही हुआ। शिवनारायणजी ने पिलानी में आकर अपने पोते को देखा। पिलानी भी बदल चुकी थी। कभी इसी को 'जाटों की पिलानी' और 'बड़वाली पिलानी' जैसे नामों से जाना जाता था। अब वह सेठों की पिलानी कही जाने लगी थी। सार्वजनिक हित के आयोजन बड़े पैमाने पर वहां होने लगे थे।

व्यवसाय और कारोबार में इतनी उन्नति के बावजूद बंबई में बलदेवदासजी के पास कोई मकान नहीं था। उन्होंने अपने पिता से अनुरोध किया कि वे बंबई में मकान लेने की अनुमति दें। पिता की अनुमति पाते ही सन अठारह सौ इक्यानवे में बलदेवदासजी ने फानसबाड़ी में एक मकान ले लिया। उसी वर्ष शिवनारायण-बलदेवदास फर्म को जबर्दस्त मुनाफा हुआ।

शिवनारायणजी कुछ समय बाद रामेश्वरम की तीर्थ-यात्रा करने गये। वहां उन्हें शुभ समाचार मिला कि पिलानी में दूसरे पौत्र का जन्म हुआ। उन्होंने इसे रामेश्वरम का प्रसाद माना और नाम रख दिया—रामेश्वरदास। तीर्थ-यात्रा से पिलानी लौटने के बाद उन्होंने अपने बड़े पोते जुगलकिशोर का रिश्ता पक्का कर दिया। जुगलकिशोर तब बंबई में पिता और दादा की देखरेख में व्यापार करना सीखने लगे थे। ग्यारहवर्षीय जुगलकिशोर की बारात फतेहपुर ले जायी गयी। अच्छी संपत्ति कमाने के बाद यह बिड़लाओं का पहला मांगलिक कार्य था। इस बारात में एक हाथी, दस रथ, बीस घोड़े और अनेकानेक ऊंट थे।

सन अठारह सौ चौरानवे (संवत् १९५१) में रामनवमी के शुभ दिन शिवनारायणजी के तीसरे पोते का जन्म हुआ। उसका नाम स्वयं उन्होंने घनश्यामदास रखा।

---

४. राजा बलदेवदास बिड़ला, बरुआ, पृष्ठ २१

श्रेष्ठ समाज ने देखा, रामनवमी के दिन जन्म होने से 'राजयोग' बन गया है। इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति अध्यवसायी, कर्त्तव्यपरायण, न्यायप्रिय, स्वाभिमानी, शूरवीर, कल्पना प्रवण, नियमित कार्य करने वाला, विद्या-व्यसनी, सदाचारी, साहसी, उद्यमी और कर्मनिष्ठ होता है। कुंडली में एक और विशेष लक्षण था 'एकावली योग 'का, जिसका अभिप्राय है––जन्म-समय एक-एक भाव में एक-एक ग्रह का होना। इस योग में जन्म लेने वाला जातक गुणवान, धनवान, परोपकारी तथा बिश्वविख्यात होता है।

परिवार तब तक संपन्न हो चुका था। घनश्यामदासजी को राजस्थान का कठोर जीवन देखने को नहीं मिला। उन्होंने यह देखा कि उनके परिवार की धर्म-कर्म और ईश्वर में पूरी आस्था है। उनके पितामह और पिता दोनों का पूर्ण विश्वास था कि ईश्वर हमें जीवन के आनंद-यज्ञ में निमंत्रित करता है। इस निमंत्रण को पितामह ईश्वर की कृपा मानते थे और पिता अपने सत्कर्मों का फल। पितामह और पिता दोनों का चरित्र और जगत व्यवहार ऐसा था, जिन्होंने कभी विह्वल होकर यह नहीं कहा कि जीवन दुःखमय है और कर्म केवल बंधन है। वे दोनों ऐसे बिरले पुरुषों में थे, जो दुख और कष्टों से कभी पराजित नहीं हुए। बालक घनश्यामदासजी ऐसे धर्मपरायण पितामह और आस्तिक पिता की छत्र-छाया में अपने जीवन के मार्ग पर सहज ही आगे बढ़े।

# अंक से अक्षर-ज्ञान

हवेली का जीवन एक संयुक्त परिवार था । घर में दादा ही उस परिवार के 'कर्त्ता' थे । तभी वह सबके दादोजी थे ।

दादोजी ही जन्म-मृत्यु, विवाह और अन्य समस्त कार्यों के अधिष्ठाता थे । पूरे परिवार का जीवन-व्यापार संचालन उन्हीं के हाथों में था । उन्हीं के द्वारा सबसे आवश्यकतानुसार लेन-देन होता । परिवार में किसकी क्या आवश्यकता है, यह सारी चिंता उन्हीं की थी । किस बालक की शिक्षा कब, कहां, कैसे शुरू होनी है, किसका विवाह कब, कहां, किससे होना है, सबका अंतिम निर्णय घर के उस मुखिया दादोजी पर ही था ।

घर-परिवार का यह वातावरण पिता-पुत्र में मोह-ममता की स्थिति पनपने नहीं देता था । बच्चे और दादा के बीच में जितने बड़े लोग होते थे, उन सबको काका-काकी का दर्जा सहज ही प्राप्त होता और सारे बच्चे उन्हीं संबंधों में गुंथे रहते । केवल अपनी संतान के प्रति व्यक्तिगत रूप से विशेष ध्यान देना अच्छा नहीं माना जाता था । परिवार में अपनी संतान से अधिक दूसरे बच्चों को प्रति स्नेह देना चरित्र की विशेषता मानी जाती थी । दादा के इस परिवार में धर्म की भावना और कठिन जीवन की साधना, इन दोनों मूल्यों ने पारिवारिक एकता और मर्यादा की नींव और भी सुदृढ़ की थी । इससे परिवार की अपनी एक विशेष सभ्यता और परंपरा बनती गयी ।

भारत की एक परंपरा मंदिरों और पाठशालाओं में विकसित हुई । दूसरी परंपरा संयुक्त परिवार के घरों की है । बिड़ला-परिवार दोनों परंपराओं का सेतु-बिंदु है । उनके बनाये हुए घर, मंदिर, पाठशालाएं तथा अन्य संस्थान इस बिंदु के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । इनके काम करने का ढंग, संस्थान बनाने के पीछे इनका दृष्टिकोण, जीवन जीने

का इनका कौशल सब-कुछ जैसे इनके घर-परिवार की प्रवृत्तियों से अखंड रूप में जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए इनका अक्षर-ज्ञान। दादोजी परोपकारी प्रवृत्ति के थे। जब रामेश्वरदासजी और घनश्यामदासजी की पढ़ाई का प्रश्न आया तो दादोजी ने विचार किया कि गांव में एक पाठशाला खोल दें। उसमें उनके पौत्र भी शिक्षा-लाभ कर सकेंगे तथा गांव के अन्य बच्चे भी। इस प्रकार पिलानी में शिक्षा-संस्थान का बीज रोपा गया, जो आगे जाकर घनश्यामदासजी की साधना और प्रयत्न के कारण महान-वृक्ष के रूप में परिणत हो गया।

उस समय अक्षर-ज्ञान अंक से होता था, सीधे अक्षरों से नहीं। इसी अक्षर-ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश के लिए कुल-परिवार की परंपरा के अनुसार सरस्वती और गणेश-पूजन के बाद समारोह के साथ बालक घनश्यामदासजी को पाठशाला भेजा गया। उस जमाने में उस स्थान को पाठशाला तो शायद ही कहते थे। बोलचाल की भाषा में उसे 'साल' कहा जाता था। यह 'साल' भी अद्‌भुत जगह थी।

एक पुरानी टूटी-फूटी मंडी में एक 'गुरु' पचासेक लड़कों को 'नीचे धरती और ऊपर आकाश' ऐसे एक खुले चौगान में धरती पर, बिना किसी जाजम या दरी बिछाये, बैठाकर पढ़ाते थे। ऊपर कोई छत नहीं थी। इसलिए धूप से बचने के लिए दीवार की आड़ में कक्षा लगती थी। जब वर्षा होती तब पाठशाला बंद कर दी जाती थी।

"पाठ्यक्रम की पुस्तकों के नाम पर तोबा थी। शायद इस शब्द का अर्थ भी गुरु नहीं जानते थे। स्लेट भी सब बच्चों के पास नहीं होती थी। जिनके पास स्लेट नहीं थी, उनके पास एक पटिया होती थी, जिस पर ईंट की खोर बिछाकर लकड़ी के 'बरते' से लड़के कुछ अंक लिख लेते थे।"[५]

अंक लिखे जाते थे, अक्षर नहीं। अक्षर-ज्ञान राजस्थान में उस जमाने में अनावश्यक समझा जाता था, शिक्षा का आरंभ होता था अंकों से। पट्टी-पहाड़ा, सवैया, डेढ़ा, ढांवां, पौना, कनकैया, जोड़, बाकी, गुणाकार, भागाकार, जबानी हिसाब--बस, यहां तक पहुंचे कि शिक्षा समाप्त। इसके बाद अक्षर-ज्ञान कराया जाता था, वह भी बिना मात्रा के अक्षर--जिन्हें 'मोडा' कहते थे। इन मोडा अक्षरों का भी कोई निश्चित स्टैंडर्ड नहीं था। मोडा अक्षर पढ़ने के लिए अनुमान बहुत लगाना पड़ता था। एक बार किसी ने पत्र भिजवाया, 'पिताजी अजमेर गये'। मोडा अक्षरों में मात्रा तो होती नहीं थी, पत्र वाले ने पढ़ा, 'पिताजी आज मर गये।' रोना-पीटना

५. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २५



मच गया। फिर पता ल
उस जमाने की शिक्षा
था'।

घनश्यामदासजी
दासजी घनश्यामदासज
से शाम को हवेली ले
घनश्यामदासजी कमज
वह मारे उमंग और
बचपन से ही बहुत थ
पीठ पर ढोकर मैं अ
में भी बाज नहीं आता
हमारे हेत, प्रेम और
से बीतता, उसकी स्म

उस समय की
कटले में, अर्थात् वाज
झाड़ू-बुहारी करके
पढ़ने वाले लड़कों की
चमारों के भी, कोई

"न जाने कैसे
बक्सिया तेली। वह
व्हारणी को सस्वर
दुअे को दो, तिये का
सब जोर से उसकी
पढ़ी पहाड़ा, फिर स
सबसे ऊंची पढ़ाई

रामदेवजी के
रामेश्वरदास नहीं प

६. रामेश्वरदास बिड़ल
७. वही, पृष्ठ ९२

मच गया। फिर पता लगाने पर स्पष्टीकरण हुआ, ऐसे होते थे मोड़ा अक्षर। बस यही उस जमाने की शिक्षा का क्रम था, जो करीब तीन-चार साल में समाप्त हो जाता था।

घनश्यामदासजी को भी इसी क्रम का अनुसरण करना पड़ा। वड़े भाई रामेश्वर-दासजी घनश्यामदासजी को पीठ पर चढ़ाकर गुरुजी के यहां ले जाते और उसी तरह से शाम को हवेली ले आते। उन दिनों बचपन में रामेश्वरदास शरीर से ठीक थे और घनश्यामदासजी कमजोर। रामेश्वरदास जव घनश्यामदासजी को पीठ पर चढ़ाते तो वह मारे उमंग और उत्साह के फदकियां उछलते-कूदते चलते। दोनों भाइयों का प्रेम बचपन से ही बहुत था। रामेश्वरदासजी का कहना था, "घनश्यामदास का बोझा पीठ पर ढोकर मैं अपना उसके प्रति प्रेम जतलाता, तो वह अपनी ताकत जतलाने में भी बाज नहीं आता। यदा-कदा घनश्यामदासजी को चपतियाता भी। इस प्रकार के हमारे हेत, प्रेम और बालकोचित हाथापाई में हमारा जीवन कितने सुख व संतोष से बीतता, उसकी स्मृति आज भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है।"[६]

उस समय की पाठशाला के गुरुजी का नाम था रामदेवजी। यह पाठशाला कटले में, अर्थात् वाजार में थी। खुली दूकानों को मिलाकर और सामने के आंगनों को झाड़ू-बुहारी करके उसमें शाला लगती थी। रामदेवजी नवलगढ़ के मिश्र थे। उनसे पढ़ने वाले लड़कों की संख्या सौ-सवा सौ थी। मुसलमानों के लड़के भी पढ़ते थे और चमारों के भी, कोई जाति-भेद नहीं था।

"न जाने कैसे प्राचीन स्मृति में गड़ा हुआ नाम आज याद आता है--पीर-बक्सिया तेली। वह हमें गिनती सिखाता। मेरा स्वर बचपन से ही सुरीला था, जो व्हारणी को सस्वर बनाने में साथ देता। हम दोनों पहले बोलते, 'एकाती तो एक, दुअे को दो, तिये का तीन, चौके का चार, एके-एके ग्यारा, एक दो बारा' और दूसरे सब जोर से उसकी व्हारणी लेते अर्थात् दोहरा-दोहराकर याद करते। पहली पढ़ाई पढ़ी पहाड़ा, फिर सवाया, डेढ़ा, घूंटा। सब इसी तरह 'व्हारणी' से। उस समय की सबसे ऊंची पढ़ाई थी कटवां ब्याज सीखना।"[७]

रामदेवजी के बाद बगड़ के ठाकर गांगजी अध्यापक वनकर आये। उनसे रामेश्वरदास नहीं पढ़े। घनश्यामदासजी ही उनके पास कुछ समय तक पढ़ सके।

---

६. रामेश्वरदास बिड़ला एक प्रेरक व्यक्तित्व, पृष्ठ ९१
७. वही, पृष्ठ ९२

जैसे ही रामेश्वरदास सात वर्ष के हो गये, वैसे ही उसी उम्र में दादोजी उन्हें अपने साथ बंबई लेकर चले गये। पिलानी में घनश्यामदासजी अकेले रह गये। अब वह अकेले ही पाठशाला जाते। उन दिनों घनश्यामदासजी का रूप-स्वरूप ही निराला था। गुंथी हुई लंबी चोटी, जिसमें सोने का मांदिल्य गुंथा होता, सिर पर छोटी-सी मारवाड़ी पगड़ी और माथे पर वैष्णव तिलक। चोटी के मामले में रामेश्वरदास की चोटी सबसे ज्यादा लंबी थी, घनश्यामदासजी की चोटी छोटी थी। रामेश्वरदास पढ़ने में जितने कमजोर थे, घनश्यामदासजी उतने ही तेज थे। इसीलिए बंबई से जल्दी ही रामेश्वरदास को फिर पिलानी भेज दिया गया। फिर दोनों भाई एक साथ पढ़ने लगे। बचपन में रामेश्वरदास जितने जिद्दी थे और जिसके कारण वह काकोजी से मार भी पाते थे, घनश्यामदासजी उतने ही आज्ञाकारी थे। वे किसी बात पर जिद नहीं करते थे। यही कारण था कि उन्हें काकोजी के हाथों कभी मार नहीं खानी पड़ी।

तीन-चार साल के बाद विद्यार्थी घनश्यामदासजी के जीवन में एक नयी घटना घटी। सुबह-सुबह पाठशाला पहुंचे तो देखा कि गुरु नदारद हैं। बात यह हुई कि गुरु की किसी विधवा से लाग-फांस थी और वह रात को ही गांव छोड़कर उस विधवा के साथ ऊंट पर चढ़कर भाग गया। यह एक उत्तेजनाप्रद घटना थी। गांव में इसे लेकर बड़ा शोरगुल मचा। गली-गली में इसकी चर्चा होने लगी। लड़कों में भी कौतूहल जाग उठा और कानाफूसी चलती रही। इस तरह वह पाठशाला सदा के लिए बंद हो गयी।

दादोजी और पिताजी को अब चिंता हुई, शिक्षण की। नया प्रबंध क्या हो, इस उधेड़बुन में पड़कर बहुत खोज-बीन के बाद एक नया गुरु बुलाया गया। उसका नाम था कानसिंह। वह जाति का राजपूत था। कानसिंह ने आकर बिड़लाओं के एक छोटे-से मकान में पाठशाला खोल ली। कानसिंह को केवल पांच रुपया मासिक वेतन मिलता था। 'बिखरे विचारों की भरोटी' में घनश्यामदासजी ने गुरु कानसिंह का सजीव चित्र खींचा है--"मुड्ढे पर बैठकर वह बेंत के जोर से पाठशाला चलाने लगा। पचास के करीब लड़के पाठशाला में जुट गये। मैंने भी इस पाठशाला में अपनी अधूरी शिक्षा कानसिंह के सहारे 'पूरी' की। दरअसल तो हर शिक्षा अधूरी ही रहती है, पर जबानी हिसाब-किताब सीखने के बाद सात ही साल की अवस्था में तो मैं दक्ष मान लिया गया। बाहर के लोग आकर यदि पूछते कि अढाई सेर का घी, तो एक मन का क्या दाम ? मैं चट से सही उत्तर दे देता था। यह उस जमाने में कोई साधारण विद्या नहीं मानी जाती थी।"[८]

८. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २६

काल-धर्म के अनुसार, वहां अंग्रेजी की भी कमी महसूस होने लगी। वह कमी कानसिंह से पूरी नहीं हो सकती थी। इसलिए अब यह तय हुआ कि कानसिंह को हटाकर कोई अंग्रेजी पढ़ा मास्टर रखा जाये। फलस्वरूप भिवानी से मास्टर रामविलास को बुलाया गया। घनश्यामदासजी ने अपने उन दिनों के संस्मरणों में रामविलासजी का भी खूब चित्र खींचा है, "हट्टे-कट्टे जवान और क्रोध की मूर्ति। तनख्वाह इनकी पच्चीस रुपये मासिक थी। रामविलास मास्टर ने स्कूल को एक नये ढांचे में ढाला। अब यह स्कूल नया रूप लेकर चलने लगा। स्कूल में घड़ी रखी गयी और घड़ियाल भी, जो हर घंटे, घंटा बजाकर गांव वालों को, कितना बजा है, यह बताती थी। गांववालों ने इसे एक बड़ी क्रांतिकारी घटना माना। कानसिंह से तो लड़के परिचित हो गये थे, क्योंकि उनमें स्थानीय 'बू' पुष्कल थी। पर जब रामविलास आये तो कुछ दिन लड़कों की उनकी खटक रही। बाद में उनके भी आदी हो गये। रामविलास की वेशभूषा भी अंग्रेजी ठाठ की थी और ऊपर से क्रोध की तेजी। इसलिए उनका रौब काफी जम गया।"[९]

मास्टर रामविलास का अंग्रेजी-ज्ञान सीमित था। किसी मौलवी साहब से उन्होंने उर्दू भी सीखी थी पर हिन्दी का उन्हें कतई ज्ञान नहीं था। इस वातावरण में बालक घनश्यामदासजी ने सर्वप्रथम अंग्रेजी की प्यारेचरण सरकार की 'फर्स्ट बुक आफ रीडिंग' में प्रवेश किया। अंग्रेजी के स्वर और व्यंजन से ही इस पुस्तक का आरंभ होता था। छोटे-छोटे शब्दों के बाद इसमें छोटे-छोटे सहज वाक्यों का क्रम था। घनश्यामदासजी ने धीरे-धीरे स्वर-व्यंजन समाप्त करके मास्टरजी की सहायता से एक साल में सारी पुस्तक का अंत कर दिया। उसी अंत के साथ नौ साल की आयु में उनकी शिक्षा के प्रथम सोपान का भी अंत हुआ। अंग्रेजी शब्दों का अर्थ मास्टरजी उर्दू में बताते थे, इसलिए घनश्यामदासजी का हिंदी ज्ञान तब सीमित ही रहा। प्रमाण के तौर पर कहा जा सकता है कि 'एक्स्ट्रा आर्डिनरि' शब्द का अर्थ मास्टरजी ने बताया था, 'अजब तरह की चालाकियां'। ऐसे बेहूदे अर्थों को भुलाने में घनश्यामदासजी को समय लगना स्वाभाविक था। वही व्यक्ति आगे चलकर शुद्ध और अच्छी हिंदी के लेखक बने, यह उनकी अपार क्षमता का परिचायक है।

रामविलासजी के बाद फिर आये मास्टर श्रीरामजी, जिनका पिलानी से आजीवन संबंध बना रहा। श्रीरामजी चुरू के थे और रामविलासजी के ही भांजे थे और उन्हीं की सिफारिश पर बुलाये गये थे। उन्होंने ताजा-ताजा मैट्रिक की परीक्षा

९. बिरवे विचारों की भरोटी, पृष्ठ २६-२७

पास की थी। हिंदी, उर्दू, संस्कृत और फारसी के वे जानकार थे। डिक्शनरी तो जैसे उन्हें कंठस्थ थी। उन्हीं के साथ घनश्यामदासजी की पढ़ाई का नया प्रकरण शुरू हुआ।

नोहरे में स्कूल जमा। स्कूल क्या था, दो कोठरी, एक तिबारा और उसके आगे टीन से छाया चबूतरा। उसी के नीचे गांवभर के करीब एक सौ विद्यार्थी पढ़ते। मास्टर श्रीरामजी नोहरे के दरवाजे के दोनों ओर की बगलियों में रहते। वहीं उनकी खाट बिछी रहती और ज्यादातर वहीं से पढ़ाते भी। पुस्तक से अंग्रेजी में शब्दों का ज्ञान कराया जाता और उनके अर्थ सिखाये जाते थे।

अपनी कक्षा में अंग्रेजी की पढ़ाई में घनश्यामदासजी सबसे आगे थे। पढ़ाई तो शाम को ही पूरी हो जाती पर रात को नौ बजे तक मास्टरजी को विद्यार्थी घेरे रहते थे। लड़कों को कभी-कभी मास्टरजी की रसोई भी बनानी पड़ती थी। घनश्यामदासजी को यह पसंद नहीं था। उनका शौक था बागवानी का। नये-नये पौधे लगाना, उनकी संभाल करना और उन्हें सींचना। एक दूसरा शौक था अखाड़े में दंड-बैठक करना और कुश्ती लड़ना। कुएं के पीछे के बगीचे में उन्होंने अखाड़ा बना रखा था, जहां कसरत होती थी।

शिवनारायणजी कभी-कभी पुरानी हवेली में जाते थे तब उनके साथ अक्सर घनश्यामदासजी भी पुरानी हवेली में जाते और वहीं खेलने लगते। उसमें रहने वाली 'ल्होड़ती दादी' घनश्यामदासजी को बहुत पसंद करती थी। 'ल्होड़ती दादी' का रौब इतना था कि जब भी कोई कम उम्र वाला हवेली में आता तो उसे उसके पांव पड़ना पड़ता था। इसके साथ उसे चांदी के नकद पांच रुपये दे दे तो वह बहुत खुश होती और प्रसन्नचित्त से उसे आशीष देती। 'ल्होड़ती दादी' सूत अपने हाथ से कातती थी। दादी का वह कातना देखकर घनश्यामदासजी बहुत प्रसन्न होते थे। 'ल्होड़ती दादी' शोभाराम-जी के छोटे भाई चुन्नीलाल की पत्नी थी। इस तरह पुरानी और नयी हवेली इन दोनों को जोड़ने वाली वही एकमात्र माध्यम थी। पुरानी हवेली में एक ही चौक भीतर का था। बाहर तो एक बाड़ा-जैसा था, जिसमें गायें बंधतीं। घनश्यामदासजी के खेलने का एक स्थान वह बाड़ा भी था।

इस तरह खेल-कूद, मार-पीट और तरह-तरह के अध्यापकों से सही-गलत शिक्षा प्राप्त कर घनश्यामदासजी के विद्यार्थी-जीवन का एक महत्त्वपूर्ण चरण समाप्त हो गया। उस चरण को याद करते हुए घनश्यामदासजी ने स्वयं लिखा है—"खैर, गलत-सलत कुछ भी मैंने सीखा, पर गांव-गली के लोग तो मेरी उतनी ही इज्जत करते थे, जितनी कि किसी 'विशारद' की हो सकती है। मुझे अंग्रेजी में तार लिखना-पढ़ना आ गया

था और अंग्रेजी के कुछ वाक्य भी मौके-बेमौके बोल सकता था। इस गंवई 'विद्या' की प्राप्ति के पश्चात मुझे कलकत्ता दादोजी के पास भेज दिया गया, क्योंकि गांव के सीमित वातावरण से मेरा स्तर ऊंचा हो गया था, ऐसा मान लिया गया।"१०

कलकत्ता में जब घनश्यामदासजी पहुंचे तब वे नौ वर्ष के थे। कुछ परिचित विदेशियों ने दादोजी से कहा कि लड़के को आगे पढ़ना चाहिए। कुछ लोगों ने यह भी कहा, लड़का होशियार है। पर दादोजी के पास सबके लिए एक ही उत्तर था, "ज्यादा पढ़ने से लड़का बस का नहीं रहेगा और अंग्रेजी अधिक पढ़ने से 'क्रिस्तान' हो जायेगा।" तब भी अधिक दबाव में आकर कलकत्ता में विशुद्धानंद सरस्वती विद्यालय में उन्हें दाखिल करवा ही दिया गया। इस दाखिले के लिए आठ-दस किताबें खरीदकर दे दी गयीं और एक थैला भी किताबें रखने के लिए दिया गया। यह एक अत्यंत उलझन-भरा अनुभव था। इस अनुभव को घनश्यामदासजी ने स्वयं इस तरह बताया है--"कहां मैं गांव-गंवई का लड़का और कहां कलकत्ता के स्कूल का यह अद्‌भुत वातावरण। दसियों अध्यापक, कई क्लासें, सैकड़ों लड़के, यह सब मुझे दिलचस्प तो लगा, पर भयावना भी लगा। लड़के भी कलकतिये, इसलिए गांव के लड़कों से भिन्न। अलग वेश-भूषा। भाषा भी हिन्दी मिश्रित। इस सबको मैं पचा नहीं पाया। खैर, मैं स्कूल में दाखिल तो हो गया, पर मन वहां चिपटा नहीं। इसलिए धीरे-धीरे स्कूल से गैरहाजिर होने लगा। दादोजी तो मुझसे कभी पूछते भी नहीं थे कि मैं क्या पढ़ता था और स्कूल मुझे कैसे पसंद आया। मेरी विद्या से उनकी विद्या तो और भी निम्न स्तर की थी। इसलिए हमारे बीच यह एक मौन समझौता हो गया कि न तो वे मुझसे पूछते कि मैं क्या पढ़ रहा हूं और न मैंने ही कभी उन्हें अपनी दिनचर्या से परिचित किया।

असलियत तो यह थी कि मैं घर से अपना थैला लेकर स्कूल के लिए रवाना हो जाता था। पर स्कूल न जाकर दिनभर कलकत्ता की गलियों से ही मैत्री होती थी। दिन भर चक्कर काटकर शाम को घर पहुंच जाता था। नतीजा यह हुआ कि मैंने विशुद्धानंद विद्यालय से तो कुछ नहीं पाया, पर कलकत्ता की गलियों से कलकत्ता के भूगोल का काफी ज्ञान हासिल कर लिया।"११

ये अनुभव वे होते हैं जो वास्तव में किसी भी अपरिपक्व व्यक्ति के जीवन में उसको अक्षर-ज्ञान से भी आगे जीवन के भूगोल-ज्ञान में गहरी समझ दे जाते हैं।

---

१०. बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ २७
११. वही, पृष्ठ २७-२८

घनश्यामदासजी के पिता उन दिनों बंबई में रहते थे और उनको दादोजी के साथ रहने का सुयोग मिला था। दादा-नाना का प्यार—पिता के प्यार से कई गुना बड़ा होता है। इसीलिए पढ़ने की दिशा में घर से अपना बैग लेकर स्कूल न जाकर दिन भर कलकत्ता की गलियों से ही दोस्ती करने का सुयोग प्राप्त हुआ। दिन भर कलकत्ता में चक्कर काटकर शाम को घर पहुंचना क्या कोई साधारण अनुभव होता है ?

कहां पिलानी का वह छोटा-सा गांव और कहां कलकत्ता के इस महानगर में इतने ऊंचे-ऊंचे मकान और पक्की सड़कें, ट्रेन, ट्रामगाड़ी, मोटरगाड़ी आदि तेज चलनेवाली सवारियां, हलचल और शोर भरा जीवन। पिलानी में यात्रा के साधन ऊंट, घोड़े या बैलों द्वारा चलनेवाले रथ थे। बैलों द्वारा चलनेवाले रथ विलास की वस्तु थे और संपन्न लोगों द्वारा महिलाओं और बच्चों के लिए रखे जाते थे। घोड़ा दुर्लभ जानवर था और अधिकतर भूस्वामियों द्वारा उसका उपयोग किया जाता था। कलकत्ता का जीवन ही अलग था—गति और घोर हलचल। यहीं तो पता चलता है कि आदमी की नाड़ी कितनी तेज चलती है, उसकी क्या गति है।

इन सबका प्रभाव कुमार-अवस्था के घनश्यामदासजी पर पड़ा और वही आगे के संपूर्ण घनश्यामदासजी के स्वरूप की अदृश्य कुंजी है। उन्हें ज्ञान के संस्कार पिलानी में प्राप्त हुए लेकिन जीवन की वास्तविकता के दर्शन कलकत्ता में ही मिले।

यही घनश्यामदासजी के अक्षर-ज्ञान की वह प्रबल भूमिका है, जिसने यह अनुभूत कर लिया कि 'मेरा आत्मविकास भारत देश के विकास से अखंड रूप से जुड़ा हुआ है।'

कलकत्ता से बंबई और बंबई से पुनः पिलानी लौटकर सबसे अधिक वह ऊंट के प्रति आकृष्ट हुए। यही एक पशु है जो आकर्षण और उपयोगिता का प्रतिमान बना है। एक बार तो घनश्यामदासजी को लगातार छह महीनों तक ऊंट की पीठ पर यात्रा करनी पड़ी थी। संभवतः इसीलिए आगे चलकर सुबह-शाम चलने-टहलने की उनको आदत पड़ी और इसी चलने-टहलने की प्रक्रिया में इन्हें यह ज्ञान भी मिला कि शुद्ध हवा मनुष्य को नया जीवन देती है। चलते-टहलते वह सहज ही वायु की परमार्थ वृत्ति पर विचार करने लगते। सोचने लगते। चलते-चलते सोचते रहते, 'यह हवा इतनी सेवा करती है, फिर भी अखबारों में इसकी चर्चा क्यों नहीं होती!' घनश्यामदासजी ने देखा, हवा ने उनकी मूर्खता पर हंस दिया और कहा, "तुम पक्के कूप-मंडूक हो, तुम्हारे लिए थोड़े-से लोग ही ब्रह्मांड हैं। मैंने तो प्राणिमात्र की सेवा का व्रत

ले रखा है और मेरा अखबार है—मेरे ईश्वर का हृदय। वहां सब खबरें अपने आप पहुंचती हैं।"१२

हवा की यह स्पष्टोक्ति शायद उन्हें अच्छी नहीं लगी, इसलिए उन्होंने अपना सारा गुस्सा एक ऊंट पर उतार दिया। बात यह हुई कि रास्ते में एक ऊंट महाशय अपनी थकान उतारने के लिए हाथ-पांव पीट-पीटकर धूल उछाल रहे थे। उन्होंने गर्द से तंग आकर, क्रोध में ऊंट से कहा, "तुम बड़े गंवार हो, जरा भी तमीज नहीं। पशु ही जो ठहरे। हम लोग जिन रास्तों से निकलते हैं, उनमें गरीब मनुष्य भी किनारे खड़े झुककर हमें प्रणाम किया करते हैं। जब-जब हम टहलने जाते हैं, तब-तब हमारे लठैत नौकर रास्ते में चलनेवालों की नाकों दम कर देते हैं। तुमने हमें झुककर प्रणाम करना तो दूर रहा, उलटा धूल उछालना शुरू कर दिया। इसी से मालूम होता है कि तुम गंवार भी हो और धृष्ट भी।"

घनश्यामदासजी सोचने लगे, क्या बताऊं? आखिर मुझमें कौन-कौन सी अच्छी बातें हैं जिन पर मैं गर्व कर सकूं? अत्यंत साहस करके उन्होंने दबी जबान से कहा, "अच्छा, तो देखो, तुम जानते हो मैं त्यागी लोगों से कितना प्रेम करता हूं, खादी पहनता हूं, यह क्या कुछ कम है?"

ऊंट ने गर्व के साथ कहा, "इसमें गर्व करने की क्या बात है? मुझे देखो, मैं तो कुछ भी नहीं पहनता।"

उन्होंने कहा, "और सुनो, मैं भोजन भी सादा खाता हूं, मिर्च-मसाले नहीं खाता।"

ऊंट ने कहा, "अच्छा त्याग किया। मुझे तो देखो, केवल सूखी पत्तियां चबाकर रह जाता हूं।"

उन्होंने कहा, "मैंने तो गृहस्थाश्रम का भी त्याग कर दिया है।"

ऊंट ने कहा, "क्यों झूठा अभिमान करते हो? मैंने तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया, सो मैं तो बाल-ब्रह्मचारी हूं।"

उन्होंने कहा, "मुझमें ईर्ष्या-द्वेष अधिक नहीं, झूठ बहुत कम बोलता हूं, सो भी अनजान में, रोष भी कम आता है।"

ऊंट ने कहा, "इसमें कौन-सी बड़ाई की बात है? मुझमें न ईर्ष्या है, न द्वेष और न क्रोध। झूठ तो जीवन में कभी बोला ही नहीं।" १३

---

१२ बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ ३५
१३ वही, पृष्ठ ३६

ऊंट की बात घनश्यामदासजी के हृदय में चुभ गयी । उन्हें ग्लानि होने लगी। अंतरात्मा कहने लगी, 'तू ऊंट से भी गया-बीता है।' तब उन्होंने कहा, "प्रभो, मुझे ऊंट जितना आत्मबल दो !"

यह संभवतः उनके मौन संकल्प का ही परिणाम था कि उनके भीतर धीरे-धीरे जो आत्मबल जाग्रत हुआ वह फिर कहीं ठहरा नहीं। अपने आपमें यह एक विशिष्ट बात है कि केवल तेरह वर्ष की अवस्था में ही उन्हें व्यापार-संसार में प्रवेश करना पड़ा । इसे भी ईश्वरीय संयोग मानकर घनश्यामदासजी ने स्वीकार किया और अपने पिता के संरक्षण में काम शुरू कर दिया । एक बात जरूर हुई कि व्यवसाय में जब वे पड़े तब उन्हें ज्ञान हुआ कि समुचित शिक्षा की कमी व्यापार में कितनी बाधक होती है । यह अनुभव होते ही उनकी यह कमजोरी उन्हें जोर से सताने लगी, और इसी के साथ-साथ जिज्ञासा की अमिट जागृति हुई जो जीवन के अंतिम क्षणों तक जारी रही । उनमें जिज्ञासा तृप्ति की अजब भूख थी । नौ साल की उम्र में 'सुखसागर' और 'भारतसार' पढ़ गये थे । इसी से वे प्राचीन कथाओं से सुपरिचित हो गये थे । बंबई में रहने के कारण गुजराती भाषा का और कलकत्ता में रहने के कारण बंगाली भाषा का ज्ञान हो गया था । पर जब समाचार-पत्र पढ़ने का प्रयत्न किया तो अंग्रेजी शब्दावली का अल्पज्ञान उनके रास्ते में बाधक होने लगा । शब्दकोष की सहायता से उन्होंने अंग्रेजी समाचार-पत्र पढ़ने शुरू किये । साथ में कापी-बुक की भी सहायता ली । शब्द-कोष में शब्दार्थ देखकर कापी-बुक में उस शब्द का अर्थ लिख लेना और शब्द के उच्चा-रण और अर्थ को रट-रटकर याद करना. यही उपाय उन्हें सूझा । उन दिनों बंबई में रहने के कारण लोगों को इधर-उधर अंग्रेजी में बातें करते सुनना और उससे ही उच्चारण सुधारने का अवसर घनश्यामदासजी को मिला । इसके अलावा बंबई-प्रवास की अवधि में उन्हें पारसी, गुजराती और अंग्रेजी समाज को निकट से देखने और उनके जीवन को समझने का अवसर मिला । इसी से प्रेरित होकर उन्हें व्यापार के साथ-साथ समाज की जागृति और सेवा का पथ अधिक महत्त्वपूर्ण लगा । संभवतः इसी से उनका भावी जीवन एक नये विकास की ओर अग्रसर हुआ ।

बालकों की पढ़ाई-लिखाई की ओर बलदेवदासजी पूरी रुचि लेते थे । परंतु उनका मानना था कि वैश्य-पुत्रों के लिए उतनी ही पढ़ाई पर्याप्त है, जितने का व्यापार में सदुपयोग होता है । उनके विचार से विद्वान आदमी व्यापारी नहीं हो सकता । यह अलग बात है कि स्वयं उनके पुत्र उनकी इस मान्यता के अपवाद सिद्ध हुए । घनश्याम-दासजी भारत के जितने बड़े समाजसेवी, उद्योगपति हुए, उससे कहीं बड़े वे विद्वान

और लेखक थे। यह बिड़ला-परिवार की ही देन है कि वह पिलानी जो कभी 'बड़वाली पिलानी' और 'सेठों की पिलानी' के नाम से जानी जाती थी, वही पिलानी 'कालिज वाली पिलानी' के रूप में प्रसिद्ध हुई।

बाल्यावस्था से लेकर कुमारावस्था तक घनश्यामदासजी को जो भी, जैसी भी शिक्षा मिली उसके साथ-साथ आत्मशिक्षा उन्होंने स्वयं प्राप्त की। इस सबके अतिरिक्त उनमें जीवन और परिवेश से प्राप्त दृश्य-श्रव्य शिक्षा का सबसे गहरा योग है। इसी से उनकी अस्मिता के निर्माण में योग मिला और उनमें एक विशेष प्रकार के धर्म-बोध की प्रतिष्ठा हुई।

बचपन में पहली दृश्य-शिक्षा उन्हें पिलानी में भयंकर दुर्भिक्ष के रोमांचकारी दृश्य से मिली। उस शिक्षा से यह शक्ति मिली कि 'मेरे चारों ओर क्या हो रहा है?' भूखे लोगों का त्रास और जगह-जगह मुर्दे और खोपड़ियों का भयानक दृश्य हृदय को घायल कर गया। उस सदाव्रत-दृश्य को देखकर शिक्षा मिली जिसे दादा और पिताजी ने दुर्भिक्ष के समय पिलानी में खोला था। पिताजी ने आसपास की भूखी गायों को एकत्र करवाकर ऐसे स्थानों पर भिजवा दिया था जहां उन्हें चारा दिया जा सके। जब दुर्भिक्ष टला और खेती की दशा सुधरी तब गायों को उनके मालिकों को सौंप दिया गया। यह वह शिक्षा थी जिससे इनके भीतर धर्म-बोध की नींव पड़ी कि दया ही धर्म का मूल है। यह उस नासमझ आदमी को नहीं प्रतीत होता जो असावधान है और धन के मोह में बंधा है।

सदाव्रत जो अकाल के समय शुरू हुआ, अकाल के बाद भी चलता रहा। साधु-संन्यासियों और अनाथ तथा विवश बूढ़ों को इसके द्वारा सहायता दी जाने लगी। हर घर में अपनी चक्की से रोज आटा पीसने के बाद एक चुटकी आटा सदाव्रत के नाम पर अलग निकाल देना, मंडी से भी सदाव्रत के लिए अनाज का संग्रह और माल लेकर आनेवाले प्रत्येक ऊंट के पीछे एक पैसा सदाव्रत के नाम पर लिया जाना, बहुत बड़े लोककल्याण की शिक्षा थी।

दृश्य-शिक्षा जो उन्हें मिली, उसमें अंक लिखे जाते थे, अक्षर नहीं। अंक से उन्हें वह अक्षर-ज्ञान प्राप्त हुआ जिससे उनका पक्का स्वभाव बन गया कि बिना शिक्षक की सहायता से ही विद्या-उपार्जन करने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए जो कुछ भी स्कूल छोड़ने के बाद इन्होंने सीखा, वह अपने परिश्रम और पुस्तकों की सहायता से ही सीखा।

गुरु से न सीखने के प्रति इनकी यह रुचि शुरू से ही बनती चली गयी और यह रुचि उनके समूचे जीवन में बढ़ती हुई आयु के साथ बढ़ती चली गयी। संगीत भी सीखा, परंतु वह भी सीखा रिकार्डों की बदौलत, किसी गुरु से नहीं।

उन्हें अपना शिक्षा-सिद्धांत भी स्वयं ही बनाना पड़ा कि हमने गुरु पर आवश्यकता से अधिक बोझ लाद दिया है। गुरु का आवश्यकता से अधिक सहारा लिया है। उनकी विवेचना के अनुसार आवश्यकता से अधिक सहारा लेना मानसिक दासता का ही लक्षण है। उनका विश्वास बना कि मनुष्य को स्वयं ही अपने आपका गुरु बनना चाहिए।

इसी निष्ठा से इन्होंने सवेरे टहलने के साथ वायु से परमार्थ की शिक्षा प्राप्त की। ऊंट से सत-संतोष, त्याग और सबसे अधिक आत्मबल और धैर्य की शिक्षा प्राप्त की। यह मान्यता बनी कि गुरु सर्वविद नहीं होते। गुरु भी कई अंशों में उतने ही अल्पज्ञानी हैं जितने कि हम सब हैं। किसी एक पुस्तक को ही संपूर्ण नहीं मानना चाहिए, चाहे वह कितनी भी आप्त क्यों न हो। इसलिए गुरु का वाक्य या किसी ग्रंथ का वाक्य निर्भ्रांत है, ऐसा मानने में बुद्धि का ह्रास होता है।

अक्षर से नहीं, अंक से इन्हें जो अक्षर का ज्ञान मिला उसी में से यह विश्वास पैदा हुआ कि हम निरालंब होकर ही जिज्ञासा की तृप्ति करें। इसके मायने यह नहीं कि हम अंग्रेज-विद्वानों और महापुरुषों के अनुभवों का लाभ न लें। लाभ तो तभी मिलेगा जब हम हर पुराने विचार का स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय करें और स्वतंत्रतापूर्वक उसे बुद्धि की कसौटी पर कसकर स्वतंत्र निर्णय करें। इस दृष्टि से वह अंध श्रद्धा के अत्यंत विरोधी थे। ईश्वर में उनकी श्रद्धा थी क्योंकि अनुभवों से ही उन्हें ज्ञान मिला था कि अथाह परिश्रम के बावजूद कोई सत्ता है जो निर्णय देती है।

दृश्य-श्रव्य शिक्षा से इन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसी से उनका मार्ग आगे सुगम हुआ। इससे लाभ यह हुआ कि घनश्यामदासजी के बौद्धिक विकास के साथ-साथ उनमें चिंतन की आदत भी पड़ गयी। उन्हें एक आश्चर्यजनक बोध प्राप्त हुआ, "अश्रद्धा से सनी हुई श्रद्धा ही मनुष्य को संस्कृत विचार देती है।"

ी गयी और यह
गयी। संगीत भी
ों।

ने गुरु पर आव-
सहारा लिया है।
मानसिक दासता
अपने आपका गुरु

की शिक्षा प्राप्त
र धैर्य की शिक्षा
अंशों में उतने ही
ंपूर्ण नहीं मानना
वाक्य या किसी

ों से यह विश्वास
के मायने यह नहीं
। लाभ तो तभी
और स्वतंत्रतापूर्वक
वह अंध श्रद्धा के
ी उन्हें ज्ञान मिला
है।

मार्ग आगे सुगम
कास के साथ-साथ
बोध प्राप्त हुआ,

# जीवन-व्यापार

सन उन्नीस सौ में ही सेठ शिवनारायणजी ने रुई के सट्टे में पहला कदम रखा, जिसमें बारह महीने के वायदे पर सौदा होता था। इस नये क्षेत्र में उन्होंने बहुत सफलता प्राप्त की। इसके साथ ही सेठजी ने तय किया कि सारा व्यापार बेटे बलदेव-दास और बड़े पोते जुगलकिशोर को सौंपना है। एक ओर सौंप देने की प्रक्रिया शुरू की, दूसरी ओर वह अपना अधिकतर समय लोक-कल्याण के कार्यों और तीर्थ-यात्राओं में बिताने लगे। पर इसका मतलब यह नहीं कि उन्होंने व्यापार से पूरी तरह हाथ खींच लिया। बेटे और बड़े पोते को व्यापार-जगत संबंधी परामर्श देते और उन्हें यह पाठ पढ़ाते नहीं थकते कि व्यापार में अपनी निजी समझ और स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेकर जिम्मेदारी उठाना व्यापार का मूलतंत्र है।

उन्नीस सौ तीन में बिड़लाओं ने माटुंगा (बंबई) में अपने लिए एक दो-मंजिली कोठी बनवायी। कुछ दिनों बाद दुर्भाग्य से रेलवे ने वह जगह ले ली, जिस पर मकान बना था।

तब उसी समय बलदेवदासजी ने उन्नीस हजार रुपये में रुस्तमजी सालिसिटर का मकान खरीद लिया। इसके बाद बिड़लाओं ने एक सुंदर बग्घी भी खरीद ली। इसी वर्ष शिवनारायणजी पिलानी से मथुरा, वृंदावन, पुरी आदि तीर्थों की यात्राओं के लिए निकले। वे अपने साथ नौवर्षीय छोटे पोते घनश्यामदासजी को भी ले गये। इस यात्रा की अंतिम मंजिल थी बंबई। लंबी तीर्थ-यात्रा के कारण बंबई पहुंचकर शिवनारायणजी को पेट के पुराने रोग ने कुछ विशेष ही कष्ट दिया। बंबई में लगभग दो महीने वे अस्वस्थ रहे। स्वस्थ होते ही उन्होंने अपने दूसरे और तीसरे पोते क्रमशः रामेश्वरदासजी और घनश्यामदासजी के विवाह की चिंता शुरू की।

सन उन्नीस सौ छह में रामेश्वरदासजी और घनश्यामदासजी के विवाह हुए । दोनों विवाह धूमधाम से हुए और बहुत दान-पुण्य किया गया। कहा जाता है कि यह सब काम घनश्यामदासजी के बड़े भाई जुगलकिशोरजी और उनकी धर्मपत्नी जुहारी देवीजी की इच्छा से हुआ ।

बारहवर्षीय किशोर घनश्यामदासजी का विवाह-संस्कार चिड़ावा नगर में सेठ श्री महादेवजी सोमानी की सुपुत्री दुर्गादेवी के साथ सनातन-विधि से संपन्न हुआ। बारात में एक हजार व्यक्ति गये थे। इतनी बड़ी संख्या में बारात ले जाने का कारण यह था कि उन दिनों विवाह-जनेतों में जाने को स्थानीय लोग बहुत उत्सुक रहा करते थे। वह प्रतिष्ठा का भी सवाल था। बारात में पछेवड़ी से सजे ऊंट, बहली, रथ, घोड़े और हाथी शामिल थे ।

इतनी बड़ी बारात की आवास-व्यवस्था के लिए चिड़ावा के सभी सेठों ने अपनी-अपनी धर्मशालाएं, नोहरे आदि स्थान स्वतः ही खुलवा दिये थे। सेठ श्री रामप्रसाद-जी सोमानी ने, जो राजसी ठाट-बाट के पुरुष थे, सभी स्थानीय मोदियों, दूकानदारों को बुलाकर निर्देश दिया था कि बारात के हाथी, घोड़ों, ऊंटों व बैलों आदि को 'रातिब' गुड़, फिटकरी, घी, दाना आदि मुंहमांगा, मुक्तहस्त से प्रदान किया जाये। घनश्याम-दासजी की बारात चार दिनों तक कन्या-पक्ष वालों के यहां रही ।

श्री सोमानीजी उस समय कलकत्ता के जूट, हैशियन, शेयरों आदि के सुप्रसिद्ध व्यापारी थे। वे सहृदयता एवं सौजन्य के प्रतीक थे। परम धार्मिक होने के कारण सोमानीजी अपने कलकत्ता-निवासकाल में ब्रह्ममुहूर्त उठते थे और प्रातः चार बजे गंगा-स्नान किया करते थे। छह बजे से नौ बजे तक वे अपनी ठाकुरबाड़ी में पूजा किया करते थे। घनश्यामदासजी की पहली पत्नी दुर्गादेवी अपनी बहनों में सबसे बड़ी थीं।

घनश्यामदासजी बचपन से ही संवेदनशील थे, इसलिए यह सोचना कि विवाह के बाद उन पर क्या प्रभाव पड़ा, कठिन है। इतना जरूर है कि एक बड़ी जिम्मेदारी का भान पहली बार उनके मन में उपजा होगा ।

पितामह और पिता किशोर घनश्यामदासजी की जन्म-पत्री के योग को भूलते नहीं थे। पर दोनों को ही जन्म-पत्रियों में श्रद्धा के बाबजूद कर्म-पत्री में अधिक विश्वास था। सन उन्नीस सौ सात में जब घनश्यामदासजी की आयु मात्र तेरह वर्ष की थी, उन्हें पिताजी के साथ व्यवसाय में लगा दिया गया। उस समय पिताजी की आयु तैंतालीस



वर्ष की थी और इकर्त
जी के पिताजी ने तो
दिया था ।

घनश्यामदासजी
जी व्यवसाय की दुनि
उस स्तर के व्यापारी
में नयी रीति-नीति के
किशोर, रामेश्वरदास
स्पर्श मिले ।

किशोर घनश्याम
थे कि किस तरह पि
में बिड़ला-परिवार की
किशोर घनश्यामदासज
जीवन-चरित्र और दि
उनकी दिनचर्या बिलकु
उससे कभी भी विचलि
ब्राह्मण को भोजन क
और बाजार तथा सौद
थी। सुबह तड़के उठ
सुबह सात बजे अपनी
दो घंटे आराम करते
पकवानों और मिठाइयों
से खिलाते थे। शाम को
दिन में तीन बार चिलम
क्षेत्र काफी बड़ा था।
गिनकर रख लेते थे और
विचार उनके जीवन क
जीवनचर्या का गहरा प्र

घनश्यामदासजी
और जीने की कला ।

वर्ष की थी और इकतीस वर्षों का व्यापार-अनुभव उनके पास था, यानी घनश्यामदास-जी के पिताजी ने तो बारह वर्ष की ही आयु में व्यावसायिक जीवन आरंभ कर दिया था।

घनश्यामदासजी जब पिताजी के व्यवसाय में सहयोगी बने तब पिता बलदेवदास-जी व्यवसाय की दुनिया मे बुजुर्ग व्यापारी के रूप में स्थापित हो चुके थे। पिताजी उस स्तर के व्यापारी थे, जो अपने पारसी, गुजराती और अंग्रेज प्रतिद्वंद्वियों की नयी मे नयी रीति-नीति के प्रति जिज्ञासु थे। वे चाहते थे कि उनके तीनों बेटों--जुगल-किशोर, रामेश्वरदास और घनश्यामदासजी को भी व्यापार-क्षेत्र में नयी चेतना का स्पर्श मिले।

किशोर घनश्यामदासजी अपने पिता के इस पुरुषार्थ को देखकर बहुत प्रभावित थे कि किस तरह पिताजी ने बंबई और कलकत्ता-जैसी व्यावसायिक राजधानियों में बिड़ला-परिवार की गद्दी इतने सुयश के साथ स्थापित कर रखी है। पर इससे अधिक किशोर घनश्यामदासजी पिलानी और बंबई में अपने दादा सेठ शिवनारायणजी के जीवन-चरित्र और दिनचर्या को देखकर प्रभावित हो रहे थे। दादाजी कहीं भी हों, उनकी दिनचर्या बिलकुल सधी-बंधी रहती थी। वे अपने नियमों के इतने पक्के थे कि उससे कभी भी विचलित नहीं होते थे। प्रतिदिन पाठ-पूजा करना, दान-पुण्य करना, ब्राह्मण को भोजन कराना, व्यापार के सभी पहलुओं के बारे में सदा पूछताछ करना और बाजार तथा मौदों में हिसाब-किताब हमेशा साफ रखना, यह उनकी विशेषता थी। सुबह तड़के उठ जाते और जंगल से निपटकर कुएं पर ही स्नान-ध्यान करते। सुबह सात बजे अपनी व्यावसायिक गद्दी संभाल लेते। दिन में खाना खाने के बाद दो घंटे आराम करते। भोजन में कोकम और कढ़ी, ये दोनों चीजें उन्हें प्रिय थीं। पकवानों और मिठाइयों के वे शौकीन थे। स्वयं खाते थे और दूसरों को उसी उत्साह से खिलाते थे। शाम को दूकान बंद करने के बाद खा-पीकर घूमना उनका नियम था। दिन में तीन बार चिलम पीते थे। सुपारी खाने का भी शौक था। उनके परिचितों का क्षेत्र काफी बड़ा था। कहते हैं कि वे अंटी में हमेशा पांच रुपया और सात पैसे सुबह गिनकर रख लेते थे और अपने दिन का खर्चा इसी से चलाते थे। सादा जीवन और उच्च विचार उनके जीवन का मर्म था। उसमें कहीं से भी कोई ढिलाई नहीं थी। इस जीवनचर्या का गहरा प्रभाव किशोर घनश्यामदासजी पर पड़ना स्वाभाविक था।

घनश्यामदासजी ने बहुत कुछ सीखा--विशेषकर नियमबद्ध, साफ-सुथरा जीवन और जीने की कला।

पिता बलदेवदासजी के साथ जब लोग घनश्यामदासजी को व्यवसाय के काम करते देखते तो उन्हें विस्मय होता। वे कहते--'घनश्यामदास अनोखा है'। लोग आपस में चर्चा करते कि उन्हें कितना-कुछ याद रह जाता है। कितनी सारी चीजों पर उनका ध्यान जाता है। उसकी नजर से कहीं कोई चीज अनदेखी नहीं रह जाती। तीन साल की कच्ची आयु में ही घनश्यामदासजी की स्मृति ने लेखा-जोखा दर्ज करने का काम शुरू कर दिया था। यही कारण है कि आगे चलकर लेखक घनश्यामदासजी ने 'वे दिन' के अंतर्गत अपने बचपन को इतनी गहराई और विस्तार से चित्रित करने में सफलता प्राप्त की।

दादोजी और काकोजी दोनों ने ही बच्चे को जिन यम-नियमों से बांधा और अनुशासन के संस्कार दिये, उन्हीं में उगते किशोर घनश्यामदासजी व्यवसाय की दुनिया को दिव्य-दृष्टि से देखकर उसके मर्म को समझने लगे। इससे यह लाभ हुआ कि घनश्यामदासजी को व्यवसाय के क्षेत्र में भी अपनी बुद्धि से स्वतंत्रता के साथ विचारने की सहज स्थिति प्राप्त हो गयी। इससे उनके किशोर व्यक्तित्व को अभिव्यक्त होने का अच्छा अवसर मिला। एक नयी तरह की उद्योग और निर्माण-प्रवृत्ति उनमें जाग्रत होने लगी। तभी उन्हें इस सच का आभास हो गया कि आर्थिक क्षेत्र में विशेष प्रगति उन दिनों दुर्लभ है। बंबई और कलकत्ता के व्यवसाय क्षेत्र में घूमते हुए घनश्यामदास-जी के मन में यह बात आने लगी कि जब तक नये प्रकार के कलपुर्जों के साधन उपलब्ध न हों, तब तक भारतवर्ष-जैसा पिछड़ा हुआ दीन समाज कुछ नहीं कर सकता। दूसरी ओर इन्होंने इस दीन-हीन समाज का दूसरा पक्ष भी देखा। लोगों में आत्मीयता थी, परस्पर सहायता की भावना थी और हर चीज का मूल्यांकन केवल स्वार्थ या पैसे के मापदंड से नहीं किया जाता था. जो कमी थी वह थी--आधुनिक उद्योग साधनों का अभाव।

उन्नीस सौ नौ में शिवनारायणजी की दूसरी पौत्री जयदेवीबाई का विवाह तय हुआ। वर-पक्ष वालों का आग्रह था कि कन्या-पक्ष वाले कलकत्ता से ही विवाह करें। शिवनारायणजी ने इसको स्वीकार कर लिया। पर जिस समय परिवार वाले विवाह के लिए कलकत्ता जा रहे थे, उस समय शिवनारायणजी लंबी यात्रा करने की स्थिति में नहीं थे, अतः वह पिलानी ही रह गये। उनकी देखभाल करने के लिए दूसरे पौत्र रामेश्वरदासजी को छोड़ दिया गया। जयदेवीबाई का विवाह बहुत धूमधाम से हुआ। इस विवाह से एक ओर कलकत्ता में सेठ शिवनारायण की फर्म और वंश की धाक जम गयी, तो दूसरी ओर पिलानी में स्वयं सेठजी मृत्यु के साथ संघर्ष कर रहे थे।



इतनी कठिन घड़ियों मे
धर्म-पत्नी। नौकर-चाक
श्योमबख्शजी नक्षत्रों के
वैद्य मित्रों की तमाम
वृद्ध और कृश शरीर उ

उन दिनों तपेदिक
थे कि शरीर सूखने लग
झाड़ा भी उतारते। वे
मंत्र-पाठ-सा करते और
रोज रात को थोड़ी अफ
उसका झाड़ा होता, प
देना। दादोजी को उसर
लाभ होता है। उनका

सन उन्नीस सौ नौ
दादोजी कफ प्रकृति के
स्वामीजी आये, नाड़ी दे
तो नहीं है'। तो दादो
आज्यावगी ना, गई तो
ने कह दिया था, 'रात
के कमरे में सो ज्यावो

दादोजी पास वाले
"अब अंत समय में य

रात को शरीरांत
सारा काम रामेश्वरदास
गये थे, रामेश्वरदासजी
लिखवा दी थी कि शरी
भांति करना, लौटने की
कर्म हो चुका था। उन
ही किये। दादोजी सब
था। गाजे-बाजे के स

इतनी कठिन घड़ियों में उनके साथ थे सोलहवर्षीय पौत्र रामेश्वरदासजी और उनकी धर्म-पत्नी । नौकर-चाकरों के अतिरिक्त स्वामीजी और श्योमबख्शजी मिश्र भी थे। श्योमबख्शजी नक्षत्रों के जानकार थे और स्वामीजी नाड़ी के । लेकिन ज्योतिष और वैद्य मित्रों की तमाम युक्तियों और टोना-टोटकों के बावजूद सेठ शिवनारायणजी का वृद्ध और कृश शरीर उस जमाने के असाध्य रोग तपेदिक से हारता चला गया।

उन दिनों तपेदिक के विषय में अधिक ज्ञान किसी को भी नहीं था । यही कहते थे कि शरीर सूखने लग गया है। इलाज कर रहे थे स्वामीजी। दवा ही नहीं देते थे, झाड़ा भी उतारते । वे सर्दियों के दिन थे । स्वामीजी रोज शाम को पानी लेकर कुछ मंत्र-पाठ-सा करते और झाड़ा देते । उसमें दादोजी की बड़ी आस्था थी । यही नहीं, रोज रात को थोड़ी अफीम लेते और बारसी नामक नाई भी रोज रात को झाड़ा देता। उसका झाड़ा होता, पांव पर एक पट्टी बांधना, कुछ बड़बड़ाना, फिर पट्टी खोल देना । दादोजी को उससे भी आराम मिलता । कम-से-कम वे यही मानते थे कि इससे लाभ होता है । उनका कहना था, 'आशा-विश्वास सबसे बड़ी दवा होती है।'

सन उन्नीस सौ नौ में करीब वहत्तर वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया । दादोजी कफ प्रकृति के थे । कफ बढ़ गया, तबीयत नरम हो गयी । सदा की तरह स्वामीजी आये, नाड़ी देखी, पर नाड़ी पकड़ में नहीं आयी । स्वामीजी ने कहा, 'नाड़ी तो नहीं है' । तो दादोजी ने हंसकर पूछा—"स्वामीजी, यो नाड़ी पाछी तो कोनी आज्यावगी ना, गई तो जाण दो।" पर नाड़ी वापस आ गयी। फिर भी स्वामीजी ने कह दिया था, 'रात निकलनी मुश्किल है । बैठक में न सोकर पास वाले एक बारणे के कमरे में सो ज्यावो, पेशाब भी टेणिये में ही करो ।'

दादोजी पास वाले कमरे में सोने चले गये, पर दूसरी बात नहीं मानी, बोले, "अब अंत समय में यह सूगला काम क्यों करें ।"

रात को शरीरांत हो गया । रामेश्वरदासजी अकेले थे । दादी रोने बैठ गयीं । सारा काम रामेश्वरदासजी को ही करना पड़ा । पर सारी तैयारी दादोजी स्वयं कर गये थे, रामेश्वरदासजी को वता भी गये थे । कलकत्ते में काकोजी को भी चिट्ठी लिखवा दी थी कि शरीर का भरोसा नहीं, शरीर बरत भी जाये तो विवाह-कार्य भली-भांति करना, लौटने की जल्दी न करना । काकोजी जल्दी तो लौटे, पर तब तक क्रिया-कर्म हो चुका था । उन्हें नारनौल में खबर मिली । क्रिया-कर्म सब रामेश्वरदासजी ने ही किये । दादोजी सब कुछ वता ही चुके थे । चंदन, दुशाला सब मंगवाकर रख लिया था । गाजे-वाजे के साथ शवयात्रा ले जाने और रुपयों-रेजगारी की 'उछाड़' करने

की विधि भी समझा दी थी। मृत्यु के आधा घंटे पहले तक वे एकदम सचेत थे। रामेश्वरदासजी को उस आसन्न अवसाद के लिए उतनी छोटी आयु में भी शिक्षा देकर तैयार कर दिया था।

सेठ शिवनारायणजी के लिए जीवन और अनुशासन, इन दोनों का सदा एक ही मतलब रहा है। स्वधर्म का पालन करते हुए उन्होंने धनार्जन का सपना संजोया और पूरा किया। किंतु वह यह कभी नहीं भूले कि सपना शुद्ध माया है। जीवन और मृत्यु दोनों को ही उन्होंने विनोदी दार्शनिक की आंखों मे देखा और अंत तक यह तेवर नहीं छोड़ा।

विनोदी दार्शनिक वाली यह भंगिमा उनके एकमात्र पुत्र बलदेवदासजी और उनके तीसरे पौत्र घनश्यामदासजी को विरासत में मिली।

ऐसे कर्त्तव्यपरायण, धर्मनिष्ठ पिता का श्राद्ध करा लेने मात्र से बलदेवदासजी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने मृतात्मा की शांति के लिए पिलानी और आस-पास के गांवों की ब्रह्मपुरी करायी। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'हेड़ा' का आयोजन किया।

'हेड़ा' राजस्थान की एक विशिष्ट पुण्य परंपरा है, जिसमें राहगीरों को ठंडा पानी और कलेवा ग्रहण करने के लिए पुकार-पुकारकर बुलाया जाता है। इस 'हेड़ा' में हर व्यक्ति को अनाज और एक चवन्नी दी गयी। इस बात का प्रमाण मिलता है कि कुल मिलाकर करीब उनतीस हजार लोग इस हेड़े में दान लेकर गये। परंपरानुसार बलदेवदासजी ने 'सातापूर्ण' करवाया अर्थात सभी जातियों के लोगों को भोजन करवाया।

उधर व्यापार-कार्य मे बलदेवदासजी को बंबई जाना आवश्यक था किंतु वे पूरे वर्ष तक पिलानी में जल-तर्पण और मासिक श्राद्ध आदि करते रहे। वर्ष के अंत में तर्पण के लिए वे बनारस गये। वहां एक प्रकांड ज्योतिषी ने बताया कि उनकी आयु कुल पचपन वर्ष की है।

बलदेवदासजी तब अपने छियालीसवें वर्ष में चल रहे थे। कुल आयु पचपन वर्ष ही ठहरा दिये जाने पर उनका सोच में पड़ जाना स्वाभाविक ही था।

इधर शादी होने के बाद घनश्यामदासजी ज्यादा दिनों तक पिलानी की नयी हवेली में नहीं रह सके थे। तेरहवर्षीय घनश्यामदासजी को पिताजी के साथ बंबई जाना पड़ा। रामेश्वर भाई कुछ महीने बंबई में रहे थे और पंद्रह वर्ष की आयु में पांच हजार रुपया कमा लाये थे। वे भी दोबारा बंबई गये। यहां दोनों भाइयों ने मिलकर चांदी के

व्यापार के गुर सीखने शुरू किये। अफीम का धंधा धीरे-धीरे मंदा पड़ता जा रहा था और उसकी जगह ले रहा था––रुई, अलसी और गेहूं का व्यापार।

काम के कुछ गुर समझाकर दोनों भाई व्यापार-धंधे के मैदान में उतार दिये गये। काकोजी दोनों भाइयों को जानबूझकर अकेले बंबई में छोड़कर देश चले गये, फलतः भाइयों को अपनी सूझ-बूझ से लेवा-बेची का धंधा करना पड़ा। इधर धंधे में भाइयों को इतनी सफलता मिली कि लोगों को ईर्ष्या हो गयी। काकोजी के मुंहलगे कुछ लोगों ने रामेश्वरदास की झूठी शिकायतें कीं। पिलानी चिट्ठियां भी भेजीं कि, 'छोरो एकलो अठै बिगड़ रयो है, मनचाही करे है, बांरी-सुंआरी आवे है' आदि-आदि। चिट्ठी पाकर काकोजी चिट्ठी लिखने वालों पर ही नाराज हुए। काकोजी को दोनों भाइयों पर बहुत विश्वास था। दोनों भाइयों ने मेहनत से काम कर धाक जमा ली।

घनश्यामदासजी की शादी हुए तीन वर्ष हो चुके थे। वे पिलानी गये और गौना कराके अपनी पत्नी को पिलानी ले आये। गौने के शीघ्र बाद ही वे गर्भवती हो गयीं।

बंबई की दूसरी मुसाफिरी के बाद जब रामेश्वरदासजी और घनश्यामदासजी पिलानी पहुंचे तो उन्हें यह शुभ समाचार मिला कि घनश्यामदासजी की पत्नी दुर्गा-देवी ने ग्यारह जुलाई उन्नीस सौ नौ को पुत्ररत्न को जन्म दिया है। उसका नाम वैश्यों की आराध्या के नाम पर लक्ष्मीनिवास रखा गया। इस जन्म पर पूरे परिवार को बहुत खुशी हुई। कारण, एक नयी पीढ़ी का आरंभ हुआ। कहते हैं कि हर रात गांव के अलग-अलग मुहल्ले और जातियों की औरतें झुंड बनाकर जच्चा-बच्चा की मंगलकामना के गीत गाती हुई बिड़लाओं की हवेली पर आतीं और इनमें से हरेक को सीकर की चुनरी उढ़ायी जाती, जो उन दिनों ग्यारह-ग्यारह आने में मिलती थी।

इस खुशी के बाद ही यह दुखद समाचार मिला कि घनश्यामदासजी की पत्नी का स्वास्थ्य तेजी से बिगड़ने लगा है। यह कैसी विडंबना थी कि अभी लक्ष्मीनिवास दुधमुंहा ही था कि मां ने खाट पकड़ ली। बीमारी भयंकर थी, तपेदिक। उस समय उसका कोई इलाज नहीं था। ससुराल में अपनी पहली दिवाली के दिन बीमार पत्नी को खांसी के साथ बहुत खून आया, जिसे देखकर सारा घर उदास हो गया। दिसावरी पर बंबई गये घनश्यामदासजी को खबर की गयी। उनके आने के बाद उनकी ससुराल चिड़ावा से डा० अंबाप्रसाद रोगिणी के इलाज के लिए बुलाये जाने लगे। हर आठवें दिन डा० साहब आते और अपने ढंग से दवा-दारू कर जाते।

जिस वर्ष पितामह का देहांत हुआ, उसी वर्ष उन्नीस सौ नौ, फाल्गुन माह, में पत्नी

का भी देहांत हो गया। उस समय किशोर घनश्यामदासजी की कुल अवस्था पंद्रह वर्ष की थी। अचानक पत्नी की मृत्यु हो जाने से उन्हें गहरा सदमा पहुंचा। उन्होंने बहुत अकेलापन महसूस किया। उन्हीं क्षणों में उन्होंने तिलक के 'गीता रहस्य' को पढ़ना शुरू किया। पहले अध्याय में जब उन्होंने अर्जुन की उस मानसिक स्थिति के बारे में पढ़ा कि दोनों सेनाओं के बीच खड़े अर्जुन ने दृष्टि फैलायी तो देखता है कि सारे बंधु-बांधव, गुरु, प्रपिता, पुत्र, पौत्र और परिवार के अन्य लोग मरने के लिए खड़े हैं, अर्जुन कांप उठा। उसका सारा शरीर शिथिल हो गया। अर्जुन के इस दौर्बल्य पर भगवान को दया आयी और उन्होंने चेहरे पर कुछ हंसी का भाव लाकर अर्जुन से कहा, 'ये अनार्य वृत्ति जो नरक में डालने वाली है, तुममें कहां से उत्पन्न हो गयी ? इस कापुरुषता को छोड़ो और खड़े हो।' इस प्रसंग से घनश्यामदासजी को बहुत बल मिला।

यहीं से उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को, कर्म और धर्म से जोड़ना शुरू किया। दुनिया के लोगों के लिए किशोर घनश्यामदासजी और दुर्गादेवी का वह लघु दांपत्य-जीवन इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, परंतु अति संवेदनशील घनश्यामदासजी के लिए यह घटना मर्मांतक थी। इसलिए कि पहली बार जो स्त्री उनके जीवन में आयी, वह इस तरह दुखी चली गयी। यह एक ऐसा प्रथम विछोह था, जिसकी छाप उनके कोमल हृदय पर स्वभावत: अंकित रह गयी। लेकिन कुशल यह हुआ कि प्रथम पत्नी के साथ संबंध अभी अधिक गहराई से नहीं जुड़ पाये थे। दुख उन्हें हुआ, लेकिन इस दुख ने उन्हें तोड़ा नहीं। उन्हें लगा कि उनकी निजी गृहस्थी बसने से पहले ही उजड़ गयी है। एक खालीपन उन पर छा गया और इसी रिक्तता को भरने के लिए उन्होंने 'श्रीमद्-भागवत' और 'गीता' से अपने आपको जोड़ लिया।

इसकी एक परिणति यह भी हुई कि वे स्वत: ज्ञानार्जन के क्षेत्र में चले गये। अब तक बचपन का पाया हुआ वह संस्कार--कि कर्म ही धर्म है और धर्म ही मोक्ष--बिजली की तरह उनके सामने कौंध गया। इसके प्रकाश में उन्होंने अपने आपको कर्मक्षेत्र के द्वार पर खड़ा पाया।

अकेले घनश्यामदासजी फिर बंबई लौटे। उस समय तक रामेश्वरदासजी चांदी के व्यापार में बहुत सफल हो गये थे। उन दिनों चांदी को लंदन का बाजार नियंत्रित करता था। अलसी पर अर्जेंटाइना का प्रभाव था। देश से बाहर जाने की खास चीज रुई ही थी। उसके निर्यात का बहुत-सा धंधा बंबई से होता था और इस धंधे पर यहूदी और खोजे छाये हुए थे। बरार के व्यापारी या बंबई की आढ़त के दूकानवाले तो महज बिचौलिये थे। चांदी, रुई, अलसी, गेहूं आदि के वायदे के सौदे होते और उनकी लेवा-



बेची करने वालों
करता। मारवा
रामेश्वरदासजी क
प्रवीण थे। उस
दासजी करीब सोल
बाजार में बड़े आ
धाक जम गयी।
सम्मान देता। इस
करने लगा। उस
मोकाटो, मोंटग्यू अ
का काम उन्हीं की
बढ़ गयी, क्योंकि
प्रतिशत उन्हीं के

पर कुल मिल
जुआ था, घनश्याम
किसलिए ? क्या वि
के आधार पर दोनों
रामेश्वरदासजी का

लेकिन घनश्या
की कमाई क्यों ?
और व्यवसायी चुश्
संतोषप्रद उत्तर उन

कुछ समय बाद
यह यात्रा विचित्र थी
सवारी करनी पड़ती
नहीं हुई। इस यात्र
'गति और प्रगति' ि
से ऊंट पर गुजरते,
की मट', 'इंदोखली
ये सब उनकी स्मृति

बेची करने वालों का, उनके दलालों का बड़ा समुदाय भी उन धंधों से जीविकोपार्जन करता। मारवाड़ियों के सिवाय भोटिया और गुजराती भी इस धंधे से जुड़े थे। रामेश्वरदासजी का ध्यान चांदी के सौदों की ओर ज्यादा था, क्योंकि वह इसी क्षेत्र में प्रवीण थे। उस समय रामेश्वरदासजी की आयु अठारह वर्ष की थी और घनश्यामदासजी करीब सोलह वर्ष के थे। बड़े भाई के साथ छोटे भाई घनश्यामदासजी ने चांदी बाजार में बड़े आत्मविश्वास के साथ प्रवेश किया। थोड़े ही दिनों में दोनों भाइयों की धाक जम गयी। चुन्नीलाल सरैया जैसा व्यापारी इनकी राय लेता और इनकी राय को सम्मान देता। इसका फल यह हुआ कि सरैया चांदी का विदेशी धंधा इन्हीं की मार्फत करने लगा। उस समय चांदी की दुनिया में चार बड़े दलाल थे—पिक्सली एबल, मोकाटो, मोंटग्यू और शार्प। इन्हें भी विदेश में लेवा-बेची और वहां से चांदी मंगवाने का काम उन्हीं की मार्फत करना होता। चांदी बाजार में दोनों भाइयों की साख बहुत बढ़ गयी, क्योंकि उन दिनों भारत में आयात होने वाली चांदी का चालीस से पचास प्रतिशत उन्हीं के हाथों में आ गया था।

पर कुल मिलाकर लेवा-बेची के व्यापार को लेकर, जो बुनियादी तौर पर एक जुआ था, घनश्यामदासजी के मन में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ। यह सब व्यापार किसलिए ? क्या किसी तरह धन कमाना ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है ? इन्हीं प्रश्नों के आधार पर दोनों भाइयों में अकसर मजाक-ही-मजाक में बहस हो जाया करती थी। रामेश्वरदासजी का स्वभाव थोड़ा मजाकिया था। कहते थे, "भाया चलता है।"

लेकिन घनश्यामदासजी इस प्रश्न में बुरी तरह उलझे थे। आखिर इस तरह की कमाई क्यों ? इस प्रश्न के उदाहरण में वे बड़े भाई के सामने सुप्रसिद्ध बैंकर और व्यवसायी चुन्नीलाल की आत्महत्या की घटना प्रस्तुत करते थे। इसका कोई संतोषप्रद उत्तर उन्हें नहीं मिल पाया।

कुछ समय बाद घनश्यामदासजी बंबई छोड़कर पिलानी के लिए चल पड़े। उनकी यह यात्रा विचित्र थी। रेलवे स्टेशन से पिलानी गांव आने तक उन्हें कई दिन ऊंट की सवारी करनी पड़ती थी। पर उस समय प्रश्नाकुल होने के कारण कोई थकान महसूस नहीं हुई। इस यात्रा का विवरण उन्होंने आगे चलकर 'रूप और स्वरूप' पुस्तक के 'गति और प्रगति' निबंध में किया है। जब वे प्रश्नों से घिरे होते, तब जिन रास्तों से ऊंट पर गुजरते, उनके सजीव चित्र उनकी आंखों के सामने नाचते। 'टोलियासर की मट', 'इंदोखली जोहड़ी', 'झुंझनूं की बीड़ी', 'मुहाणे की वणीड़', 'मोड़ो डूंगर', ये सब उनकी स्मृति पर जमते चले गये। साथ ही, उनके भीतर चलते हुए प्रश्न-परि-

प्रश्न, उत्तर-प्रत्युत्तरों के साथ यात्रा का सारा भूगोल इनके व्यक्तित्व पर अमिट छाप छोड़ता चला गया। मनोवृत्ति भी ऐसी बन गयी कि विलंबित गति सुखदायक मालूम होती थी। पर कलकत्ता की द्रुतगति और प्रगति की भी बहुत याद आती थी।

ऐसे ही क्षणों में इनकी पकड़ में एक महत्त्वपूर्ण बात आयी, समय की गति के साथ मेल रखना पुरुषार्थ का प्रथम लक्षण है।

पिलानी में इस बार वे कुल दो महीने रहे। परिवार के लोगों से घर भरा था, लेकिन घनश्यामदासजी के लिए वहां एक विशेष सूनापन-सा छाया था। दिवंगता पत्नी की यादें पीछा करती थीं, इसलिए वे तरह-तरह के बहाने से प्रायः हवेली के बाहर ही अपना समय गुजारते। हवेली से बाहर की जिंदगी में रस लेने की आदत यहीं से पड़ी। गांव के लोग किस तरह ब्याह-शादी, विदा-विदाई और तरह-तरह के मनोरंजनों से अपने जीवन को रसमय बनाते हैं, इसे प्रत्यक्ष देखने का सुअवसर घनश्याम-दासजी को मिला। गांव में लड़की कैसे विदा होती है? जब लड़की घर से निकलती है तो चारों ओर परिवार की स्त्रियों से घिरी धीरे-धीरे चलती। इस जुलूस के आगे ऊंट की नकेल पकड़कर लड़िहार--लड़की की विदाई करने वाला--चलता था। जब से लड़की घर से चलती तभी से उसका रोना शुरू होता और उसके साथ ही औरतों का विदाई-गान का स्वर भी उभरता था। खूबी थी--लड़की का रोना और औरतों का विदाई-गीत--दोनों एक ही स्वर में चलते थे।

घनश्यामदासजी को जो संगीत स्वर-ज्ञान मिला, उसका कुछ संबंध इस रुदन-विदाई स्वर से था। एक समझ और भी मिली कि गांव में इतनी बेकारी और नीरसता है कि इससे बचने के लिए लोगों को हर क्षेत्र में विनोद और मनोरंजन खींचना पड़ता है। "दबा हुआ समाज उदासी से बचने के लिए आम तौर से अतिशयोक्ति की शरण लेता है।··· और अतिशयोक्ति इसी बात की छाया है कि उस समय समाज अपनी उदासी को भूलने के लिए तरह-तरह के आत्माभिमान-पोषक वाक्यों की शरण लेता था।"[१४]

समय सबसे बड़ा होता है। वह धीरे-धीरे सारे घाव भर देता है। घनश्यामदास-जी इसके बाद पिलानी से कलकत्ता आ गये। यहां आकर उन्होंने सट्टा और लेवा-बेची से अलग स्वतंत्र व्यवसाय करने का संकल्प कर लिया। उस समय वहां बड़े भाई जुगलकिशोरजी अपना पुश्तैनी व्यापार कर रहे थे और उनकी इच्छा थी कि घनश्याम-

१४. वे दिन, बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ १७

प्रश्न, उत्तर-प्रत्युत्तरों के साथ यात्रा का सारा भूगोल इनके व्यक्तित्व पर अमिट छाप छोड़ता चला गया। मनोवृत्ति भी ऐसी बन गयी कि विलंबित गति सुखदायक मालूम होती थी। पर कलकत्ता की द्रुतगति और प्रगति की भी बहुत याद आती थी।

ऐसे ही क्षणों में इनकी पकड़ में एक महत्त्वपूर्ण बात आयी, समय की गति के साथ मेल रखना पुरुषार्थ का प्रथम लक्षण है।

पिलानी में इस बार वे कुल दो महीने रहे। परिवार के लोगों से घर भरा था, लेकिन घनश्यामदासजी के लिए वहां एक विशेष सूनापन-सा छाया था। दिवंगता पत्नी की यादें पीछा करती थीं, इसलिए वे तरह-तरह के बहाने से प्राय: हवेली के बाहर ही अपना समय गुजारते। हवेली से बाहर की जिंदगी में रस लेने की आदत यहीं से पड़ी। गांव के लोग किस तरह ब्याह-शादी, विदा-विदाई और तरह-तरह के मनोरंजनों से अपने जीवन को रसमय बनाते हैं, इसे प्रत्यक्ष देखने का सुअवसर घनश्याम-दासजी को मिला। गांव में लड़की कैसे विदा होती है? जब लड़की घर से निकलती है तो चारों ओर परिवार की स्त्रियों से घिरी धीरे-धीरे चलती। इस जुलूस के आगे ऊंट की नकेल पकड़कर लड़िहार--लड़की की विदाई करने वाला--चलता था। जब से लड़की घर से चलती तभी से उसका रोना शुरू होता और उसके साथ ही औरतों का विदाई-गान का स्वर भी उभरता था। खूबी थी--लड़की का रोना और औरतों का विदाई-गीत--दोनों एक ही स्वर में चलते थे।

घनश्यामदासजी को जो संगीत स्वर-ज्ञान मिला, उसका कुछ संबंध इस रुदन-विदाई स्वर से था। एक समझ और भी मिली कि गांव में इतनी बेकारी और नीरसता है कि इससे बचने के लिए लोगों को हर क्षेत्र से विनोद और मनोरंजन खींचना पड़ता है। "दबा हुआ समाज उदासी से बचने के लिए आम तौर से अतिशयोक्ति की शरण लेता है।··· और अतिशयोक्ति इसी बात की छाया है कि उस समय समाज अपनी उदासी को भूलने के लिए तरह-तरह के आत्माभिमान-पोषक वाक्यों की शरण लेता था।"[१४]

समय सबसे बड़ा होता है। वह धीरे-धीरे सारे घाव भर देता है। घनश्यामदास-जी इसके बाद पिलानी से कलकत्ता आ गये। यहां आकर उन्होंने सट्टा और लेवा-बेची से अलग स्वतंत्र व्यवसाय करने का संकल्प कर लिया। उस समय वहां बड़े भाई जुगलकिशोरजी अपना पुश्तैनी व्यापार कर रहे थे और उनकी इच्छा थी कि घनश्याम-

१४. वे दिन, बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ १७

दासजी उनके साथ रहकर उसी व्यवसाय में हाथ बंटाएं । घनश्यामदासजी ने पूरे आत्मविश्वास के साथ अपना संकल्प दोहराया, "मैं तो दलाली करूंगा" । यह सुनकर परिवार के सारे बुजुर्ग सन्नाटे में आ गये । उस समय मारवाड़ियों में दलाली करना बहुत ही नीचा काम समझा जाता था । घनश्यामदासजी ने बहुत दृढ़ता से कहा, "अगर धंधे-व्यापार में हमें अंग्रेजों से टक्कर लेनी है, तो दलाली से परहेज करना, छोड़ना पड़ेगा ।" उस जमाने में कलकत्ता में कुल एक भारतीय दलाल था—रैली ब्रदर्स का नरसी भाटिया ।

उस समय व्यवसाय-जगत में धीरे-धीरे कपड़े की मिलों का युग आ रहा था । समय की इस आहट को घनश्यामदासजी ने सुन लिया । वे कलकत्ता, बंबई और पिलानी—इन तीनों स्थानों की यात्रा करते हुए भी बराबर सोचते रहते, देश में रुई तो पैदा होती है, पर अधिकांश विदेश जाती है ।

उन्हें पता था कि इस क्षेत्र में बंबई के जे० एन० टाटा ने अठारह सौ चौहत्तर में दि सेंट्रल इंडिया स्पीनिंग, वीविंग एंड मैन्यूफैक्चरिंग कं० लि०, सन अठारह सौ छियासी में दि स्वदेशी मिल्स कं० लि० और सन उन्नीस सौ तीन में अहमदाबाद एडवांस मिल्स लि० की स्थापना कर रखी है ।१५ इसके अतिरिक्त उन्हें मालूम था कि नागपुर में टाटा ने 'एम्प्रेस मिल' लगा रखी है और उन्हीं दिनों कलकत्ता में एक कपड़े की मिल लग चुकी है, जो बाद में केशोरामजी के हाथ में आयी ।

उस समय रुई का धंधा मुख्यत: बंबई केंद्र से होता था । यह धंधा फाजल भाई अलाना और मथुरादास गोकुलदास के हाथों में था । रुई के धंधे के साथ कपड़े की मिलों का भी उनके पास होना स्वाभाविक था । एक के पास सात मिलें तो दूसरे के पास भी सात मिलें । इस प्रकार मिलों का होना भी एक प्रतिस्पर्धा थी । बिड़लाओं के पास अभी तक एक भी मिल नहीं थी । घनश्यामदासजी ने अपने बड़े भाई जुगल-किशोरजी और रामेश्वरदासजी से पूछा, "अपने पास मिल क्यों नहीं है ?"

वे दिन मिलों की कमाई के थे । जिनके पास सात-सात मिलें थीं, वे तो सालाना करोड़ों रुपये के नफे की बात करते । सुन-सुनकर दूसरे के मुंह में पानी आता ।

कलकत्ता में एक दिन घनश्यामदासजी ने रामेश्वरदासजी से कहा, "भाया, नफे की बात सुनकर तुम्हारे मुंह में पानी जरूर आता है, अपने मुंह में नहीं आता ।"

"क्यों ?"

---

१५. दी क्रियेशन आफ डेथ, आर. एम. लाला, पृष्ठ २०८

"हम तो मिल लेकर ही रहेंगे ।"

अपने इसी आत्मविश्वास और संकल्प से घनश्यामदासजी इस दिशा में आगे बढ़े ।

उनके श्वसुर सेठ महादेवजी सोमानी और हिसार के अलखपुरा निवासी चौधरी छाजूराम कलकत्ता में जूट, हैशियन और गनी के अपने समय के प्रमुख व्यापारी थे । इन दोनों में परस्पर मित्रवत स्नेह था । उनके पास अनेक जूट मिलों के शेयर भी थे । परिणामस्वरूप उनका अंग्रेज जूट मिल-मालिकों पर काफी प्रभाव था। अपने श्वसुर से परामर्श कर घनश्यामदासजी ने जूट का व्यवसाय करने का निश्चय किया ।

इसका शुभारंभ सन उन्नीस सौ दस में जी० एम० बिड़ला फर्म की स्थापना करके कलकत्ता की जूट मिलों की ब्रोकरेज (दलाली) से किया । लेकिन बड़े-बड़े अंग्रेजों, अमेरिकन जूट औद्योगिक संस्थाओं से संपर्क बनाना और व्यापार-कार्य को संचालित करने का अनुभव भी अनिवार्य था । सोलहवर्षीय किशोर घनश्यामदास-जी ने इतिहास का यह मर्म-विंदु पकड़ लिया था कि परतंत्रता और अर्थ-व्यवस्था में कितना गहरा संबंध होता है । संबंध की यह गूढ़ समझ उन्हें अपने पिता बलदेवदासजी, बड़े भाई जुगलकिशोरजी और अपने स्वाध्याय, अध्यवसाय तथा बंबई-कलकत्ता के व्यावहारिक जीवन से मिली थी । फलस्वरूप आने वाले औद्योगिक युग का एक निश्चित पहलू घनश्यामदासजी को दिखायी पड़ गया था । अब तक ब्रिटेन के तैयार माल की शक्ल में उसका नकारात्मक पहलू ही सामने आया था । सन अठारह सौ साठ में हिंदुस्तान में औद्योगीकरण रोकने के उद्देश्य से, मशीन के आयात पर जो चुंगी लगी हुई थी, हटा दी गयी और बड़े पैमाने के उद्योग-धंधों का आरंभ हुआ । इनमें विशेष-कर ब्रिटिश पूंजी लगी थी । इसी कारण भारतवर्ष में सबसे पहले बंगाल का जूट उद्योग शुरू हुआ और इसका संचालन-केंद्र स्काटलैंड के डंडी नगर में था ।

अहमदाबाद और बंबई में कपड़े की मिलें चालू हुईं । इनमें अधिकतर हिंदुस्तानी नियंत्रण तो था, परंतु हिंदुस्तानी कपड़े के माल पर एक उत्पादन कर लगाया गया ताकि वे हिंदुस्तान में भी लंकाशायर के सूती माल से बराबरी न कर सकें । अंग्रेजों द्वारा इस तरह "उद्योग-धंधों की उन्नति को जानबूझकर रोका गया और हिंदुस्तान की स्वाभाविक आर्थिक उन्नति को बांध दिया गया । यद्यपि हिंदुस्तान की आम जनता बेहद गरीब थी और उसकी गरीबी बढ़ती ही जा रही थी, लेकिन चोटी पर के थोड़े से आदमी इन नयी स्थितियों में खूब समृद्ध हो रहे थे और पूंजी इकट्ठी कर रहे थे ।

इन्हीं लोगों ने राजनीतिक सुधारों की और पूंजी लगाने के अवसरों की मांग की।"१६

यह उन्नीस सौ दस की बात है। उस समय घनश्यामदासजी की आयु मात्र सोलह वर्ष थी। इन सारी परिस्थितियों के बावजूद उनके मानस में अपनी मिल का मालिक बनने की इच्छा बलवती हो चली थी। इसी की तैयारी में वे दलाली के काम से जुड़े थे, क्योंकि इसी प्रक्रिया से एक ओर वे उद्योग के मर्म को समझ रहे थे और दूसरी ओर अंग्रेजों के मानस को।

यह जीवन-व्यापार अत्यंत कठिन था। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियां विषम थीं। पर उस किशोरावस्था के अंतिम चरण तक पहुंचकर उनके चरित्र की यह विशेषता प्रकट हो चली थी कि चुनौती जितनी प्रबल होती है, उतनी ही दृढ़ता और सूझ-बूझ के साथ उसका सामना करने के लिए व्यक्ति कृत-संकल्प हो उठता है।

---

१६. हिंदुस्तान की कहानी : जवाहरलाल नेहरू, पृष्ठ २९५

# संकल्प-मार्ग

अब से आगे, बहुत आगे, नौ जनवरी उन्नीस सौ तिरासी को जब घनश्यामदास-जी नवासी वर्ष के थे, कलकत्ता के संगीत कला मंदिर के एक अभिभाषण में उन्होंने अपने जीवन को याद करते हुए एक प्रश्न किया ।

प्रश्न था—इस काल में हमने क्या पाया और क्या खोया ?

इसके उत्तर में उन्होंने तुलसीदासजी की वाणी का सहारा लेकर कहा :

**साधन धाम बिबुध दुर्लभ धन,**
**मोहि कृपा करि दीन्हों**
**प्रभु तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।**

घनश्यामदासजी को जीवन के सारे साधन सुलभ थे, विशेषकर दुर्लभ तन का साधन। पर इस तन के भीतर जो मन और हृदय है, उसमें प्रभु से जो कुछ पाया, उस अनुग्रह का प्रारंभ सन उन्नीस सौ ग्यारह से हुआ ।

एक दिन पिता बलदेवदासजी अपने बड़े बेटे जुगलकिशोर से कह रहे थे, "देखो यह साधन धाम, यह तन जो भगवान ने हमें दिया, देवताओं को भी दुर्लभ है । यह प्रभु की बहुत बड़ी अनुकंपा है ।"

पिता की यह बात घनश्यामदासजी भी ध्यान से सुन रहे थे । बड़े भाई जब वहां से चले गये, तब घनश्यामदासजी ने पिताजी से इस अनुग्रह के बारे में कुछ और जानना चाहा । पिता ने इसके बारे में कुछ बताया अवश्य । आगे घनश्यामदासजी ने अनुग्रह के मर्म को पा लिया । अगर हम अपने जीवन को प्रभु का अनुग्रह मानते हैं तो हमें हर क्षण यह देखते रहना होगा कि हम यह तन पाकर ईश्वर की ओर आगे बढ़े या नहीं, दैवी-संपदा के निकट आये या नहीं, आगे चले या पीछे हटे ? इसी केंद्र-बिंदु से कर्म के साथ जीवन-अनुसंधान शुरू हुआ ।

उन्होंने पाया कि आधारभूत मार्ग केवल दो ही हैं—एक संकल्प का मार्ग है और एक समर्पण का। ये दोनों पूर्णतया विरोधी मार्ग हैं। जहां तक इन पर चलने का संबंध है, संकल्प का मार्ग आत्मसाक्ष्य से प्रारंभ होता है। साक्ष्य से प्रारंभ करना, अपने कर्म के प्रति सजग होना है। यह सीधा व्यक्ति के आंतरिक 'स्व' को जगाने से संबंधित है। अहंकार से इसका कोई संबंध नहीं है।

उनके पिता श्री बलदेवदासजी और भाई जुगलकिशोरजी समर्पण-पक्ष पर चल रहे थे। लेकिन घनश्यामदासजी की दृष्टि उन दोनों से आगे अपने दादोजी शिवनारायणजी के पथ पर चली गयी जो आजीवन संकल्प-मार्ग के पथिक रहे थे।

समर्पण का मार्ग संकल्प-मार्ग की अपेक्षा एक अर्थ में सरल और सुगम मार्ग है, क्योंकि वह सीधे अहंकार से संबंधित है न कि 'स्व' से। इस मार्ग में 'स्व' को नहीं जगाना है, सिर्फ अपने अहंकार को समर्पित कर देना है।

घनश्यामदासजी ने संकल्प-मार्ग पर पैर रखते ही बहुत स्पष्टता के साथ यह देख लिया कि इस मार्ग पर जो चलता है, स्वयं काम करने के लिए अकेला छूट जाता है। यह बहुत कठिन मार्ग है, चुनौती और संघर्षों से भरा हुआ। इस मार्ग पर अपनी पुरानी आदतों से लड़ना पड़ता है। पुरानी आदत और पुराने संस्कारों का अर्थ है स्मृतियों का ढेर, जिसे मन कहते हैं। इससे मुक्त होना पड़ता है। यही मन आलस्य है, जो नींद लाता है। तब एक-मात्र लड़ाई नींद के खिलाफ होती है और जो एक-मात्र आकांक्षा होती है, वह है भीतर गहरी जागरूकता। संकल्प-पथ पर चलते हुए घनश्यामदासजी हमेशा इस 'नींद' से लड़ते रहे।

घनश्यामदासजी का सारा जीवन बाहर कठिन परिश्रम और भीतरी जागरूकता का साक्षी है। उनके समस्त कर्म और आचरण स्पष्ट करते हैं कि घनश्यामदासजी का मार्ग संकल्प का मार्ग है। यह मार्ग अकेले का ही है। कोई मदद करने के लिए भी नहीं होना चाहिए, क्योंकि तब संघर्ष कम हो जाता है और निर्भरता बढ़ती है। निर्भरता से ही 'नींद' भीतर प्रवेश करती है। घनश्यामदासजी का जीवन समग्र रूप से आत्मनिर्भर होने का जीवन है। सतत् जागते रहने का जीवन है।

परिवार वालों की ओर से बराबर आग्रह हो रहा था कि अब अठारहवर्षीय घनश्यामदासजी का दूसरा विवाह अवश्य हो जाना चाहिए। उस समय घनश्यामदासजी अपने दलाली के व्यापार में काफी सफल हो चुके थे। अपने साले के साथ उन्होंने



जी० एम० बिड़ला
घनश्यामदास का था
श्वसुर और मामा त
करने के लिए सहर्म
सके, क्योंकि महादेवी
थी। महादेवी का वि
बिड़ला-परिवार उससे
से भरपूर चेतना-संपन्न
के सरदार शहर की
लिया। घनश्यामदास
सन उन्नीस सौ बारह
करवा माहेश्वरी परि
सेठ प्रेमसुखदासजी क
बहुज्ञ एवं समाज-सुध
समय के आप ही एक
बीकानेर के महाराज
जनता को लाभान्वित
जब स्थानीय लोगों
लाइन डलवाने में पा
लेकर खादी पहनने ल
महादेवी पर अच्छी त
थे। वहीं आकर उन्हें
पिता बलदेवदासजी
इस विवाह में शामि

विवाह के समय
युवावस्था में कदम र
निकलकर जैसे प्रौढ़ाव
देशानुराग, समाज-प्रेम

घनश्यामदासजी
में शुरू हुआ। महा

जी० एम० बिड़ला एंड कंपनी नामक फर्म प्रतिष्ठित कर ली थी। इसमें 'जी०' घनश्यामदास का था और 'एम०' उनके पुत्र लक्ष्मीनिवास के मामा मुरली मनोहर का। श्वसुर और मामा तथा पूरे परिवार के आग्रह से घनश्यामदासजी ने दूसरी शादी करने के लिए सहमति दे दी। घनश्यामदासजी यह आग्रह इसलिए भी नहीं टाल सके, क्योंकि महादेवी नामक लड़की स्वयं पुत्र लक्ष्मीनिवास की नानी की सुझायी हुई थी। महादेवी का विवाह पहले इलाहाबाद ठहरा था, लेकिन वह लड़का मर गया। बिड़ला-परिवार उससे रिश्ता करने में हिचकता था। घनश्यामदासजी नये विचारों से भरपूर चेतना-संपन्न व्यक्ति थे। अंधविश्वासों से वे दूर रहे हैं। उन्होंने बीकानेर के सरदार शहर की इस तेरहवर्षीय कन्या महादेवी से विवाह करना स्वीकार कर लिया। घनश्यामदासजी की दादीजी और माताजी ने सहमति दे दी थी। इसलिए सन उन्नीस सौ बारह में दूसरी शादी हो गयी। महादेवी सरदार शहर के प्रतिष्ठित करवा माहेश्वरी परिवार के राय सालिगराम चुन्नीलाल बहादुर फर्म के कर्ता-धर्ता, सेठ प्रेमसुखदासजी करवा की एकमात्र संतान थीं। सेठ प्रेमसुखदासजी उस समय के बहुज्ञ एवं समाज-सुधारक व्यक्ति थे। बताया जाता है कि सरदार शहर में अपने समय के आप ही एक अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। प्रेमसुखदासजी के आग्रह पर ही बीकानेर के महाराजा ने जोधपुर-बीकानेर रेलवे लाइन डलवाकर सरदार शहर की जनता को लाभान्वित किया था। राज्याधिकारियों ने रेलवे लाइन डलवाने के लिए जब स्थानीय लोगों से सुझाव मांगे तो कोई तैयार नहीं हुआ। वे सोचते थे, रेलवे लाइन डलवाने में पाप लगेगा। प्रेमसुखदासजी बंग-विच्छेद के बाद से देशसेवा का व्रत लेकर खादी पहनने लगे थे। ऐसे पिता की समस्त विशेषताओं का प्रभाव उनकी बेटी महादेवी पर अच्छी तरह पड़ा था। विवाह के लिए सरदार शहर वाले पिलानी आ गये थे। वहीं आकर उन्होंने विवाह संपन्न किया। यह विवाह सादे ढंग से संपन्न हुआ। पिता बलदेवदासजी व्यावसायिक उलझनों के कारण पिलानी नहीं आ सके, इसलिए इस विवाह में शामिल भी नहीं हो पाये। यह उनकी मजबूरी थी, विरोध नहीं।

विवाह के समय घनश्यामदासजी अपनी किशोरावस्था पूरी तरह पार कर युवावस्था में कदम रख चुके थे। मन और बुद्धि से वह संभवतः इस अवस्था से भी आगे निकलकर जैसे प्रौढ़ावस्था को छू रहे थे। उनमें प्रेम-अनुराग के साथ-ही-साथ स्वाध्याय, देशानुराग, समाज-प्रेम, साहित्यानुराग सब जाग्रत हो चुके थे।

घनश्यामदासजी का दांपत्य जीवन नये विश्वास और उत्साह के साथ उस हवेली में शुरू हुआ। महादेवीजी कोमल, उदार और भावमयी किशोरी थीं। नैन-नक्श

उनके तीखे थे। बड़ी ही नाजुक कोमलांगी थीं। सब मिलाकर उनका व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक था। वे बहुत भावप्रवण भी थीं।

राजस्थान में ही नहीं, बल्कि सारे भारतवर्ष में ही उस समय प्रायः स्त्रियों और पुरुषों के संसार अलग-अलग थे। दूल्हा-दुल्हन दिन की रोशनी में खुले-आम एक-दूसरे से बात नहीं कर सकते थे। केवल लुका-छिपी से मिलना हो सकता था। हवेली के आंगन का जीवन आम घरों के जीवन से अलग था। स्त्रियों से यह अपेक्षा नहीं थी कि वे घर-गृहस्थी का काम करें। रसोई बनाने के लिए महाराज हुआ करते थे। घर के तमाम ऊपरी काम, जिनमें आतिथ्य भी शामिल था, मुनीम लोग किया करते थे। पत्नी खुद अपने हाथों से भोजन परोसकर पति को खिलाये, यह भी संभव नहीं था। ये काम केवल भाभियां अपने देवरों के लिए करती थीं। सारे-के-सारे पुरुष तिबारे की गद्दियों पर अपना समय बिताते और महिलाएं अंतःपुर के अपने कमरे में। महादेवीजी का जीवन भी ऐसा ही था। यह जरूर था कि जब घनश्यामदासजी दिसावरी में जाते थे तो उन्हें पत्र जरूर लिखते थे। वे भी उनके पत्रों का उत्तर जरूर देती थीं।

ननद जयदेवीजी साक्षी हैं, "यह नयी भाभी दिन के समय अपने कमरे में इस तरह बैठी रहतीं कि खिड़की से मर्दानी बैठक उन्हें तो नजर आये, लेकिन मर्दानी बैठक वालों से वह स्वयं छिपी रह सकें। भाभी मेरी हिंदी थोड़ी पढ़ी-लिखी थीं पहले की। पीछे भाईजी ने उन्हें पढ़वाया। भाईजी चिट्ठी भेजते बंबई-कलकत्ता से और हमारी भाभी जवाब लिखतीं सबसे छिपकर। हम लोग भाभी को बहुत छेड़ते, मगर वह खीझती नहीं। बस झेंपती जाएं और हंसती जाएं।"१७

पति-पत्नी के बीच हुआ पत्र-व्यवहार तो अब उपलब्ध नहीं है, लेकिन घनश्यामदासजी के व्यक्तित्व को देखते हुए उनकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। उन पत्रों में प्रेम की अभिव्यक्ति तो रही ही होगी, उनमें जीवन-संबंधी, सुख-संबंधी, परिवार-संबंधी निर्देश भी अवश्य रहे होंगे। विरह की व्याकुलता की जगह धैर्य के शब्द रहे होंगे। भावी जीवन की परिकल्पना रही होगी। देश की गुलामी से संबद्ध बातें रही होंगी। अपनी व्यवस्थित आकांक्षाओं को, नये समाज के निर्माण के अपने सपने को और अपनी आस्थाओं को व्यक्त करने के लिए पत्र एक सुंदर माध्यम रहा होगा। उस जमाने में जब पत्नी को पत्र लिखना एक प्रकार से धृष्टता समझी जाती थी, ऐसा

१७. मरुभूमि का वह मेघ : रामनिवास जाजू, पृष्ठ ८८

करने वाला युवक यह भी तो चाहता रहा होगा कि वह अपनी पत्नी को इस योग्य तो कर ले कि वह उसके बराबर में खड़ी हो सके और सच्चे अर्थों में उसकी जीवन-संगिनी बन सके।

घनश्यामदासजी जब दिसावरी से पिलानी लौटते तो पत्नी के लिए ढेरों हल्की, सुंदर और कीमती साड़ियां और अनेक शृंगार का सामान लाते थे। उनके लिए भारी-भरकम गहने वे नहीं बनवाते थे। सुंदर वस्त्र एवं शालीन शृंगार व्यक्तित्व को सुंदर और गरिमामय करता है, ऐसा उनका विश्वास था। गहनों को वे पुरानी रूढ़ियों का प्रतीक मानते थे। उन्हें लगता था कि धन सोने-जवाहरात में लगाने से अच्छा है कि व्यवसाय में लगाकर उसे बढ़ाया जाये। गहनों के बारे में उनकी यह धारणा सारी उम्र बनी रही। आगे के जीवन में गहनों के प्रति उनकी अरुचि के विषय में उन्हीं की नातिन मधुरिका बताती हैं, "तामझाम वाले, भड़कीले वस्त्र और बहुत ज्यादा गहने उन्हें पसंद नहीं थे।"

थोड़े समय में ही घनश्यामदासजी फिर कलकत्ता आ गये। उस जमाने में नियम था कि हर कोई सीधे मिलों से माल नहीं खरीद सकता था। मिलों के अंग्रेज मालिकों ने उन पार्टियों की एक लिस्ट बना रखी थी, जिनके हाथ वे माल बेचते थे। सन उन्नीस सौ ग्यारह में किसी भी ऐसे व्यक्ति का नाम इस लिस्ट में नहीं था, जिससे घनश्यामदासजी अपने दलाली के काम में सहयोग ले सकें, इसलिए उन्हें अपने काम में सीधे अंग्रेजों से ही संपर्क करने की आवश्यकता हुई।

व्यवसाय के समय भी घनश्यामदासजी की वेशभूषा शुद्ध भारतीय थी। लंबे-पतले मुख पर भरी-पूरी मूंछें, सिर पर बंधी राजस्थानी पगड़ी के नीचे से माथे पर दिखायी पड़ती थी—केशों की छटा। बंद गले का चुस्त कोट, कोट में चेन वाली जेब-घड़ी। कसी हुई कमीज और गले तक कमीज के सारे बटन बंद। दो लांग की लंबी किनारीदार सफेद धोती, पैरों में सफेद मोजे और काले पंपशू। घनी भौंहें, कुछ नीचे की ओर झुके हुए कान, कानों में गोखरू और बीरबली। तीखी-लंबी नाक, आंखों में चमक। दाएं हाथ की कनिष्ठा में और बाएं हाथ की अनामिका में अंगूठी, कलाकारों जैसी लंबी उंगलियां। शांत-गंभीर मुख-मंडल। सधा हुआ इकहरा और चुस्त शरीर।

एक दिन इसी वेश में घनश्यामदासजी अंग्रेजों के ब्रिटिश जूट स्टर्लिंग कंपनी के दफ्तर में पहुंचने के लिए लिफ्ट के अंदर दाखिल हुए। वे उस मकान के सबसे ऊपर वाली मंजिल पर जाना चाहते थे। लिफ्ट में सूट पहने अंग्रेज साहब भी थे।

वे उनकी ओर ऐसे देखने लगे, जैसे वह उनके दुश्मन हों। ऊपर पहुंचकर घनश्यामदास-जी लिफ्ट से बाहर आये और बड़े आत्मविश्वास से बोले कि उन्हें इस फर्म के एक जूनियर अंग्रेज अफसर से मिलना है। उनसे रुकने को कहा गया और बैठने के लिए बेंच की ओर इशारा किया गया। ऐसी बेंचों पर केवल चपरासी बैठते थे। घनश्याम-दासजी वहां बैठे नहीं, खड़े-खड़े इंतजार करते रहे। थोड़ी देर बाद उनसे कहा गया कि अंग्रेज अफसर उनसे नहीं मिलना चाहता और बेहतर यही होगा कि वे दफ्तर से फौरन बाहर चले जाएं। अपमान से घायल घनश्यामदासजी सीढ़ियों से उतरकर दफ्तर से बाहर आ गये। मन-ही-मन उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि दलाली का काम छोड़ देंगे ताकि अब वह कभी किसी अंग्रेज द्वारा अपमानित न हों।

यह अपमान संभवतः नियति का अनुग्रह था। ठीक उसी तरह जैसे दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के गाल पर लगाया एक अंग्रेज का तमाचा।

यह अपमान और तमाचा दोनों ही इतिहास को मोड़ने वाली घटनाएं हैं। अंग्रेजों के व्यावसायिक दफ्तर में घनश्यामदासजी का अपमान हुआ। यह अपमान बीज बन गया एक विराट व्यावसायिक वृक्ष का, जिसकी शाखाएं संसार भर में फैल गयीं। एक दिन घनश्यामदासजी बिड़ला आमंत्रित हुए बकिंघम पैलेस में, जहां अंग्रेजों की सत्ता का प्रभु, सम्राट रहता था।

जिस क्षण घनश्यामदासजी को ब्रिटिश जूट स्टर्लिंग कंपनी के दफ्तर से निकाला गया था, उस समय वह केवल पटसन और बोरियों के एक दलाल मात्र थे। लेकिन यह सब अब भूल जाना पड़ेगा। अपमान-जैसे भावावेश ने उनके भीतर एक शक्ति को उत्पन्न किया। उस शक्ति का निष्कासन चाहिए। निष्कासन दो ही तरह से हो सकता है—एक, नकारात्मक रास्ता—अपमान की प्रतिक्रिया। दूसरा, सकारात्मक रास्ता—अपमान का सृजनात्मक उपयोग।

घनश्यामदासजी को विरासत में मिला था कि यदि बीमार हो गये तो सुंदर कांड का पाठ करो। उससे चित्त भावावेश होने से बचता है। घनश्यामदासजी ने वही किया —अंग्रेज अपमान का सृजनात्मक सदुपयोग। उन्होंने संकल्प किया कि वे गुलाम भारत की ओर से अंग्रेजों को उन्हीं के स्तर पर समुचित उत्तर देंगे। इसके लिए अदम्य उत्साह, आत्मविश्वास और अंग्रेजों के अर्थशास्त्र का ज्ञान आवश्यक था। इसीलिए उन्होंने तिलक का 'गीता रहस्य', दयानंद सरस्वती का 'सत्यार्थ प्रकाश' और एडम-स्मिथ का 'द वैल्थ आफ नेशंस' पूरे ध्यान से पढ़ा। उन्हें अंग्रेजों के अधीन हिंदुस्तान में उद्योग-धंधों की स्थिति की सच्चाइयां हाथ लगीं। उन दिनों उद्योग-धंधों की गति

बहुत धीमी थी। लोगों का ध्यान फिर भी उस ओर गया। लेकिन देश में गरीबी और बेकारी की समस्या सुलझ नहीं रही थी। बहुत सारे बेकार या आधे बेकार लोग मजदूरों के रूप में उद्योग-धंधों की दुनिया में आ रहे थे। लेकिन यह परिवर्तन इतना धीमा था कि हिंदुस्तान के बढ़ते हुए देहातों पर इसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। व्यापक बेकारी और जमीन पर दबाव का परिणाम यह हुआ कि मजदूर बहुत बड़ी संख्या में, अपमानजनक स्थितियों में भी काम करने के लिए विदेशों में जाने लगे। वे दक्षिण अफ्रीका, फीजी, ट्रिनिडाड, जमेका, गायना, मारीशस, लंका, बर्मा और मलाया गये। देश में तब भी बेकारी की बुनियादी समस्याएं ज्यों-की-त्यों रहीं। घनश्यामदासजी ने देखा कि लेन-देन का सारा आधिपत्य इंपीरियल बैंक के अंग्रेज अधिकारियों के हाथ में है। पटसन ले जाने वाले सारे जहाज अंग्रेजों के हैं। पटसन का व्यापार लंदन के बाल्टिक एक्सचेंज में होता है। तो क्या बिड़ला-परिवार को किसी दूसरे व्यापार-क्षेत्र में जाना चाहिए ?

घनश्यामदासजी इधर-उधर छानबीन में लग गये और फिर कपास के क्षेत्र में जाने का निश्चय किया। पर इसमें भी उन्हें अंग्रेजों का मुकाबला करना पड़ा। सूती कपड़े अंग्रेजों द्वारा मैनचेस्टर से मंगाये जाते थे। कोयला, जो सारे कारखानों के लिए ऊर्जा था, अंग्रेजों ने अपने हाथ में ले रखा था। किंतु घनश्यामदासजी अपने आत्मविश्वास पर अटल थे। उद्योग उन्हें शुरू करना ही होगा, यह उनका दृढ़ संकल्प था।

कलकत्ता उस समय पुनर्जागरण का प्रमुख केंद्र था। इसका कारण यह था कि हिंदुस्तान में अंग्रेज-राज्य-शासन का पहला पूरा अनुभव बंगाल को ही हुआ था। उस राज्य का आरंभ खुल्लमखुल्ला लूटमार से हुआ। किसी हद तक यह अंग्रेजी राज्य प्रगति के पक्ष में हुआ और बंगाल इस बात पर घमंड कर सकता था कि इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति को जन्म देने में उसने बहुत मदद की। कलकत्ता के माध्यम से हिंदुस्तानी दौलत के इंग्लैंड आने से और राष्ट्र की पूंजी में बहुत बड़ी वृद्धि हो जाने से केवल उसकी शक्ति का भंडार ही नहीं बढ़ा, बल्कि उससे उसकी गति में लचीलेपन के साथ बहुत तेजी भी आयी। इसीलिए कलकत्ता को हर तरह से प्रमुखता प्राप्त हुई। इस प्रमुखता के भीतर नवजागरण की कोख में से राष्ट्रीय चेतना का विकास संभव हुआ। फलस्वरूप उन दिनों का कलकत्ता सब प्रकार के जीवन-स्पंदनों, सामाजिक हलचलों और राष्ट्रीय सोच-विचारों का प्रमुख स्थान था। घनश्यामदासजी इन तीनों स्तरों पर सहज ही प्रभावित हुए। बंकिम बाबू के 'आनंदमठ' ने उनको विशेष ढंग

से प्रभावित किया। राष्ट्रीय चेतना उनकी मनःस्थिति को आतंकवादी क्रांतिकारियों की मनःस्थिति के निकट ले आयी।

बचपन से ही संस्कारतः घनश्यामदासजी का स्वभाव जीवन-मूल्यों से निर्मित था। कलकत्ता में आकर यह फल हुआ कि उन्होंने अपने आपको व्यापार तक सीमित न रखकर समूचे सामाजिक-राष्ट्रीय जीवन से जुड़ा पाया। इससे पहले कलकत्ते में मेले-ठेले में प्रबंध के लिए चाहे स्वयंसेवक बनने का काम हो, कोई स्वागत-समारोह करना हो, सहायता-शिविर खोलने हों, घनश्यामदासजी सबसे आगे रहते थे। इनकी अपनी एक विशेष मित्र-मंडली थी। उसका प्रमुख काम था, युवकों में सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का संचार करना। वे सारे मारवाड़ी नवयुवक भी, जो तत्कालीन समाज में नयी जागृति लाने के लिए लालायित थे, घनश्यामदासजी के संपर्क में आने लगे। ऐसे लोगों में प्रमुख थे प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, जो उस समय कलकत्ता में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका और देवीदत्त जालान जैसे नवयुवकों ने घनश्यामदास-जी के नेतृत्व में मिलकर उन्नीस सौ ग्यारह में चौरंगी म्यूजियम के सामने एक क्लब की स्थापना की, जो शुरू में 'मारवाड़ी स्पोर्टिंग क्लब' कहलाया। कई वर्षों बाद जब कृष्णकुमारजी बड़े हुए तो उन्होंने इस क्लब का नाम बदलकर 'राजस्थान क्लब' कर दिया। इस क्लब में उस समय खासकर मारवाड़ी नवयुवकों को हथियार चलाना सिखाया जाता था। यहां व्यायाम, लेजियम और फुटबाल खेलने का शिक्षण-प्रशिक्षण भी दिया जाता। नवयुवक हिंदी शुद्ध बोलें और लिखें, इस उद्देश्य से महावीरप्रसादजी पोद्दार और गंगाप्रसादजी भोतिका ने यहां हिंदी की कक्षाएं लगवायीं।

बड़ा बाजार के नवयुवकों और अपने दोस्तों के सहयोग से घनश्यामदासजी ने मारवाड़ी मित्रमंडली भी बनायी, जिसके अंतरंग सदस्य थे--सीतारामजी सेकसरिया, रामकुमारजी भुवालका और बसंतलालजी मुरारका।

कलकत्ता के इन मारवाड़ी नवयुवकों पर उस समय के कांग्रेस के गरम दल की विचारधारा का बहुत प्रभाव था। मारवाड़ी युवकों की व्यायामशाला से उस समय की उग्रवादी चेतना का सहज ही संपर्क जुड़ा। युवकों में यह जोश पैदा होने लगा कि देश की आजादी के लिए कोई शक्तिशाली आंदोलन चले। आतंकवादी विपिनचंद्र गांगुली-जैसे कुछ बंगाली भी व्यायामशाला में आने लगे। उस व्यायामशाला के प्रमुख सदस्य थे प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, ज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, ओंकारमलजी

सर्राफ, कन्हैयालालजी चितलांगिया और फूलचंदजी चौधरी। यह सारे मित्र घनश्यामदासजी को अपने नेता के रूप में देखते थे। घनश्यामदासजी आतंकवादी नहीं थे, मगर देश की आजादी के लिए उनमें उत्साह था। व्यायामशाला केवल व्यायाम तक सीमित नहीं रही। वहां ऐसी गोष्ठियां भी होने लगीं, जिनमें राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर विद्वान के व्याख्यान होते और परस्पर विचार-विमर्श किया जाता। हिंदू राष्ट्रवाद से लेकर वामपंथी आतंकवाद तक भारतीय नवजागरण की सभी धाराएं घनश्यामदासजी के मानस में बहने लगीं।

घनश्यामदासजी की प्रेरणा से दो मार्च सन उन्नीस सौ तेरह को काटन स्ट्रीट स्थित जोड़ा कोठी की एक सभा में जुगलकिशोरजी बिड़ला, ओंकारमलजी सर्राफ, हरखचंदजी मोहता आदि समाजसेवकों के प्रयत्न से 'मारवाड़ी सहायता समिति' की स्थापना की गयी। बाद में इस संस्था का नाम 'मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी' कर दिया गया था।

उस समय मारवाड़ी समाज बाल-विवाह, मृत्यु-भोज, पर्दा-प्रथा, नारी-शिक्षा की ओर उदासीन था और तमाम पुरानी रूढ़ियों का शिकार था। समाज के तत्कालीन कर्णधार, जिनके दल को उस समय 'चपकनिया' पार्टी कहा जाता था, किसी प्रकार के सुधार को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। उनकी सक्रिय संस्था का नाम था 'मारवाड़ी एसोसिएशन'। उस संस्था को बंगाल कौंसिल और सेंट्रल असेंबली में अन्य दो संस्थाओं के साथ अपना प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। इस एसोसिएशन का उस समय के नवजागरण से कोई लेना-देना नहीं था। इसी के विरोध में प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, घनश्यामदासजी बिड़ला, बैजनाथजी केडिया, फूलचंदजी चौधरी, नागरमलजी मोदी तथा ज्वालाप्रसादजी कानोड़िया आदि नवयुवकों की एक टोली तैयार हुई। समाज-सुधार का दावा करने के पहले इस टोली के सदस्यों ने स्वयं आत्म-सुधार का संकल्प लिया, जिसमें नित्य प्रातःकाल उठना, स्वाध्याय करना, कुछ-न-कुछ पर-हित का काम करना और स्वास्थ्य निर्माण के लिए नियमित व्यायाम करना—इन चार प्रमुख नियमों का पालन किया जाना अनिवार्य था।

सूर्य-ग्रहण, चंद्र-ग्रहण आदि पर्वों पर यह टोली स्वयंसेवकों का काम करती थी। ऐसे मेलों पर कभी-कभी सारी रात जागकर काम करना पड़ता था। प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका के शब्दों में, "घनश्यामदासजी उस समय ट्रुप लीडर (नेता) का काम करते थे। सेवा-धर्म को अपनाये बिना आचरण में पवित्रता नहीं आ सकती। सेवा

के बल से उनका जीवन धीरे-धीरे निखरता गया और धीरे-धीरे समाज की पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने के लिए कृतसंकल्प हो गये।"१८

पर्दा-निवारण, मृत्यु-भोज बहिष्कार, बाल-विवाह का विरोध, सड़कों पर गाये जाने वाले गीतों को बंद करना आदि कार्यक्रम अपनाये गये। इसका समाज में विरोध होना तो स्वाभाविक था। घनश्यामदासजी के साथ पार्टी के नवयुवक समाज की सभाओं में भाग लेने लगे और वहां जाकर अलग-अलग स्थानों पर बैठते थे। दोनों पक्षों के विरोध से वातावरण बहुत दूषित हो गया था। आपस में खुलेआम पर्चे छपवाकर वे गाली-गलौज करने लगे। घनश्यामदासजी को यह अच्छा नहीं लगा। अंत में घनश्यामदासजी तथा अन्य मित्रों के हस्ताक्षर से पर्चे निकाले गये, जिनमें यह घोषित किया गया कि व्यक्तिगत रूप से लगाये गये किसी आक्षेप का हमारी ओर से कोई उत्तर नहीं दिया जायेगा, पर सामाजिक और सैद्धांतिक स्तर पर लगाये गये आक्षेपों का समाधान किया जायेगा। इस घोषणा का अच्छा असर हुआ और पारस्परिक द्वेष और ईर्ष्या का वातावरण समाप्त हुआ।

अब तक घनश्यामदासजी का व्यक्तित्व व्यवस्थित हो चुका था। उन्हें भरपूर सम्मान मिलने लगा था और सभी लोग उन्हें श्रद्धा से जी० डी० अथवा जी० डी० बाबू कहने लगे थे।

ये वही जी० डी० बाबू हैं, जो अपनी शिक्षा की कहानी कहते-कहते यह लिख गये हैं कि "गुरु से सीखने के प्रति मेरी अरुचि शायद शुरू से ही रही है, और यह अरुचि अब स्वभावतया इस उम्र में और भी बढ़ गयी ··· मेरा ख्याल है कि मनुष्य को स्वयं ही अपने आप का गुरु बनना चाहिए।"१९

---

१८. मरु भारती : घनश्यामदासजी बिड़ला, अभिनंदन विशेषांक, फरवरी, १९८२, पृष्ठ ९७
१९. वे दिन, बिखरे विचारों की मराठी, पृष्ठ ३१

पुरानी

पर गाये
विरोध
ाज की
नों पक्षों
पवाकर
अंत में
घोषित
से कोई
आक्षेपों
स्परिक

भरपूर
० डी०

ह लिख
अरुचि
ो स्वयं

---

ृष्ठ ९७
ृष्ठ ३१

## द्वितीय पर्व

# युवावस्था

दीपक जल उठा
स्वराज्य के पथ पर
श्रीमद्भागवत की बांसुरी
बापू का लाड़ला बालक
इतिहास का निर्माण
समृद्धि का अर्थ

# दीपक जल उठा

युवावस्था जीवन का वह वर्षाकाल है, जो संपूर्णता देता है। घनश्यामदासजी के जीवन में बीज अंकुरित हो चुके थे। उनके हृदय में स्वराज्य के सपने भी बनने लगे थे। स्वराज्य की उसी धरती पर उन अंकुरित बीजों को अलग-अलग जगह लगाकर चारों ओर हरीतिमा फैलाना था उन्हें। यह कार्य असाधारण था और इसकी चुनौती उनकी युवावस्था की परीक्षा थी। इसी चुनौती के समय सन उन्नीस सौ चौदह का प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया।

यह समय ऐसा था जब देश की राजनीति उतार पर थी। कांग्रेस दो हिस्सों में बंट गयी थी--एक था गरम दल और दूसरा नरम दल। उसके साथ-साथ युद्धकालीन रुकावटें और पाबंदियां भी थीं। दूसरी ओर लड़ाई के दौरान उद्योग-धंधे बढ़ रहे थे और उनमें बहुत ज्यादा मुनाफा हो रहा था। बंगाल की जूट मिलों में सौ फीसदी से लेकर दो सौ फीसदी तक सालाना मुनाफा हो रहा था। इस मुनाफे का कुछ हिस्सा लंदन और डंडी में विदेशी पूंजी के मालिकों के पास जा रहा था और कुछ हिस्से से हिंदुस्तानी लखपति, करोड़पति हो रहे थे।

घनश्यामदास बिड़ला, जिन्हें अब उनके मित्र जी० डी० कहने लगे थे, इस समय के उस मर्म बिंदु को देखने लगे थे जहां समूची आर्थिक स्थिति पर एक औपनिवेशिक पिछड़ेपन की गहरी छाप थी। वे अनुभव कर रहे थे कि भारतीय उद्योगों की स्थापना के कार्य को ब्रिटिश उद्योगपति बिलकुल भी सहन नहीं कर पा रहे थे। वे हर तरह का भरसक विरोध उत्पन्न कर रहे थे। इस चुनौती का पहली बार जमशेदजी टाटा, बालचंद हीराचंद और घनश्यामदास बिड़ला ने मुकाबला किया। यह समय आर्थिक पृथकतावाद का था। जिस तरह भारतीय रेलों में अलग-अलग श्रेणियां

(क्लास) अंग्रेजों ने बनायी थीं,उसी तरह का विभाजन उन्होंने समूची अर्थव्यवस्था में पैदा कर दिया था। इसी पृथकतावाद को अफ्रीका में गांधीजी ने पहली बार अनुभव किया। गांधीजी ने उसके अंत के लिए लड़ाई छेड़ी। इसी के समानांतर भारत में भी अंग्रेजों ने दो श्रेणियां बनायी थीं––एक अंग्रेज मालिक और दूसरा भारतीय नौकर। गांधीजी की तरह ही घनश्यामदासजी ने भी इस अपमानजनक स्थिति को अच्छी तरह पहचान लिया। इस पहचान ने उनमें यह विश्वास भर दिया कि जब तक वे अपना उद्योग न लगा लें, उनका स्वाभिमान आहत ही रहेगा।

बंबई और कलकत्ता, दोनों महानगरों में घनश्यामदासजी अपने रामेश्वर भाया के साथ एक बिड़ला उद्योग लगाने में प्रयत्नशील हो गये। कलकत्ता में उनकी मित्रमंडली पर भारतीय राजनीति के गरम दल का प्रभाव बढ़ रहा था। घनश्यामदास-जी स्वयं तिलक और लाला लाजपतराय जैसे नेताओं के प्रति आकृष्ट थे। उग्रवाद के प्रभाव से उनकी बिपिन गांगुली से दोस्ती बढ़ी। साथ ही इनके कानों में कर्मवीर गांधी का नाम गूंजने लगा था। गांधीजी से मिलने का शुभ-संयोग भी उन्हें शीघ्र मिला।

यह उन्नीस सौ चौदह का अंत था या पंद्रह का प्रारंभ, लेकिन निश्चित रूप से वह जाड़े का समय था। लंदन से गांधीजी स्वदेश लौट आये थे और कलकत्ता आने की उनकी तैयारी थी। यह खबर सुनकर कि गांधीजी कलकत्ता आ रहे हैं, उस समय के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के मन में उत्साह उमड़ पड़ा।

घनश्यामदासजी ने तब बीस वर्ष की आयु पूरी की थी। "पांच सवारों में अपना नाम लिखाने की चाह लिये मैं भी फिरता था। मेलों में वालंटियर बनकर भीड़ में लोगों की रक्षा करना, बाढ़-पीड़ित या अकाल-पीड़ित लोगों की सेवा के लिए सहायता-केन्द्र खोलना, चंदा मांगना और देना, नेताओं का स्वागत करना, उनके व्याख्यानों में उपस्थित होना, यह उन दिनों के सार्वजनिक जीवन में रस लेने वाले नौजवानों के कर्त्तव्य की चौहद्दी थी। उनकी शिक्षा-दीक्षा इस चौहद्दी के भीतर शुरू होती थी। मेरी भी यही चौहद्दी थी, जिसके भीतर रस और उत्साह के साथ मैं चक्कर काटा करता था।"[२०]

इस समय अंग्रेज-सत्ता हर बगावत को कुचलने में तुली थी। शोषण की निर्दय प्रक्रिया से गरीबी बढ़ रही थी। भारतवासी बेबस हो गये थे। हिंदुस्तानी जिंदगी के अंधेरे में असहाय एवं लक्ष्यहीन बह रहे थे।

---

२०. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १७

ऐसे समय में गांधीजी अफ्रीका से लंदन होते हुए स्वदेश लौटे और सारे हिंदुस्तान का दौरा किया। कलकत्ता में भी इसी सिलसिले में उनके आगमन की तैयारी थी। गांधीजी ताजी हवा के उस प्रबल प्रवाह की तरह थे, जिसने जनता के लिए पूरी तरह फैलना और गहरी सांस लेना संभव बनाया। वह रोशनी की उस किरण की तरह थे, जो अंधकार में पैठ गयी और जिसने लोगों की आंखों के सामने से परदा हटा दिया।

गांधीजी के प्रथम दर्शन ने युवक घनश्यामदासजी में कुतूहल पैदा किया। उन्होंने पहली ही नजर में जैसे उन्हें संपूर्ण रूप से देख लिया। "एक सादा सफेद अंगरखा, धोती, सिर पर काठियावाड़ी फेंटा, नंगे पांव, यह उनकी वेशभूषा थी। हम लोगों ने बड़ी तैयारी से उनका स्वागत किया। उनकी गाड़ी को हाथ से खींचकर जुलूस निकाला, पर स्वागतों में भी उनका ढंग निराला ही था। मैं उनकी गाड़ी के पीछे साईस की जगह पर खड़ा होकर 'कर्मवीर गांधी की जय' गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा था। गांधीजी के साथी ने, जो उनकी बगल में बैठा था, मुझसे कहा, 'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरान्निबोधत' ऐसा पुकारो। गांधीजी इससे प्रसन्न होंगे। मैंने भी अपना राग बदल दिया।"[२१]

घनश्यामदासजी ने उनके व्याख्यान सुने और यह अनुभव किया कि वे और नेताओं से एकदम भिन्न व्यक्ति हैं। वे बिलकुल सीधे-सादे थे। उनके व्याख्यानों में एक तरह की नीरसता थी, न जोश था, न कोई अस्वाभाविकता, न उपदेश ही देने की व्यास-वृत्ति, पर इस नीरसता के नीचे दबी हुई एक चमक थी, जो श्रोताओं पर छाप डाल रही थी।

कलकत्ता में उन्होंने कुल पांच व्याख्यान दिये। सारे व्याख्यानों में श्रोता की हैसियत से घनश्यामदासजी ने भाग लिया। घनश्यामदासजी उनके विचारों से नहीं बल्कि उनके आचरण से अत्यधिक प्रभावित हुए। गांधीजी के उठने-बैठने का ढंग, उनका सादा भोजन, सादा रहन-सहन, विनम्रता, कम बोलना, इन सब चीजों ने घनश्याम-दासजी को एक मोहिनी में डाल दिया।

गांधीजी जब कलकत्ता से जाने लगे, घनश्यामदासजी ने पास आकर पूछा, "क्या किसी सार्वजनिक मसले पर आपसे खतो-किताबत हो सकती है?"

गांधीजी ने कहा, "हां।"

घनश्यामदासजी को यह विश्वास नहीं हुआ कि किसी पत्र का उत्तर एक नेता इतनी जल्दी दे सकता है। वह भी उनके जैसे एक अनजान और साधारण नौजवान को।

---

२१. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १८

इसकी परीक्षा उन्होंने थोड़े ही दिनों बाद ली। उन्हें पत्र लिखा। उत्तर में तुरंत एक पोस्टकार्ड आया, जिसमें पैसे की किफायत तो थी ही, भाषा की भी किफायत थी।

घनश्यामदासजी को उस पत्र से ही बहुत प्रोत्साहन मिला। उन्होंने सहज ही एक जीवन-कसौटी प्राप्त कर ली कि मनुष्य के अत्यंत साधारण आचरण से पता चल जाता है कि उसमें सच्चाई कहां तक है। जो छोटी-छोटी बातों में सच्चाई का प्रयोग नहीं करता, जो अपने सारे आचरणों के संबंध में अव्यवस्थित है, ऐसे मनुष्य के जीवन से किसी बड़ी बात की आशा नहीं करनी चाहिए। जीवन की भव्यता, उसकी सुंदरता की किरण व्यवस्था से ही फूटती है, अव्यवस्था से नहीं।

इसी बीच घनश्यामदासजी के मन में कलकत्ता से बाहर किसी सुरम्य स्थान में विश्राम के लिए एक छोटे-से घर की परिकल्पना आयी। फलस्वरूप उन्होंने रांची में एक जमींदारी खरीद ली। गौरीदत्तजी मंडेलिया को यह जमींदारी संभालने का काम सौंपा गया। घनश्यामदासजी के जीवन में एक और प्रकाश उभरा। अठारह सितंबर, उन्नीस सौ सोलह को पिलानी में उनकी प्रथम संतान हुई। उस कन्या का नाम रखा गया चंद्रकला।

इसी वर्ष वामपंथी आतंकवादी बिपिन गांगुली से घनश्यामदासजी की दोस्ती ने एक भयंकर संकट खड़ा कर दिया। गांगुली का एक मित्र रोडा कंपनी में काम करता था। उसके पास विलायत से हथियारों की एक खेप आयी थी। उसने माल उतारते हुए हथियारों से भरी दो पेटियां कहीं छिपा दीं और बिपिन गांगुली के बताये हुए पते पर उन्हें भिजवा दिया गया। एक पेटी में पिस्तौल थे, दूसरे में कारतूस। वास्तव में यह सारा सामान गांगुली के कब्जे में था। इससे पहले उसे यह खबर मिले कि पुलिस छापा मारने आ रही है, उसने कारतूस की एक पेटी घनश्यामदासजी के कमरे में छिपवा दी। उस कमरे से भी वह पेटी कहीं और भेज दी गयी। पेटी इधर-से-उधर जाती कि पीछे-पीछे पुलिस पहुंचती। अंत में घनश्यामदासजी के एक मित्र देवीदयाल सर्राफ ने कुलियों का भेष रखा। उस पेटी को सिर पर रखकर वे उसे हुगली में फेंक आये। पुलिस वालों ने हुगली क्षेत्र के सारे बग्घीवालों को घेरा और धमकाया। फिर उन्हीं में से कुछ लोगों ने पुलिस को बता दिया कि एक पेटी इधर-से-उधर पहुंचायी गयी है। इस पर बिपिन गांगुली के सारे मारवाड़ी मित्रों की तलाशी ली गयी। घनश्यामदास-जी के अनन्य साथी प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका के घर से क्रांतिकारी अतुलनाथ के पत्र बरामद हुए। प्रभुदयालजी को दुमका में चार साल के लिए नजरबंद कर दिया गया। क्रांतिकारियों से सहानुभूति रखने वाले फूलचंदजी चौधरी को बंगाल से निष्कासित

कर दिया गया। कन्हैयालालजी चितलांगिया को उस कारतूस पेटी-कांड में भारत रक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया। ओंकारमल सर्राफ और ज्वालाप्रसाद कानोड़िया को भी नजरबंद किया गया।

उन दिनों बिड़ला-परिवार कालीगोदाम के रिहायशी कमरे छोड़कर जकरिया स्ट्रीट के कोने पर स्थित छाजूरामजी चौधरी के मकान में किरायेदार हो गया था। पुलिस ने घनश्यामदासजी को गिरफ्तार करने के लिए, इस मकान पर और काली-गोदाम की गद्दी पर एक साथ छापा मारा। यह घटना उन्नीस सौ सोलह की है। उस समय जनमत के प्रहरी समाचार पत्र 'भारत मित्र' ने एक संपादकीय लिखकर इन तलाशियों और गिरफ्तारियों पर प्रकाश डाला : "बड़े बाजार में जो तलाशियां और धरपकड़ हुई हैं, उससे लोगों में एक प्रकार की घबराहट फैल गयी है। जिन्हें अब तक लोग सदाचारी और परोपकारी समझते थे, उनसे ऐसा क्या अपराध बन पड़ा है कि पुलिस ने उनकी तलाशी ली और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। जिन घनश्यामदास बिड़ला की तलाशी लेने पुलिस छाजूरामजी के घर गयी, उनकी फर्म 'श्रीयुत् बलदेवदास जुगलकिशोर' ने सेठ ताराचंद घनश्यामदास के साझे से कुछ दिन पहले एक मोटर एम्बुलेंस सरकार को दी है।"

इस संपादकीय लिखने के उन्नीस दिन पहले ही 'भारत मित्र' कार्यालय की भी तलाशी हुई थी।

संयोग से घनश्यामदासजी एक ही दिन पहले छुट्टियां मनाने उटकमंड चले गये थे। बिड़ला-परिवार ने यहां चुपचाप खबर कर दी कि पुलिस की निगाह से बचने के लिए फौरन छिप जाओ। घनश्यामदासजी तीसरे दर्जे के मुसाफिर बनकर छिपते-छिपाते पहले मदुरै और फिर नाथद्वारा गये। नाथद्वारा से पुष्करजी पहुंचे और वहां तीर्थयात्रियों की भीड़ में भूमिगत हो गये। वहां से पिलानी बहुत दूर नहीं थी, किंतु पिलानी जाने का कोई सवाल उठ ही नहीं सकता था। पुलिस वहां पहले से ही ताक लगाये बैठी थी। कलकत्ता के डाक्टर सर कैलाशचंद्र बोस के बिड़ला-परिवार और पुलिस अधिकारी, दोनों से ही अच्छे संबंध थे। उन्हीं के आश्वासन और कोशिशों से घनश्यामदासजी के नाम निकला हुआ वारंट रद्द हुआ। इस तरह पूरे तीन महीने भटकने के बाद घनश्यामदासजी कलकत्ता वापस लौट सके।

संभवतः इसी छिपने-भटकने की प्रक्रिया से यह बात उनके मानस में उजागर हुई कि आतंकवादियों के साथ मिलकर इस संग्राम में वे सफल भूमिका नहीं निभा सकेंगे। उन्हें गांधीजी का सत्य-अहिंसा का मार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर लगा। उसमें

वे किस तरह से गांधीजी की सहायता कर सकेंगे, इस योजना का बीजारोपण उन्हीं क्षणों में हुआ।

अब तक कलकत्ता में घनश्यामदासजी का घर-परिवार जम चुका था। इसी समय पत्नी महादेवी को पहली बार कलकत्ता बुलाया गया। उनके साथ सातवर्षीय बड़ा बेटा लक्ष्मीनिवास और पुत्री चंद्रकला भी थे। उसी छाजूराम चौधरी के मकान की पहली मंजिल पर घनश्यामदास-दंपति रहे।

बलदेवदासजी ने अपनी मां से कई बार आग्रह किया कि वे पोतों के साथ कलकत्ता जाकर रहें। पोतों की ओर से भी बराबर ऐसा अनुरोध होता था, लेकिन उन्हें पिलानी ही प्यारी थी।

दादीजी उन्नीस सौ सत्रह में अपने सबसे छोटे पोते ब्रजमोहन के विवाह पर कलकत्ता आयीं। ब्रजमोहन का विवाह बयालीस, जकरिया स्ट्रीट पर बने मकान में हुआ। इस विवाह में बलदेवदासजी भी उपस्थित हुए। इस विवाह का एक विशेष महत्त्व था। बिड़ला-परिवार उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में काफी आगे बढ़ चुका था, इसीलिए विवाह धूमधाम से हुआ। उसमें खासी रौनक थी। विवाह में काफी संख्या में अंग्रेज मेहमानों को निमंत्रित किया गया था। उनके स्वागत के लिए पाश्चात्य ढंग का अलग प्रबंध था। शराब और मांस देने का तो प्रश्न ही नहीं था, परंतु शाकाहारी खाना उनके लिए पाश्चात्य ढंग से बनाया गया। दूसरी ओर परंपरागत ढंग से मारवाड़ी समुदाय के लिए स्वागत-समारोह का प्रबंध देशी ढंग से किया गया था। जुगलकिशोरजी को एक ही विवाह में अलग-अलग प्रबंध अच्छा नहीं लगा। रामेश्वरदासजी और घनश्यामदासजी इस विचार के थे कि अंग्रेज अतिथियों के लिए उनकी पसंद का ध्यान न रखना व्यावहारिक बात नहीं है। विवाह में एक और बखेड़ा खड़ा हुआ। बिड़लाओं की बारात में इंग्लैंड से बैरिस्ट्री पास करके लौटे हुए कालीप्रसाद खेतान शामिल होने वाले थे। कन्या-पक्ष के कुछ पुरान-पंथियों का कहना था कि विलायत जाने का मतलब है, जाति-च्युत होना। उन्हें बारात में शामिल न किया जाय। उधर घनश्यामदासजी और उनके युवा साथियों की जिद थी कि कालीप्रसाद बारात में जरूर आएंगे। कालीप्रसादजी स्वयं चाहते थे कि कोई समझौता हो जाये, अन्यथा वे भविष्य में किसी भी बारात में शामिल नहीं हो सकेंगे। उनकी यह इच्छा देखकर बलदेवदासजी ने बड़ी खूबसूरती के साथ इस समस्या का समाधान किया। उन्होंने यह समझौता करवा दिया कि आत्मशुद्धि के लिए कालीप्रसादजी तीर्थ-यात्रा कर लें और उन्हें जाति में शामिल कर लिया जाये। यह एक सरल निष्पाप समझौता

था जिससे दोनों पक्ष प्रसन्न हो गये। इससे पता चलता है कि बिड़ला-परिवार को समय की पुकार सुनने की क्षमता प्राप्त थी। उन्हें परंपरा और प्रगति दोनों का समन्वय करना आता था।

इस विवाह में आये साहबों की पार्टी में घनश्यामदासजी ने उन्हीं अंग्रेजों के साथ आंखें मिलाकर बातें कीं, जिन्होंने कुछ समय पहले उनका अपमान किया था। इस पार्टी में वे दिल खोलकर बातें कर रहे थे।

कलकत्ता के मारवाड़ी समाज में 'चपकनिया' कहलाने वाले पुरातन-पंथियों से कई मामलों में घनश्यामदासजी और उनके साथियों का टकराव हुआ। बिड़ला-परिवार लीक से हटकर आधुनिक हो रहा था और साथ ही उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा था। 'चपकनिया' कहलाने वाले लोग इस बात से अंदर-ही-अंदर जलने लगे थे। घनश्यामदासजी अग्रगामी यानि सुधारक पार्टी के सदस्य थे। यह अग्रगामी मंडली परदे का विरोध करती थी। उसे पिछड़ेपन का प्रतीक मानती थी। उनका प्रयत्न था कि स्त्रियों पर लगे हुए प्रतिबंध ढीले किये जाएं। औरतों को बाजार से गीत गाते हुए जाने के लिए बाध्य न किया जाये। ब्याह में गालियों का गाना बंद किया जाये। तेरहवीं पर बिरादरी भोज न किया जाये। इस प्रसंग में घनश्यामदासजी ने अपनी पत्नी महादेवी के साथ पूरा यत्न किया कि वे उनके विचारों के अनुरूप आचरण कर सकें। महादेवी अपने पति के साथ बाहर वालों के सामने आने लगीं। महादेवी का मुख तो खुला रहता था, लेकिन शालीनता के लिए सिर पर आंचल रहता था। लगभग दो वर्षों के बाद घनश्यामदासजी के घर फिर रोशनी हुई। बारह अक्तूबर उन्नीस सौ अठारह को गोपाष्टमी के दिन महादेवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया कृष्णकुमार। इसी वर्ष घनश्यामदासजी के पिता बलदेवदासजी को तत्कालीन वाइसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने 'रायबहादुर' की उपाधि से विभूषित किया।

रायबहादुर की उपाधि की सनद निम्न प्रकार थी :

**"बाबू बलदेवदास बिड़ला, मर्चेंट, कलकत्ता (बंगाल स्थित) को--मैं, आपकी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण रायबहादुर की उपाधि से विभूषित करता हूं। --दिल्ली, १ जनवरी, १९१८।"**

बलदेवदासजी को इस उपाधि के मिलने से बिड़ला-परिवार का सम्मान और बढ़ गया। कलकत्ता की 'चपकनिया' कहलाने वाली पार्टी के लोगों को जरूर इससे ईर्ष्या हुई।

'चपकनिया' पार्टी के नाम के पीछे भी उनकी वेशभूषा थी, जिसके कारण

उन्हें 'चपकनिया' या चिपकने वाला कहा जाने लगा। ये लोग अभी तक बंबइया मारवाड़ियों की पोशाक से चिपके हुए थे। धोती के ऊपर कोट पहनते। इधर कलकत्ता के संभ्रांत मारवाड़ी विलायती मलमली कपड़े पहनते थे और ऊपर शानदार चोगा, गले में मोड़कर गोल बनाया जरी की किनारी का दुपट्टा, सोने की चेनवाली जेब-घड़ी, पंपशू। साथ में रखते थे हाथी-दांत या सोने की मूंठ वाली छड़ी। इस वेशभूषा पर बंगाली प्रभाव था। दोनों ही एक-दूसरे के पहनावे का मजाक बनाया करते थे।

समय बीतता गया। सन उन्नीस सौ उन्नीस में प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया। इसके बाद ही धन कमाने के जो तरीके थे, उनमें परिवर्तन आयेगा, ऐसा आभास बिड़ला-बंधुओं को पहले से ही हो गया था। उन्होंने समझ लिया कि उद्योग लगाना ही एकमात्र विकल्प है। वैसे घनश्यामदासजी ने उन्नीस सौ अठारह में ही दिल्ली में एक पुरानी सूती कपड़े की मिल खरीद ली थी, जिसका उद्देश्य था उद्योग-क्षेत्र में आत्म-प्रशिक्षण। अभी तक बैंक, बीमा, जहाजरानी और ऊर्जा का एकमात्र स्रोत कोयला—सबकी बागडोर अंग्रेजों के हाथों में थी।

नये उद्योग तो लगाने ही थे, परंतु इसके रास्ते में असाधारण कठिनाइयां थीं। घनश्यामदासजी ने एक आश्चर्यजनक निर्णय लिया, एक कपड़ा और एक जूट मिल लगाने के लिए उसके शेयर चालू किये, जो अप्रत्याशित रूप से इतने अधिक बिके कि अंग्रेज उद्योगपति डर गये। उन्हें लगने लगा कि उद्योग की बागडोर उनके हाथों से छूटकर भारतीयों के हाथ में चली जायेगी। इसे रोकने के लिए उन्होंने अंतर्देशीय जल परिवहन के भाव बिड़ला उद्योगों के लिए बढ़ा दिये। इंपीरियल बैंक ने उन्हें कार्यशील पूंजी (वर्किंग कैपिटल) देने से इंकार कर दिया। उनके लिए कोयले पर भी बहुत अधिक कर लगा दिया गया। लेकिन अपने उद्यम और अध्यवसाय के बल पर बिड़ला-परिवार ने सारी कठिनाइयां पार कर लीं। एक अंग्रेज दलाल की मदद से उन्हें बैंक से ऋण मिल गया। इतना जरूर था कि उनके लिए ब्याज की दर साधारण से बहुत ऊंची थी। दो कंपनियों के लिए बिड़लाओं को ऋण मिला और यहीं से एक शक्तिशाली औद्योगिक प्रतिष्ठान शुरू हुआ। इन्हीं दिनों घनश्यामदासजी ने आधुनिक प्रणाली के अनुसार बीस लाख रुपये की लागत से 'बिड़ला ब्रदर्स (प्रा०) लिमिटेड' की स्थापना की। साथ ही मारवाड़ी समाज के सबसे लोकप्रिय और बहुत ही ऊंची प्रैक्टिस करने वाले सालिसिटर देवीप्रसादजी खेतान को बिड़ला ब्रदर्स में स्थायी रूप से नियुक्त कर लिया। उनको वार्षिक परिलाभ (एमालुमेंट्स) एक लाख रुपये दिया जाता था। "इसका नतीजा यह हुआ कि उन्नीस सौ उन्नीस में ही उनके व्यापार का सारा काम

कानून के हिसाब से पक्का बनता गया, जिससे आगे चलकर भाइयों, लड़कों या परिवारों में कोई झगड़ा होने की संभावना नहीं रही। कंपनियां बना दी गयीं। साझेदारी का काम ही नहीं रखा। जिसको जितना हिस्सा लेना हो, ले ले। उसका उतना पैसा उनको मिलता रहेगा। इसलिए आज तक इनके परिवार में घर का झगड़ा हुआ ही नहीं।"२२

उन्नीस सौ उन्नीस में एक दिन जयपुर नरेश सवाई माधवसिंह ने बलदेवदासजी को तार द्वारा जयपुर आने का निमंत्रण भेजा। बलदेवदासजी को जो तार मिला, उनकी समझ में नहीं आया। पीछे इसका भेद खुला। कारण स्पष्ट था—शेखावटी में एक ठाकुर था, जिसका नाम था बाघसिंह। पिलानी के एक हिस्से का वह मालिक था। वह लालची किस्म का आदमी था और बिड़लाओं को प्रायः परेशान किया करता था। एक समय ऐसा भी आ गया था जब दोनों के संबंध इतने ज्यादा बिगड़ गये थे कि बाघसिंह ने अपने साथियों सहित पिलानी की बिड़ला हवेली को घेर लिया और खून-खराबा करने को तैयार हो गया। उसने कहा कि हमेशा के लिए आज ही फैसला हो जाना चाहिए। उस समय बलदेवदासजी पिलानी में नहीं थे, लेकिन रामेश्वरदासजी, जो वहां थे, उन्होंने अपने साथियों, दरबानों और कुछ राजपूतों को इकट्ठा कर हथियार उठा लिये और बाघसिंह की चुनौती का सामना करने के लिए तैयार हो गये। हवेली के दरवाजे तुरंत बंद कर दिये गये। रामेश्वरदासजी और उनके साथी हवेली की छत पर चढ़ गये और उन्होंने अपने मोर्चे सम्हाल लिये। रामेश्वरदासजी ने जोर से चिल्लाकर कहा कि यदि बाघसिंह के लोगों ने हवेली के अंदर घुसने की कोशिश की तो उन्हें गोली दाग दी जायेगी। बाघसिंह के सारे लोग वहां से भाग गये।

घनश्यामदासजी को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने सोचा कि बार-बार के झगड़े और झंझट की अपेक्षा अच्छा है कि यह मामला एक बार ही अंतिम रूप से निपटा लिया जाये। वे वाइसराय के सचिव के पास गये, जो सरकार से घनश्यामदासजी के राजनीतिक मतभेद के बावजूद, उनके निजी दोस्त थे। घनश्यामदासजी ने समझाया कि किस तरह उन्हें और उनके परिवारजनों को बाघसिंह परेशान कर रहा है। वाइसराय के सचिव ईमानदार और योग्य व्यक्ति थे। उन्होंने मजाक करते हुए कहा कि यह आश्चर्य की बात नहीं है कि बिड़लाओं को बाघसिंह परेशान कर रहा है, क्योंकि जैसा उसका नाम है—वह शेर भी है और सिंह भी। घनश्यामदासजी से कुछ देर हंसी-मजाक करने के बाद सचिव ने जयपुर के महाराजा को एक पत्र लिखा कि वे

२२. प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका की रिकार्ड की हुई भेंट-वार्ता से

बिड़लाओं को जानते हैं, वे सज्जन पुरुष हैं। उन्होंने लिखा कि उन्हें शिकायत मिली है कि ठाकुर बाघसिंह उन्हें परेशान कर रहा है, इसलिए उन्हें विश्वास है कि महाराजा इस मामले की जांच-पड़ताल करेंगे । महाराजा के लिए वाइसराय के सचिव का पत्र पर्याप्त था । महाराजा ने तुरंत कार्यवाही की । उन्होंने बाघसिंह को अपने ठिकाने से निकाल दिया और गद्दी छीन ली । इसके बाद उन्होंने तुरंत बलदेवदासजी को जयपुर आने के लिए एक तार भेजा । तार पाकर बलदेवदासजी असमंजस में पड़ गये । तार का आशय उनकी समझ में नहीं आया । उन्होंने घनश्यामदासजी से पूछा, "क्या करना चाहिए ?"

घनश्यामदासजी ने कहा, "घबराने की कोई बात नहीं है, आप जयपुर जरूर जाइए ।"

बलदेवदासजी जयपुर पहुंचे । जैसे ही बलदेवदासजी ने 'दरबारे खास' में कदम रखा, महाराज माधवसिंह ने अपने ए० डी० सी० को बुलाया और कहा, 'शेठां नै कड़ो पहराओ ।'

बलदेवदासजी आश्चर्यचकित रह गये । इस छोटे-से वाक्य का अर्थ उनकी समझ में आ गया । जयपुर नरेश एक साथ उन्हें दो तरह से सम्मानित कर रहे थे । जयपुर राज्य का नियम था कि जिस व्यक्ति को जयपुर नरेश ने 'शेठ' की उपाधि नहीं दी है, उसे नरेश के सामने सेठ नाम से संबोधित नहीं किया जा सकता। इसलिए एक तो बलदेवदासजी को 'सेठ' कहकर राजा ने यह उपाधि दे दी; दूसरा, पैर में सोने का कड़ा पहनवाकर बलदेवदासजी को ताजीमदार घोषित कर दिया। यह सोने की ताजीमें अति-विशिष्ट व्यक्तियों को ही दी जाती थीं। जोधपुर और जयपुर की ताजीमें, महाराजा उदयपुर की उपस्थिति के अतिरिक्त, पूरे राजस्थान में कहीं भी धारण की जा सकती थीं। इस बात को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मीनिवासजी बिड़ला ने बताया कि ताजीम एक तरह का सम्मान था। जिसके पास ताजीम न हो उसकी भेंट महाराज बैठे-बैठे ही लेते थे। बलदेवदासजी ताजीमदार हो गये थे, इसलिए जयपुर नरेश ने खड़े होकर उनकी भेंट स्वीकार की। इस बात से बिड़ला-परिवार बहुत अधिक प्रतिष्ठित गिना जाने लगा।

उन्नीस सौ बीस में घनश्यामदासजी ने दो ऐसे सिद्धांत प्रतिपादित किये जो बाद में उनकी औद्योगिक-नीति के विशिष्ट अंग सिद्ध हुए—पहला यह कि जहां तक संभव हो पुरानी मिलें न खरीदी जाएं, हमेशा नयी मिलें ही स्वयं स्थापित की जाएं। दूसरा औद्योगिक क्षेत्र में जब कोई बड़ा फैसला कर लिया गया हो तो किसी छोटे-से

मसले के लिए उसे लटकाये नहीं रखा जाना चाहिए। ये दोनों सिद्धांत उद्योगपति के रूप में घनश्यामदासजी के चरित्र को स्पष्ट करते हैं। उस समय के लेन-देन या लेवा-बेची करने वाले बनिया और व्यवसायी के चरित्र से यह रूप सर्वथा भिन्न था।

सूती कपड़ा- मिलों की दुनिया में घनश्यामदासजी ने ही अच्छी कमाई की थी। स्वयं घनश्यामदासजी ने गनी-जूट की दलाली में खूब धन कमाया था। इस तरह व्यापारी से उद्योगपति होने का जो चरण सामने आया था, उस पर उन्होंने सहज ही अधिकार पा लिया। बिड़ला ब्रदर्स ने इसके पहले जूट की नयी मिल लगाने का संकल्प किया था। दलाल के रूप में इस क्षेत्र का पूरा अनुभव घनश्यामदासजी ने पहले से अर्जित कर रखा था। यहां भी उन्हें अंग्रेजों द्वारा डाली गयी अड़चन का सामना करना पड़ा।

घनश्यामदासजी ने जूट मिल मालिकों के संगठन का अध्यक्ष बनने की बहुत कोशिश की। अब तक कोई भारतीय अध्यक्ष नहीं बना था। यह पूरी तरह अंग्रेजों की सभा थी। इस कारण घनश्यामदासजी को इसमें शामिल नहीं होने दिया गया।

लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने पूरे विस्तार के साथ बताया, "हमने जूट मिल लगाने के लिए जमीन खरीदी तो एंड्रूज कंपनी ने चुपचाप रातों-रात जाकर उस जमींदार से जमीन के बीच में एक छोटा-सा हिस्सा ले लिया, जिससे वहां पर हमारी मिल न बन सके। उसके बाद हमने उस जमींदार पर मामला दायर किया और प्रिवी कौंसिल तक केस चला। हम जीत भी गये, लेकिन जीत का लाभ हमें नहीं मिला, क्योंकि इसमें दस साल लग गये। दस साल तक तो मिल का बनना नहीं रुक सकता था। इसलिए हमने चुपचाप दूसरी जगह जमीन खरीदी और वहां पर मिल खड़ी कर दी।"२३

दूसरी अड़चन थी जूट मिल में लगायी जाने वाली मशीनों की कीमत के संबंध में। मशीन न आ सके इसलिए अंग्रेजों ने पौंड और रुपये की विनिमय दर को अप्रत्याशित रूप से बढ़ा दिया। इससे कीमतें बहुत बढ़ गयीं। फिर भी घनश्यामदासजी ने हिम्मत नहीं हारी और मिल स्थापित करने में जुट गये। आखिर मिल बनकर तैयार हुई, लेकिन इसके बनाने में योजना से बहुत अधिक खर्च हो गया। इतना ज्यादा कि बिड़ला ब्रदर्स के हाथ तंग हो गये। बड़े भाई जुगलकिशोरजी ने, जो शुरू से ही उद्योगों के प्रति उत्साही नहीं थे, इस मिल को बेच देने का सुझाव दिया। लेकिन छोटे भाई ब्रजमोहनजी ने घनश्यामदासजी का साथ दिया और मिल का काम अपने ढंग से चल निकला।

इस समय घनश्यामदासजी के मन की स्थिति बहुत अशांत थी। अंग्रेज उद्योगपति

---

२३. लक्ष्मीनिवास बिड़ला की रिकार्ड की हुई भेंटवार्ता से

उनका मजाक वनाते थे। वे भारतीयों को किसी लायक नहीं समझते थे और उनका दृढ़ विश्वास था कि मिल मालिक के रूप में विड़ला कभी सफल नहीं हो सकेंगे। दूसरी ओर मिल लगाने में धारणा से अधिक धन खर्च हुआ था। घनश्यामदासजी सोचा करते थे कि यदि मिल ठीक-ठाक काम न करे तो कितना वड़ा नुकसान होगा। परंतु यह सव सोचकर भी वे अपने आपको विषाद-मग्न नहीं होने देते थे। आशावादी तो शुरू से ही थे। इन सारी समस्याओं से उबरने की राह ढूंढ़ते रहते थे। इस सारी स्थिति को जुगलकिशोरजी ने भांप लिया। दोनों भाइयों में खुलकर बातें हुईं। घनश्यामदासजी के संकल्प को देखकर जुगलकिशोरजी ने कहा, "अव तू पैसे की चिंता मत कर। तू मिल को चलाकर दिखा।" इस आश्वासन और प्रोत्साहन तथा छोटे भाई ब्रजमोहनजी के सहयोग ने घनश्यामदासजी के संकल्प को और दृढ़ कर दिया। वे उत्साह सहित अपने कर्म में प्राण-पण से जुट गये।

सन उन्नीस सौ बीस का वर्ष समाप्त होते-होते घनश्यामदासजी के पिता श्री वलदेवदासजी को विश्वास हो गया कि उनके लड़के अव व्यवसाय संभालने में पूरी तरह सक्षम हैं। वे सक्रिय व्यवसाय से विरक्त हो गये और उन्होंने वानप्रस्थ ले लिया। वे काशी-निवास करने चले गये। उनके इस आदर्श संकल्प का प्रभाव पूरे परिवार पर पड़ा।

उद्योग क्षेत्र में घनश्यामदासजी का व्यक्तित्व अव तक अखिल भारतीय स्तर का हो गया। उस समय इस क्षेत्र के सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से उनका संपर्क होने लगा। इस प्रसंग में बंबई के सर्वमान्य व्यापार विशेषज्ञ सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास से घनश्यामदासजी की मैत्री सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इन दोनों में गाढ़ी मैत्री हो गयी और दोनों, पी० टी० और जी० डी० के नाम से प्रसिद्ध होकर भारतीय व्यापार के नेतृत्व की वागडोर संभालने के लिए एक सुदृढ़ मंच तैयार करने में जुट गये। सन उन्नीस सौ इक्कीस के मार्च में गांधीजी के विदेशी वस्त्र वहिष्कार आंदोलन से प्रभावित होकर घनश्यामदासजी ने 'भारत मित्र' दैनिक पत्र के माध्यम से यह घोषणा की कि वे अब आगे विदेशी वस्त्रों का व्यापार नहीं करेंगे।

ो थे और उनका
नहीं हो सकेंगे।
घनश्यामदासजी
नुकसान होगा।
थे। आशावादी
ते थे। इस सारी
हुई। घनश्याम-
चिंता मत कर।
भाई ब्रजमोहन-
वे उत्साह सहित

ी के पिता श्री
संभालने में पूरी
नप्रस्थ ले लिया।
पूरे परिवार पर

भारतीय स्तर
संपर्क होने लगा।
ठाकुरदास से
ी मैत्री हो गयी
तीय व्यापार के
जुट गये। सन
लन से प्रभावित
घोषणा की कि

# स्वराज्य के पथ पर

पहला विश्वयुद्ध उन्नीस सौ चौदह से उन्नीस सौ अठारह तक चला । इस समय भारत का राष्ट्रीय आंदोलन अपनी आरंभिक अवस्था में था । स्वराज्य के इस पथ पर पढ़े-लिखे बाहरी लोग आगे आ रहे थे । धनवान इस पथ पर आने से अभी हिचक रहे थे । पर जैसे-जैसे युद्ध का समय बढ़ता जा रहा था, वैसे-वैसे इस पथ पर चलने वाले लोगों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी । कलकत्ता में रहते हुए उन दिनों घनश्यामदास-जी इस बात को ध्यान से देख रहे थे कि राष्ट्रीय आंदोलन में कुछ ऐसे पत्रकारों ने भाग लेना शुरू किया है जो भारतीय भाषाओं में अखबार निकाल रहे थे। इस समय तक जमींदार, व्यापारी, वकील, डाक्टर आदि वर्ग के लोगों ने इसमें भाग लेना शुरू नहीं किया था[२४]। फलस्वरूप कांग्रेस के पास प्रचार-कार्य के लिए धनराशि का अभाव था ।

महात्मा गांधी सन उन्नीस सौ पंद्रह के अंत में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे थे । उनके आते ही सारी स्थिति में नयी चेतना जाग्रत हो गयी । देश के स्वतंत्रता-संग्राम को एक नयी दिशा मिली । गांधीजी के नेतृत्व में कई लोगों ने तो अपनी जिंदगी का सारा ताना-बाना ही बदल दिया । उन्हीं में से एक थे घनश्यामदास बिड़ला । वे गांधी-जी के संपर्क में सन उन्नीस सौ सोलह में आये । उनका संपर्क कैसे हुआ, इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने स्वयं दिया है--"मेरे जीवन की इस सौभाग्यपूर्ण घटना का एकमात्र श्रेय प्रारब्ध को ही मिलना चाहिए, जिसका रहस्यमय हाथ, भीतर-ही-भीतर अपना काम करता रहता है। मेरी कोई राजनीतिक पृष्ठभूमि नहीं थी, इसलिए मैं इस योग्य कहां था कि किसी विश्वविख्यात व्यक्ति की दृष्टि में आ पाता ।"[२५]

२४. नेशनलिज्म एंड कालोनिलिज्म इन माडर्न इंडिया, बिपिनचंद्र पाल, पृष्ठ १३३

२५. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ११०

घनश्यामदास बिड़ला ने जिन शब्दों में स्वीकारोक्ति दी है, उससे स्पष्ट है कि गांधीजी के व्यक्तित्व का वह धार्मिक पक्ष, जो बुनियादी तौर पर नैतिक था, उसी से वह सबसे अधिक प्रभावित हुए थे। उनके धर्म का आधार था वह नैतिक मूल्य जिसको गांधीजी ने प्रेम या सत्य के कानून का नाम दिया है। सत्य और अहिंसा उनको एक ही चीज या एक ही चीज के अलग-अलग पहलू मालूम हुए, जिसकी ओर घनश्यामदास बिड़ला अत्यधिक आकृष्ट हुए। इन्हें ब्रिटिश राज के अपमानजनक पक्ष का पूरा ज्ञान था। कुछ भारतवासी अपने निहित स्वार्थों के कारण ब्रिटिश राज के साथ हो गये थे। गांधीजी ने उन्हीं बुनियादों पर चोट की। इससे जीवन का नया मापदंड बना और ब्रिटिश राज की असलियत पर रोशनी पड़ी। अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता की लड़ाई के प्रति भारतवासियों के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हुआ। अंग्रेज वाइसराय के दरबार और रजवाड़ों की शान-शौकत अब जनता की गरीबी और शोषण के माध्यम बने। गांधीजी ने 'स्वदेशी' की सुप्त भावना को जगाया। लोगों के मन में यह बात समा गयी कि हर विदेशी वस्तु दासता की प्रतीक है। उसका बायकाट या बहिष्कार किये बिना आज़ादी नहीं प्राप्त की जा सकती। इसके फलस्वरूप लोगों में आत्मसम्मान की चेतना जगने लगी। इस कारण व्यापारी वर्ग और उद्योग धंधों के मालिक भी इस पथ पर आगे आये। उस समय तक इस वर्ग ने राष्ट्रीय आंदोलन को कोई विशेष सहयोग नहीं दिया था, क्योंकि वे आतंकवादी नीतियों से घबरा जाते थे। गांधीजी के आने के बाद जब इस आंदोलन को अहिंसात्मक रूप मिला तो व्यापार-उद्योग वर्ग वाले लोग इस आंदोलन को खुलकर अपना सहयोग देने लगे। इस वर्ग का उदय न तो अंग्रेज शासक-वर्ग के सहयोग से हुआ था और न ही उनकी पूंजी से। यह वर्ग इंग्लैंड और भारतीयों के बीच बिचौलिया भी नहीं था, बल्कि अपनी ही शक्ति के बल पर बढ़ा था। अंग्रेज उद्योगपतियों के साथ इसका एकमात्र रिश्ता था प्रतिस्पर्धा का।२६

उस समय का पूरा इतिहास साक्षी है कि जीवन के हर क्षेत्र में, विशेषकर, आर्थिक स्थिति में इस वर्ग का अंग्रेज शासक वर्ग के साथ संघर्ष चलता रहा। यह वर्ग पूर्णतः अपने सीमित साधनों के बल पर पनप रहा था। वह किसी भी हालत में अंग्रेजों के अधीन या उनके साथ रहने को तैयार नहीं था। उन्हें आवश्यकता थी केवल नेतृत्व की और नेतृत्व घनश्यामदासजी ने प्रदान किया। इसके कई कारण थे। घनश्यामदासजी ने 'फैडरेशन आफ इंडियन चैंबर आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री' के सभापति-पद से दिये गये

२६. इंडियन कैपिटलिस्ट क्लास एंड इंपीरियलिज्म बिफोर १९४७, बिपिनचंद्र पाल

अपने भाषणों में इसकी विस्तार से चर्चा की है।[२७]

घनश्यामदासजी ने देखा कि अंग्रेजी व्यापार ने भारतीय बाजार पर पूरी तरह कब्जा कर रखा है, क्योंकि अंग्रेजी वस्तुओं पर कर बहुत कम है। फलतः उनकी वस्तुएं सस्ते दामों पर उपलब्ध हैं। भारतीय व्यापारी वर्ग अपनी वस्तुओं पर कर कम करने की मांग हमेशा करता रहा। उनकी एक और मांग थी कि उस कच्चे माल पर निर्यात-कर बढ़ा दिया जाये जो देशी उद्योगों के लिए आवश्यक थे।

अंग्रेजों ने भारत में काफी पूंजी-निवेश कर रखा था। इसका सारा मुनाफा इंग्लैंड को ही प्राप्त होता था। अंग्रेज कहा करते थे कि भारत की आर्थिक स्थिति बिना विदेशी पूंजी-निवेश के कभी नहीं सुधर सकती। भारतीय पूंजीपतियों ने इस बात से उत्पन्न संकट का ठीक-ठीक अनुमान लगाया। इसीलिए किसी भी पूंजीपति ने उस काल में अंग्रेजों के साझे में व्यापार या उद्योग नहीं लगाया। वे नहीं चाहते थे कि महत्त्वपूर्ण उद्योग, जैसे मशीनरी, मशीनी औजार, जहाजरानी, रसायन, उर्वरक तथा खनिज आदि में विदेशी पूंजी लगे। वे अच्छी तरह जानते थे कि उन क्षेत्रों में विदेशी पूंजी के आने का अर्थ था, भारतीय उद्योग का हमेशा पिछड़ी हुई दशा में ही रह जाना।

बैंकों पर अभी तक पूरी तरह से ब्रिटिश पूंजीपतियों का ही अधिकार था। घनश्यामदासजी एक ऐसे बैंक की स्थापना करना चाहते थे, जो भारतीय शेयर होल्डर्स और भारतीय कानून के अधीन हो। साथ ही वे चाहते थे कि भारतीय रुपया स्टर्लिंग पौंड से जुड़ा न रहे, क्योंकि इस तरह स्टर्लिंग पौंड की कीमत असली कीमत से ज्यादा लगायी जाती थी।

जहाजरानी पर भारतीय अधिकार के लिए घनश्यामदासजी के साथ भारतीय पूंजीपति जोरदार मांग कर रहे थे, क्योंकि व्यापार के क्षेत्र में विस्तार के लिए जहाज-रानी पर अधिकार आवश्यक था।

भारतीय पूंजीपति यह भी मांग कर रहे थे कि सरकार उन्हें संरक्षण दे। परा-धीनता की उस परिस्थिति में अंग्रेजों द्वारा मांग हर तरह से अनसुनी कर दी जाती रही। इसी से क्षुब्ध होकर सोलह फरवरी उन्नीस सौ तीस को, 'फिक्की' के अध्यक्षीय भाषण में घनश्यामदासजी ने कहा, "मुझे बहुत दुख के साथ यह कहना पड़ रहा है कि ब्रिटिश सरकार पर हमारी मांगों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। हम उनके इरादे बदलने में असफल रहे, जिसका हमें कोई अंदेशा नहीं था। ऐसी राजनीतिक परिस्थिति

२७. फिक्की, खंड-३

में सरकार हमारे दृष्टिकोण से सहमत हो सकेगी, यह असंभव लग रहा है। ऐसी दशा में हमारी कठिनाइयों के हल का एक ही उपाय है कि हम भारतीय व्यापारी, स्वराज्य के लिए लड़नेवालों के हाथ मजबूत करें। यह महज भावुकता की बात नहीं है। यह हमारी रोजी-रोटी का प्रश्न है।''२८

इस तरह व्यापारी वर्ग बराबर अपने अधिकारों की मांग करते रहे, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। इसीलिए द्वितीय गोलमेज परिषद की बैठक में घनश्यामदासजी ने अपनी उन आर्थिक और व्यावसायिक मांगों को राजनीतिक संदर्भ और राष्ट्रीय अर्थ दे दिया। इस तरह उनकी मांगें भी आजादी की लड़ाई का ही एक अभिन्न अंग बन गयीं।

स्वराज्य के पथ पर राष्ट्रीय आंदोलन में घनश्यामदासजी ने इस प्रकार सहायता की कि एक ओर उन्हें और उनके सहयोगियों को शासक वर्ग से अधिकार मिलते रहें तो दूसरी ओर अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ उनकी लड़ाई भी जारी रहे। गांधीजी के निरंतर संपर्क में रहते हुए उन्होंने यह समझ लिया था कि राष्ट्रीय आंदोलन तब तक चलता रहेगा जब तक स्वराज्य नहीं मिल जायेगा। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश को उन्नत और समृद्ध बनाने के कई सपने उनके मन में थे, इसलिए इन स्वप्नों को साकार करने का अवसर उन्हें मिल गया।

इस आंदोलन में उत्तरोत्तर शक्ति भरने के लिए घनश्यामदासजी और उनके सहयोगी, जैसे सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, विट्ठलदास थैकरसे, बालचंद हीराचंद, जमनालाल बजाज और लाला श्रीराम आदि ने बहुत सूझ-बूझ के साथ एक नीति अपनायी जिसे कहेंगे 'समझौता-दबाव और फिर समझौते की नीति'।

जो अधिकार ब्रिटिश सरकार से उन्हें समझौतों से मिल जाते थे, वे पहले उसका पूरा लाभ उठा लेते थे। फिर सरकार पर दोबारा दबाव डालना शुरू कर देते और फिर समझौते की स्थिति पर आ जाते थे। इस नीति के कारण ब्रिटिश सरकार पर दबाव भी रहता था और साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन को भी बल मिलता रहता था। घनश्यामदासजी जानते थे कि सीधी मुठभेड़ से जनता में अशांति फैल जायेगी। घनश्यामदासजी इसे 'अव्यवस्था' की स्थिति कहा करते थे, जो आर्थिक विकास में बाधक थी।

स्वराज्य के पथ पर यह वह चरण था जब एक ओर 'आर्यसमाजी' और 'स्वराजी' के आपस में मतभेद बढ़ रहे थे, दूसरी ओर अल्पसंख्यकों एवं हरिजनों की समस्या

२८ फिक्की, वाल्यूम III, पृष्ठ २६४-६५



को अंग्रेज बल दे र
के मन में हिंसा औ
व्यक्तित्व पर पूज्य
चौबीस को महात्म

''आपने मुझे
किंतु आपसे दूर हो
रत्ती भर भी शंका
पुरुष संसार की भ
अहिंसा कहा जा स
ही है। किंतु साधार
तो अवश्य हिंसा ह
ऐसा कहा है कि भ
में लोगों को अंतिम
होगा, मेरी बुद्धि में
देते हैं। इस अंतिम
तलवार चलाने को
भय भी होता है कि
सकें और न अपनी
आर्यसमाजी भाइयो
तव से कुछ सयाने
से झगड़ा एक दफे

इस तरह के
जी के काफी पत्र-व्य
है, क्योंकि वह 'अव
ही क्यों न हो, मंग

दबाव-समझौत
अच्छा ताल-मेल बै
स्वरूप देश को कुछ

२९. गांधीजी की छ

को अंग्रेज बल दे रहे थे । ऐसे समय में घनश्यामदासजी जैसे गांधीजी के अनुयायियों के मन में हिंसा और अहिंसा को लेकर अंतर्द्वंद्व छिड़ा हुआ था । घनश्यामदासजी के व्यक्तित्व पर पूज्य मालवीयजी का भी असर था । पिलानी से ग्यारह जून उन्नीस सौ चौबीस को महात्माजी को लिखे पत्र में इस अंतर्द्वंद्व का साक्ष्य उपलब्ध है :

"आपने मुझे अहिंसा का उपदेश दिया और मैंने भी उसे बिना शंका के सुन लिया, किंतु आपसे दूर होने के पश्चात् मुझे समय-समय पर शंकाएं होती हैं । इसमें तो मुझे रत्ती भर भी शंका नहीं कि अहिंसा एक उत्तम ध्येय है । किंतु आप जैसे द्वंद्व-विमुक्त पुरुष संसार की भलाई के लिए किसी मनुष्य का यदि वध कर दें तो क्या इसको अहिंसा कहा जा सकता है···! निष्काम भाव से किया हुआ कर्म एक प्रकार का अकर्म ही है । किंतु साधारण श्रेणी के मनुष्य, जो द्वंद्व से छूटे नहीं, उनके हाथ से किया हुआ वध तो अवश्य हिंसा ही है । किंतु क्या ऐसी हिंसा के लिए विधि नहीं है । आपने तो स्वयं ऐसा कहा है कि भाग जाने की अपेक्षा प्रहार करना कहीं अधिक अच्छा है । इस हालत में लोगों को अंतिम श्रेणी की शिक्षा देकर प्रहार करने से रोकना कहां तक फलदायक होगा, मेरी बुद्धि में नहीं आता । आप मुसलमानों की लाठियों को खाने का उपदेश भी देते हैं । इस अंतिम ध्येय को लोग प्राप्त कर सकते हैं या नहीं, इसमें मुझे शक है । इसलिए तलवार चलाने को क्यों न कहा जाये, यह मेरी समझ में नहीं आता । मुझे तो ऐसा भय भी होता है कि कहीं ऐसा न हो कि लोग न तो उस उच्चतम अहिंसा को प्राप्त कर सकें और न अपनी बहू-बेटियों की रक्षा के लिए तलवार ही चलाएं । हिंदू-सभा एवं आर्यसमाजी भाइयों ने जब से तलवार चलाने के लिए लोगों को उत्तेजित किया है, तब से कुछ सयाने लोग भी वार करने में थोड़ा भय मानते हैं । मैं जानता हूं कि ऐसा होने से झगड़ा एक दफे बढ़ता ही है ।"२९

इस तरह के प्रश्नों और अंतर्द्वंद्वों के निराकरण में गांधीजी के साथ घनश्यामदास-जी के काफी पत्र-व्यवहार हुए । उन्होंने समझ लिया कि अहिंसात्मक नीति ही सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वह 'अव्यवस्था' की स्थिति उत्पन्न होने नहीं देती और प्रगति चाहे धीरे ही क्यों न हो, मंगलकारी ढंग से होती है ।

दबाव-समझौता और फिर दबाव की नीति का भी अहिंसा के सिद्धांतों के साथ अच्छा ताल-मेल बैठता था । इसका ब्रिटिश सरकार पर व्यापक प्रभाव पड़ा । फल-स्वरूप देश को कुछ नये और लाभदायक परिणाम प्राप्त हुए । उन्नीस सौ बाईस में

२९. गांधीजी की छत्रछाया में, पृष्ठ १२३

लिखी हुई कीमत पर कपड़ा मिले, इसकी घोषणा हुई। उन्नीस सौ तीस में कपड़ा आयात पर पच्चीस प्रतिशत कर लगाया गया। उन्नीस सौ तैंतीस में बढ़ाकर उसे पचहत्तर प्रतिशत कर दिया गया। उन्नीस सौ बत्तीस में चीनी उद्योग को भी सुरक्षा प्राप्त हुई। उसी वर्ष रिजर्व बैंक की योजना भी हाथ में ली गयी।

भारतीय व्यापार और उद्योग के प्रति ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण के बदलने का एक और महत्त्वपूर्ण कारण था। देश की आबादी तेजी से बढ़ रही थी। कृषि-भूमि के ऊपर दबाव बढ़ रहा था। कृषि-क्षेत्र में लोग बेकार हो रहे थे। इधर गांधीजी के प्रयत्नों के कारण भारत की ग्रामीण जनता में भी स्वराज्य का उत्साह भर रहा था। कृषि-क्षेत्र के लोग, जिनके पास बहुत कम काम रह गया था, अनायास ही खिंचकर इस आंदोलन के साथ जुड़ने लगे थे।

स्वभावतः भारत के औद्योगिक विकास में अंग्रेज शासक वर्ग की कोई दिलचस्पी नहीं थी। इसके बावजूद शासन हर प्रकार की विस्फोटक स्थिति से बचना चाहता था। जनता राष्ट्रीय आंदोलन-क्षेत्र से दूर रहे, इसीलिए ब्रिटिश शासक वर्ग भारतीय उद्योग-व्यापार की उन्नति में विवशतः रुचि लेने लगा। यह एक ऐसा क्षेत्र था, जिसमें बहुत लोगों को अच्छा रोजगार मिल सकता था और यह रोजगार उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन से अलग रखने में सहायक भी था।

प्रथम विश्वयुद्ध के इस काल में राजनीतिक स्वतंत्रता और आर्थिक विकास, दोनों की मांग जोर पकड़ती चली जा रही थी। घनश्यामदासजी ने इस समय यह अनुभव किया कि आर्थिक विकास के बिना स्वतंत्रता आम आदमी के लिए अर्थहीन हो जायेगी। इस सत्य को आत्मसात कर उन्होंने उसके दूसरे पक्ष को भी समझ लिया कि राजनीतिक स्वाधीनता के बिना न तो देश की कोई आर्थिक प्रगति हो सकती है, न देश समृद्ध हो सकता है। भारतीय व्यापार और उद्योग मंडल (इंडियन चैंबर आफ कामर्स एंड इंडस्ट्रीज) की स्थापना में उनका बहुत बड़ा हाथ था। सन उन्नीस सौ सत्ताईस में इसकी स्थापना हुई।

इस उद्योग मंडल ने भारतीय उद्योगपतियों और व्यापारियों को एक केंद्रीय-मंच प्रदान कर उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को एक निश्चित दिशा में प्रवाहित करने की चेष्टा की। उन दिनों ब्रिटिश सरकार सभी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारतीय हितों के तथाकथित प्रतिनिधित्व के लिए अंग्रेज उद्योगपतियों को ही मनोनीत करती थी। भारतीय व्यापार और उद्योग मंडल ने ब्रिटिश सरकार पर घनश्यामदासजी के प्रयत्नों के कारण अपना प्रभाव डाला कि ऐसे सम्मेलनों में भारतीय हितों का प्रति-

निधित्व भारतीयों को ही करने दिया जाये। साथ ही मंडल ने राज्य का राजस्व, करनीति तथा अन्य आर्थिक नीतियों के निर्माण की ओर भी समय-समय पर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। कुछ सुझाव भी दिये। घनश्यामदासजी अपने अन्य सहयोगियों, जैसे सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, कस्तूरभाई लालचंद आदि के साथ उद्योग मंडल के क्रिया-कलापों में सदा अग्रणी रहे।

सन उन्नीस सौ इक्कीस में बंगाल में प्रशासन का भारतीयकरण करने के लिए नयी कौंसिल का गठन हुआ। उस समय घनश्यामदासजी बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य मनोनीत किये गये। वहां भारतीय वित्त-व्यवस्था तथा संरक्षण-नीति का उन्होंने प्रतिपादन किया। इसी से प्रभावित होकर उन दिनों अंग्रेज सरकार ने उनको सम्मान देने के लिए 'नाइटहुड' या 'सर' की उपाधि देनी चाही, परंतु जिस व्यक्ति के मन में राष्ट्रीयता इतने गहरे बैठी हुई थी, वह ब्रिटिश सरकार की दी हुई उपाधि कैसे स्वीकार करता ? उनके इस निर्णय से गांधीजी प्रभावित हुए। उन्होंने यह बात घनश्यामदासजी से स्पष्ट भी कर दी। तभी से गांधीजी घनश्यामदासजी को अपना सहयोगी मानने लगे।

सन उन्नीस सौ तेईस में विट्ठलभाई पटेल, केंद्रीय सभा (लेजिस्लेटिव असेंबली) के स्पीकर थे। उन दिनों लाला लाजपतराय और पंडित मदनमोहन मालवीय ने स्वराज्य दल बनाकर पंडित मोतीलाल नेहरू का साथ दिया। कुछ समय बाद मोतीलाल नेहरू से किन्हीं प्रश्नों पर मतभेद होने के कारण लालाजी और मालवीयजी ने स्वतंत्र राष्ट्रीय दल का गठन किया। घनश्यामदासजी को भी उन्होंने उस दल का सदस्य बनाया। आगे चलकर इस दल ने बनारस-गोरखपुर निर्वाचन क्षेत्र से काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान भगवानदासजी के सुपुत्र श्रीप्रकाशजी के विरुद्ध घनश्यामदासजी को चुनाव लड़वाया। चुनाव में घनश्यामदासजी विजयी हुए।

यहां यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि यह चुनाव दो विनम्र और शीलवान व्यक्तियों के बीच था। परिणाम यह हुआ कि यद्यपि श्रीप्रकाशजी चुनाव में पराजित हो गये, लेकिन उनके घनश्यामदासजी के साथ वैसे ही मधुर संबंध बने रहे। वास्तव में यह मधुर संबंध समय के साथ और भी बढ़ते गये और अपनी मृत्यु के अंत तक वे न केवल घनश्यामदासजी के बल्कि माधवप्रसादजी और कृष्णकुमारजी के भी अभिन्न मित्र बने रहे।

उस समय राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रहने पर भी घनश्यामदासजी एक दूसरे स्तर पर भी कार्यरत थे। वे हमेशा राष्ट्रीय पूंजी की खोज और उसके निर्माण में लगे

रहते थे। राजनीति के क्षेत्र में ऐसी दृष्टि रहने के कारण ही उन्हें विजय प्राप्त हुई। एक संपत्ति गांधीजी के रूप में उन्हें मिल चुकी थी। वे जान गये थे कि गांधीजी एक राष्ट्रीय संपत्ति हैं, जिनके हाथों में 'अर्थ' आते ही वस्तुतः चमत्कार हो सकता है। इसीलिए उन्होंने अपना ध्यान देश की समृद्धि की ओर लगाया, ताकि राष्ट्रीय संपत्ति क्रियाशील और अर्थवान हो।

घनश्यामदासजी गांधीजी के निकट संपर्क में आने से पहले आतंकवादियों से घिरे थे। इससे वे एक बार विपत्ति में फंस चुके थे। उसके कारण उन्हें तीन महीने तक छिपकर रहना पड़ा था। ऐसी मानसिक पृष्ठभूमि में उनका गांधीजी की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। इसका प्रारंभ उन्होंने आलोचक के रूप में किया और अंत हुआ अनन्य भक्ति में। फिर भी यह कहना कठिन होगा कि वे सब बातों में गांधीजी से सहमत थे। सच तो यह है कि अब तक उनका विवेक इतना पुष्ट हो चुका था कि अधिकांश मामलों में घनश्यामदास बिड़ला अपने स्वतंत्र विचार रखने लगे थे। इन्हीं कारणों से वे गांधीजी के भी प्रिय हुए।

स्वराज्य के पथ पर कैसे अग्रसर हुआ जाये इसकी रूपरेखा उनके सामने स्पष्ट हो गयी। जनवरी उन्नीस सौ इक्कीस में घनश्यामदास बिड़ला ने महाराजा कासिम बाजार और सर सुरेंद्रनाथ बनर्जी के साथ मिलकर कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले एक अंग्रेजी दैनिक 'द बंगाली' को खरीद लिया। इसके अतिरिक्त 'न्यू एम्पायर' नामक एक अंग्रेजी दैनिक पत्र को भी अपने स्वत्वाधिकार में कर लिया। समाचार-पत्रों पर उन दिनों बेतरह अंकुश लगे थे। उन्होंने इन दोनों पत्रों को राष्ट्रीय विचारधारा का मुख-पत्र बनाया। बिड़लाजी ने अपनी देख-रेख में नये प्रबंध के अंतर्गत प्रकाशित पत्र के उन्नीस जनवरी उन्नीस सौ बाईस के संपादकीय में एक नयी राष्ट्रीय नीति की घोषणा इन शब्दों में की, "न्यायोचित और सही बात के लिए अड़कर खड़े होना, 'बंगाली' का ठीक और शुभ घड़ी में खड़े होना, और सही ईमानदार भावना के साथ खड़े होना।"[३०] यही हमारा संकल्प है। सन बाईस में राष्ट्रीय पूंजी के निर्माण और उसकी प्रतिष्ठा की दिशा में घनश्यामदास बिड़ला ने पहला कदम उठाया। कलकत्ता प्रवासी गोवर्धनदास पोद्दार के पुत्र केशोराम से उनके आग्रह पर उन्होंने गार्डनरीच कलकत्ता स्थित केशोराम काटन मिल खरीद ली। जीवन के उस काल तक आते-आते स्वराज्य के पथ पर अर्थ की महत्ता को घनश्यामदास बिड़ला ने ठीक-ठीक आंक लिया। बिना इस प्रकार सबल हुए स्वराज्य की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।

---

३० देशभक्त उद्योग प्रवर्तक घनश्यामदास बिड़ला, पृष्ठ २५



दिल्ली की पुरान
घनश्यामदासजी ने य
वह माता-पिता से मि
मालवीयजी ने उन्हें
राजा-महाराजाओं क
की घोषणा की जाने
वे उनके परिवार के
स्नेह करते थे।

उस समारोह में
महाराजा की तरह पां
बिड़ला सोचने लगे,
से पूछे कैसे दे दें? त
समझें, वैसा करें।" उ
और घनश्यामदास बि
स्वीकार किया है, त
घनश्यामदास बिड़ला
से घनश्यामदासजी का
की ओर से यह आग्र
इसी को लेकर दोनों में
पत्र में घनश्यामदासजी
तैयार हैं। इसके उत्त

प्रिय मित्र,

आपके तीस सित
के लिए आपके जो वि
ग्वालियर आना हमारे
नहीं करेंगे। उम्मीद

दिल्ली की पुरानी मिल के लिए बाहर से बढ़िया नयी मशीनें मंगवायी जाएं, घनश्यामदासजी ने यह निर्णय लिया। इसके लिए उन्होंने आर्डर भी दे डाला। तभी वह माता-पिता से मिलने बनारस गये। यह बात अगस्त उन्नीस सौ बीस की है। वहां मालवीयजी ने उन्हें हिंदू विश्वविद्यालय के समारोह में आमंत्रित किया। उसमें राजा-महाराजाओं की ओर से विश्वविद्यालय के निर्माण-विस्तार के लिए अनुदानों की घोषणा की जाने वाली थी। मालवीयजी बलदेवदासजी के विशेष मित्र थे। वे उनके परिवार के ही एक अंग बन गये थे। घनश्यामदासजी से मालवीयजी पुत्रवत स्नेह करते थे।

उस समारोह में उन्होंने घनश्यामदासजी से पूछा, क्या आप लोग भी ग्वालियर महाराजा की तरह पांच लाख रुपये के अनुदान की घोषणा कर सकते हैं? घनश्यामदास बिड़ला सोचने लगे, इतनी बड़ी राशि बगैर काकोजी और बड़े भाई जुगलकिशोरजी से पूछे कैसे दे दें? लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने कहा, "पंडितजी, आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।" जब मालवीयजी ने मंच से यह घोषणा की कि महाराजा सिंधिया और घनश्यामदास बिड़ला ने हिंदू विश्वविद्यालय के लिए पांच-पांच लाख रुपये देना स्वीकार किया है, तब वहां उपस्थित बड़े-बड़े लोगों को यह जिज्ञासा हुई कि यह घनश्यामदास बिड़ला हैं कौन? इसी जिज्ञासा के फलस्वरूप ग्वालियर के महाराजा से घनश्यामदासजी का परिचय बढ़ा और दोनों में मैत्री हो गयी। ग्वालियर महाराजा की ओर से यह आग्रह हुआ कि बिड़ला-बंधु ग्वालियर रियासत में उद्योग लगाएं। इसी को लेकर दोनों में पत्र-व्यवहार भी हुआ। तीस सितंबर उन्नीस सौ बीस के अपने पत्र में घनश्यामदासजी ने महाराजा को लिखा कि वह ग्वालियर में मिल लगाने को तैयार हैं। इसके उत्तर में महाराजा ने यह पत्र दिया :

माधो विलास, शिवपुरी
७ अक्तूबर १९२०

प्रिय मित्र,

आपके तीस सितंबर के पत्र के लिए आंतरिक धन्यवाद। ग्वालियर में मिल लगाने के लिए आपके जो विचार हैं, उनके लिए मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ हूं। आपका ग्वालियर आना हमारे लिए वरदानस्वरूप होगा। मैं आशा करता हूं, आप मुझे निराश नहीं करेंगे। उम्मीद है, आप सानन्द हैं।

आपका
मा० सिंधिया

इसके लिए ग्वालियर राज्य की ओर से सुविधाएं देने का प्रस्ताव भी रखा गया। घनश्यामदासजी को यह प्रस्ताव बहुत आकर्षक लगा और उन्होंने तत्काल यह निर्णय कर लिया कि दिल्ली की मिल के लिए जो नयी मशीनें आ रही हैं, उन्हें ही ग्वालियर की मिल में लगा दिया जाये। इसकी सूचना देते हुए घनश्यामदासजी ने महाराजा को सत्रह नवंबर को मिल के नक्शे के साथ पत्र लिखा। उसके उत्तर में उन्नीस नवंबर उन्नीस सौ बीस को अपनी कृतज्ञता जताते हुए महाराजा ने यह पत्र दिया :

"आपका खत तारीख सत्रह का मिला। पढ़कर निहायत खुशी हुई। जैसा कि आपने इस वक्त मेरे साथ बरताव किया उसका मैं बड़ा ममनून और मशकूर हूं। अब परमेशुर से यही मांगना है कि जो आपने नमूना करके बताया उस नमूने की ओर लोग देखकर ग्वालियर दौड़ आएं और इस रियासत को सर-सब्ज और आबाद करें, जिसकी निस्बत सिर्फ मैं ही नहीं बल्के कुल रियासत शुक्रगुजार और ममनून होगी···।"

इस क्रिया-कलाप और नव-निर्माण के पीछे घनश्यामदासजी के मन में दो भावनाएं काम कर रही थीं—देश समृद्ध बने और देश में रोजगारी बढ़े।

देश का जो सपना उनकी आंखों में था, उसमें देश खुशहाल, आत्मनिर्भर और समृद्ध था। गांधीजी के चरखे का विरोध उन्होंने कभी नहीं किया, पर वे जानते थे, चरखा आज के युग की आवश्यकताएं पूरी नहीं कर सकता। इसलिए उद्योग लगाना और स्वदेशी कपड़ा बनाना उनका लक्ष्य रहा।

हिंदू विश्वविद्यालय के समारोह में अनुदान देने की बात पर घनश्यामदासजी थोड़ी देर हिचके थे। यह हिचक और झिझक उनके स्वभाव के विरुद्ध थी, जबकि वे हमेशा चाहते थे कि परोपकार के कार्य में न हिचकें और न झिझकें।

इस तरह सन इक्कीस तक घनश्यामदासजी मारवाड़ी समाज और व्यापारी बिरादरी के एक प्रवक्ता और नेता के रूप में मान्य हो चले थे। इसीलिए सन इक्कीस-बाईस में जब भारत सरकार ने राजस्व नीति के बारे में सुझाव देने के लिए 'फिस्कल कमीशन' बैठाया, तब सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास जैसे अन्य विशिष्ट व्यक्तियों के साथ घनश्यामदास बिड़ला को उसकी सदस्यता प्रदान की गयी।

उस समय तक लोगों ने घनश्यामदासजी का एक दूसरा पक्ष भी देखा। वे अक्सर गांधीजी के साथ लोगों को दिखने लगे थे। इसी कारण जब छब्बीस मार्च उन्नीस सौ इक्कीस को कलकत्ता में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का ग्यारहवां अधिवेशन हुआ, तब स्वागताध्यक्ष का पद घनश्यामदासजी को ही सौंपा गया।

सत्ताईस साल की आयु होते-होते घनश्यामदासजी की समृद्धि की बुनियादें जड़ पकड़ चुकी थीं। अब वह उद्योग समुदाय और सरकार दोनों की ही नजरों में अपनी बुद्धिमत्ता और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध हो चुके थे। उनका दृष्टिकोण एक व्यावहारिक देशभक्त का था। वह ठोस काम में विश्वास करते थे। व्यर्थ की नारेबाजी और अपनी वीरता के प्रदर्शन में उस संकल्प-पुरुष का विश्वास नहीं था।

घनश्यामदासजी ने अपने निजी स्वार्थ के लिए कभी भी देश-हित की उपेक्षा नहीं की। उन्हें पूरी तरह से इस बात का ज्ञान था कि भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन तथा भारत की समृद्धि भारतीय औद्योगिक उन्नति के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति ही स्वतंत्रता आंदोलन को बल दे सकती है। इस कारण बहुत पहले से ही वह औद्योगिक प्रतिष्ठानों को शक्तिशाली बनाने की चेष्टा में लग गये थे, ताकि स्वतंत्रता आंदोलन को आर्थिक बल मिल सके।

# श्रीमद्भागवत की बांसुरी

गांधीजी के संपर्क में आकर घनश्यामदासजी ने एक नया जीवन-मूल्य पाया—जब आप किसी के भी विरुद्ध होते हैं तो आपका भविष्य खुला नहीं रह जाता। आप जब किसी जीवन-मूल्य या जीवन-आदर्श के पक्ष में होते हैं तभी आपका भविष्य खुलता है। ठीक इसी अर्थ में घनश्यामदासजी अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं थे, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता के पक्ष में थे। संकल्प के साथ किसी चीज के पक्ष में होने का मतलब है, जीवन और समाज के प्रति विधायक हो जाना।

स्वराज्य के पथ पर चलकर घनश्यामदासजी ने यह देख लिया कि स्वतंत्रता दो तरह की होती है—एक, किसी से छुटकारा या मुक्ति, दूसरी, किसी भी बंधन से आजादी। किसी चीज, जीवन-मूल्य और आदर्श के लिए स्वतंत्रता का मतलब है—सर्जनात्मक स्वतंत्रता। इसलिए स्वतंत्रता की चेतना उनके लिए एक ऊर्जा बन गयी। इसी ऊर्जा के फलस्वरूप घनश्यामदासजी जिस दिशा में चले, वे सफल हुए क्योंकि उनमें कोई लोलुपता नहीं थी।

बिड़ला-परिवार कलकत्ता की जकरिया स्ट्रीट में ढाई वर्ष रहा। यह मकान सन उन्नीस सौ सत्रह में बना था। उसके बाद वे रैनी पार्क में चले गये। यह मकान उन्नीस सौ बीस में बना था। घनश्यामदासजी की पत्नी महादेवीजी पिलानी से रैनी पार्क वाले मकान में आयीं। घनश्यामदासजी के तीसरे बेटे बसंतकुमारजी का जन्म यहीं सन उन्नीस सौ इक्कीस में हुआ। उस दिन सोलह फरवरी थी और जन्म का समय था ठीक मध्यरात्रि। बसंतकुमारजी का रंग गोरा था। सारे परिवार को उनके जन्म से अत्यंत खुशी हुई। लेकिन महादेवीजी का स्वास्थ्य तब बहुत अच्छा नहीं था। घनश्यामदासजी इससे चिंतित थे। वे अपना ध्यान भी पत्नी की ओर पूरी तरह नहीं दे पा रहे थे।

एक दिन महादेवीजी ने कहा, 'इन दिनों आप बहुत काम कर रहे हैं। मैंने आपको कभी सोते नहीं पाया।'

घनश्यामदासजी ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, 'मैंने गांधीजी को भी कभी सोते नहीं देखा।'

महादेवीजी निरुत्तर हो गयीं। घनश्यामदासजी के लिए यह समय परिश्रम और कई तरह की चिंताओं का था। जो काम उन्हें करना है, उससे वे पीछे हटने वाले नहीं थे, चाहे सारी उमर जागते बितानी पड़े। तब भी उनका दांपत्य जीवन अत्यंत सुखी और दूसरों के लिए अनुकरणीय था।

इसी बीच जुलाई उन्नीस सौ तेईस में घनश्यामदासजी की दूसरी बेटी अनुसूया का जन्म हुआ। घनश्यामदासजी अधिक-से-अधिक पत्नी के साथ रहने का जतन करते। वह कभी अकेली, उदास न महसूस करे, इसकी चिंता उन्हें रहती।

उन दिनों बिड़ला पार्क में नयी कोठी बन रही थी। एक दिन सुबह टहलने के बहाने पति-पत्नी उसे देखने गये थे। लान पर टहलते हुए पति ने अचानक रुककर पत्नी की ओर देखते हुए कहा, 'गांधीजी के जीवन की एकाग्रता देखकर मैं आश्चर्यचकित रह जाता हूं और उनकी ईश्वर-श्रद्धा देखकर भी।'

भोली-भाली पत्नी के मुख से निकला, 'क्या गांधीजी को कभी गुस्सा नहीं आता? वह पूजा कब करते हैं?'

पति ने समझाया, 'मेरे लिए यही बड़ी पहेली हो गयी है कि कोई बाहरी चिह्न न होते हुए भी वे बहुत बड़े भक्त हैं और एक योगी हैं। उनके जीवन में कई ऐसी बातें हैं जो मुझे पहेली-जैसी लगती हैं।'

पत्नी ने लजाकर इतना ही कहा, 'पहेली आप नहीं हैं?'

उन्नीस सौ तेईस में बिड़ला पार्क की कोठी तैयार हुई और रैनी पार्क से परिवार वहां चला गया। नया घर महादेवीजी को रास नहीं आया। यहां आते ही उनका कम-जोर शरीर और अधिक दुर्बल हो गया। शरीर की उस दुर्बल अवस्था में वह पांचवीं बार संतानसंभवा हुईं। उन्हें हल्का बुखार रहने लगा। थोड़ी-थोड़ी खांसी भी आने लगी। वही तपेदिक जो घनश्यामदासजी के दादोजी और पहली पत्नी को उनसे अलग कर गयी थी, उसी के पूरे लक्षण महादेवीजी में प्रकट होने लगे। पूरे परिवार में डर समा गया, क्योंकि गर्भावस्था तपेदिक की रोगिणी के लिए घातक सिद्ध होती है। फिर भी घनश्यामदासजी ने, अपने स्वभाव के अनुकूल, न आशा छोड़ी और न हिम्मत। जितनी

भी चिकित्सा-सुविधाएं
इकट्ठा कर लिया। महा
को पांचवीं और अंतिम
व्यावसायिक व्यस्तताओं
देखभाल में कोई कसर

एक शाम जब वे
चिंता प्रकट की। उसके
को आसन्न मृत्यु का भा
आत्मवान्।'

पत्नी ने अपनी ब

घनश्यामदासजी ने
को अर्जुन-जैसे गृहस्थ
सिखाती है, जो गृहस्थ

बहन जयदेवीजी
थीं। वह रोज ही उनसे
हुए भी कि इस रोग का
में किसी तरह की कोई
दी तो सबसे पहले महा
रांची का हवा-पानी
एक ही साल पहले बिड़
के साथ बहुत सुखद स्
जाकर महादेवीजी प्रस

रांची के प्रवासका
लक्ष्मीनिवास बिड़ला प
महादेवीजी की सेवा
रिश्ते में कोई दुराव
नहीं रखा। उनके स्वभ
घनश्यामदासजी से उन
के इस पक्ष ने घनश्याम
*विभीषिका* का ही रूप

भी चिकित्सा-सुविधाएं उपलब्ध थीं, सबका सब उन्होंने पत्नी के इलाज के लिए इकट्ठा कर लिया। महादेवीजी के रुग्ण शरीर ने अठारह सितंबर उन्नीस सौ चौबीस को पांचवीं और अंतिम संतान शांति को जन्म दिया। अपनी तमाम राजनीतिक और व्यावसायिक व्यस्तताओं के बावजूद घनश्यामदासजी ने बीमार पत्नी की व्यक्तिगत देखभाल में कोई कसर नहीं उठा रखी।

एक शाम जब वे पत्नी के सामने आकर बैठे तो पत्नी ने बच्चों के विषय में चिंता प्रकट की। उसके उदास मुख को देखकर घनश्यामदासजी समझ गये कि पत्नी को आसन्न मृत्यु का भान हो गया है। उनके मुंह से अनायास निकला : 'निर्योग क्षेम आत्मवान्।'

पत्नी ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से कौतूहल भरकर उनकी ओर देखा।

घनश्यामदासजी ने समझाया—गीता में भगवान कृष्ण ने योग क्षेम के इस धर्म को अर्जुन-जैसे गृहस्थ व्यक्ति को बताया है। उन्होंने कहा, गीता संन्यास नहीं कर्म सिखाती है, जो गृहस्थ का धर्म है। पत्नी की उन उदास आंखों में सहसा चमक आ गयी।

बहन जयदेवीजी कलकत्ता में ही रहती थीं, इस कारण वह भाभी के बहुत निकट थीं। वह रोज ही उनसे मिलने आया करती थीं। उनका कहना है कि यह जानते हुए भी कि इस रोग का कोई इलाज नहीं है, घनश्यामदासजी ने पत्नी की सेवा-सुश्रूषा में किसी तरह की कोई कमी नहीं होने दी। जब डाक्टरों ने हवा बदलने की सलाह दी तो सबसे पहले महादेवीजी को रांची ले जाया गया। इसके पीछे दो कारण थे। रांची का हवा-पानी उन दिनों बहुत शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद माना जाता था। दूसरे, एक ही साल पहले बिड़ला-परिवार छुट्टियां मनाने के लिए वहां गया था। इस जगह के साथ बहुत सुखद स्मृतियां जुड़ी थीं। घनश्यामदासजी ने यही सोचा, ऐसी जगह जाकर महादेवीजी प्रसन्न रहेंगी और उनके स्वास्थ्य में सुधार होगा।

रांची के प्रवासकाल में महादेवीजी की देख-रेख का भार उनके बड़े पुत्र लक्ष्मीनिवास बिड़ला पर था। लक्ष्मीनिवासजी ने बहुत लगन और निष्ठा के साथ महादेवीजी की सेवा की, यद्यपि वह उनकी सगी मां नहीं थीं। माता-पुत्र के इस रिश्ते में कोई दुराव नहीं था। महादेवीजी ने कभी भी अपने और सौतेले का भेद नहीं रखा। उनके स्वभाव की इसी उदारता को देखकर लक्ष्मीनिवासजी की नानी ने घनश्यामदासजी से उन्हीं के साथ विवाह करने का आग्रह किया था। उनके व्यक्तित्व के इस पक्ष ने घनश्यामदासजी पर भी प्रभाव डाला था। सौतेली मां को सदा एक विभीषिका का ही रूप दिया जाता रहा है, लेकिन महादेवीजी तो साक्षात वत्सला मां

थीं। तभी लक्ष्मीनिवासजी जैसे पुत्र से उन्हें ऐसी सेवा और ऐसा प्रेम मिला, जो अपने सगे पुत्रों से भी नहीं मिलता ।

रांची का प्रवास और लक्ष्मीनिवासजी की सेवा दोनों में से किसी का कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। महादेवीजी को वापस कलकत्ता ले आया गया। उन दिनों इस रोग का इलाज तो था नहीं। डाक्टरों ने सलाह दी, अवकी कोई हिल स्टेशन ले जाइए। सोलन ले जाना निश्चित हुआ। रास्ते में घनश्यामदासजी बनारस में रुक गये। उन्हें यह मालूम तो था ही कि पत्नी अब थोड़े दिनों की मेहमान हैं, इसलिए माता-पिता से मिला देना, उन्हें उचित लगा। घनश्यामदासजी के पिता बलदेवदासजी तथा माता योगेश्वरी देवी ने स्टेशन पर ही आकर उनसे भेंट की। माता-पिता ने चंद्रकला और कृष्णकुमार को बनारस में ही रोक लिया, ताकि महादेवीजी को बच्चों की चिंता न करनी पड़े। महादेवीजी भी बच्चों को छोड़ना नहीं चाहती थीं, लेकिन श्वसुर की आज्ञा को भला कैसे तोड़ सकती थीं ? कुछ दिनों बाद बच्चे फिर मां के पास आ गये।

सोलन के बाद वे शिमला गयीं, लेकिन स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला गया। भारी व्यस्तता के बावजूद घनश्यामदासजी अपना कारोबार और राजनीतिक जिम्मेदारियां छोड़कर पत्नी के पास आते रहे। वैसे सारी जिम्मेदारी चौदहवर्षीय लक्ष्मीनिवासजी के कंधों पर थी।

उन दिनों घनश्यामदासजी के सेक्रेटरी थे पारसनाथजी। वे भी सबके साथ सोलन आये थे। बच्चों की देखभाल, उनकी पढ़ाई-लिखाई का ध्यान रखना इन्हीं के जिम्मे सौंपा गया था। लक्ष्मीनिवासजी उस समय हेयर स्कूल कलकत्ता की अपनी पढ़ाई छोड़कर मां की सेवा में आये थे। पिता ने पुत्र के लिए यह तय किया था कि वह स्कूल छोड़कर प्राइवेट विद्यार्थी की हैसियत से मैट्रिक की परीक्षा दे। लक्ष्मीनिवासजी ने यह चुनौती स्वीकार कर ली थी। पिताजी ने यह तय किया कि घर पर पढ़ाने वाला और भी तेज होना चाहिए। पिताजी के 'न्यू एम्पायर' अखबार में पारसनाथसिंह सहायक संपादक थे। लक्ष्मीनिवासजी की पढ़ाई का काम उन्हें ही सौंपा गया।

सोलन के बारे में लक्ष्मीनिवासजी लिखते हैं, "सोलन ··· साथ में पारसनाथजी भी थे। सुबह-शाम, सात-आठ मील का चक्कर लगाते, दिन में कुछ पढ़ते-लिखते, रात को जब खा-पीकर हम लोग बैठते, तो पारसनाथजी 'जगतसेठ' और 'महबूब अली' की बातें सुनाते।"३१

३१. बीते दिन, वे लोग, पृष्ठ ३०-३१

क्रमशः महादेवीजी का स्वास्थ्य बिलकुल ही लड़खड़ाने लगा। उन्हें तब दिल्ली लाया गया, ताकि अधिक-से-अधिक आराम मिल सके और बच्चे भी उस भयंकर छूत की बीमारी से दूर रह सकें। ओखला के मकान के बाहर एक तंबू लगा दिया गया। वहां पंडित उदित मिश्र नाम के एक मास्टर कृष्णकुमारजी और बसंतकुमारजी को दिन भर पढ़ाया-लिखाया करते थे। दिन में एक बार थोड़ी देर के लिए बच्चों को मां के पास जाने दिया जाता था।

सुबह-शाम तुलसी, सूरदास, मीराबाई इत्यादि के भजन गाये जाते थे। घनश्यामदासजी संगीताचार्य विष्णु दिगंबरजी का बहुत आदर करते थे। तीन-चार महीनों में विष्णु दिगंबरजी को भजन सुनाने के लिए घनश्यामदासजी प्रायः आमंत्रित करते थे। ओखला में इन्हीं के एक प्रमुख शिष्य डुंडीराज को नियुक्त कर दिया था और वे सुबह-शाम भजन गाया करते थे। सब लोग तन्मयता से सुनते। इस प्रकार शांति का वातावरण था।

घनश्यामदासजी ज्यादा-से-ज्यादा समय तक पत्नी के पास रहते। पत्नी की दशा बिगड़ती जा रही थी। उनकी जिंदगी जैसे एक धागे से लटक रही थी। लेकिन जीवन-मृत्यु की यह लड़ाई, महादेवीजी आश्चर्यजनक शक्ति से लड़ रही थीं। उस संकट की घड़ी में घनश्यामदासजी पत्नी के समीप रहते हुए 'अपने आपको पहचान' रहे थे। उनका कहना था—'एक-दूसरे को पहचानो।'३२

अगले दिन संध्या समय पत्नी को देखकर घनश्यामदासजी मृत्यु-भय से कांप उठे। उन्होंने स्वयं से प्रश्न किया, 'यह भय क्यों ?'

गांधीजी का बंबई से लिखा तेरह अप्रैल उन्नीस सौ पच्चीस का पत्र उनके मानस पटल पर खुल गया, "भाई घनश्यामदासजी, ···तो आपको धर्मपत्नी की मृत्यु का भय क्यों रहता है ? विकारों का वश करना, मेरे अनुभव में कठिन तो है ही, परंतु वही हमारा कर्त्तव्य है। इस कलिकाल में मैं राम-नाम को बहुत बड़ी वस्तु समझता हूं··· विषयासक्त संसार में चित्त-वृत्ति का निरोध कैसे हो, ऐसा प्रश्न होता ही रहता है। ···निर्विकार बनना शक्य है, इसमें मुझे कोई शक नहीं ··· प्रातःकाल उठते ही राम-नाम लेना और राम से कहना, 'मुझे निर्विकार कर', मनुष्य को अवश्य निर्विकार करता है।"३३

---

३२. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १२०

३३. गांधीजी की छत्रछाया में, पृष्ठ १३१-१३२

गांधीजी कहीं भी होते, बराबर उनका पत्र घनश्यामदासजी के पास आता रहता और उसमें बराबर गांधीजी पूछते रहते, "आपकी धर्मपत्नी को कुछ आराम हुआ ?"

पत्नी को बिलकुल आराम नहीं मिल रहा था। दिनों-दिन हालत बिगड़ती जा रही थी। एक दिन विह्वल घनश्यामदासजी ने गांधीजी का दिया हुआ वह चरखा देखा तो उन्हें गांधीजी का वह वाक्य याद आया, "जब कभी विह्वल हो तो अपने भीतर राम-नाम कहते हुए चरखे को चलाना।"

घनश्यामदासजी के हृदय में राम-नाम तो था, पर वह उस क्षण चरखा नहीं चला सके। सहसा उन्हें श्रीमद्भागवत का एक प्रसंग याद आया, जिसमें श्रीकृष्ण ने गोपियों को संबोधित करते हुए कहा था, "योग और वियोग यह सब ईश्वर की इच्छा के अधीन है। ईश्वर ही सुख और शांति का कारण है। बाह्य शरीर मिथ्या है। असल में तो इसके भीतर जो आत्मा है, वही सत्य और अनित्य है।"[३४]

इस चिंतन से घनश्यामदासजी अचानक सम्हल उठे। तभी पत्नी के मुंह से सुनायी पड़ा, 'सुनिए' !

'बोलो, क्या है ?'

उनके मुंह से गांधीजी का नाम सुनायी पड़ा।

पत्नी के स्वास्थ्य के संबंध में गांधीजी से घनश्यामदासजी का पत्र-व्यवहार होता रहता था। आठ मार्च उन्नीस सौ पच्चीस को गांधीजी ने घनश्यामदासजी को लिखा, "आपकी धर्मपत्नी के बारे में आप प्रतिज्ञा ले सकते हैं कि यदि उनका स्वर्गवास होय तो आप शुद्ध एक पत्नीव्रत का सर्वथा पालन करेंगे। यदि ऐसी प्रतिज्ञा लेने की इच्छा और शक्ति हो तो मेरी सलाह है कि आप अपनी धर्मपत्नी के समक्ष उस प्रतिज्ञा को ले लें।"[३५]

मृत्यु शैया पर पड़ी पत्नी के समक्ष ऐसी कोई शपथ लेने का प्रश्न ही नहीं उठता था, क्योंकि रांची में अपनी बीमार पत्नी के सान्निध्य में ही वह मन बना चुके थे कि अब सदा के लिए वह स्वयं ही अपने बच्चों के मां-बाप हैं। वह तभी से हर बच्चे को बता चुके थे, 'किसी चीज की भी जरूरत हो तो मुझसे ही कहो। मैं न होऊं तो लक्ष्मीनिवास से कहो, मगर मां को आराम करने दो।'

महादेवीजी एक मरणासन्न रोगिणी थीं। रोग से लड़ते-लड़ते उनका शरीर जैसे

३४. कृष्ण वंदे जगद्गुरुम्, पृष्ठ १८
३५. बापू की प्रेम प्रसादी, भाग-१

समाप्त हो चुका था । केवल सांस वाकी थी। महादेवीजी ने जैसे जीवन मे विदाई ले ली थी । आगे की लंबी यात्रा अभी शेष है, ऐसा मानकर वे राम-राम करते अपने अंतिम क्षण काट रही थीं। लेकिन अभी गांधीजी से अंतिम आशीर्वाद लेना वाकी था ।

इस वार महादेवीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा,"क्या गांधीजी के दर्शन हो सकते हैं ? जाते-जाते अंत में उनसे मिल लूं ।"

घनश्यामदासजी एक क्षण के लिए चिंतित हो गये कि गांधीजी तो दिल्ली के पास भी नहीं थे, इसलिए उनका दर्शन असंभव था । तव भी पत्नी की इस इच्छा पर पानी फेरना उन्होंने उचित नहीं समझा ।

घनश्यामदासजी के मुंह से निकला, "देखेंगे, तुम्हारी इच्छा शायद ईश्वर पूरी कर देगा ।"

दो दिन वाद ही घनश्यामदासजी को सूचना मिली कि गांधीजी कानपुर से दिल्ली होते हुए अहमदावाद जा रहे हैं । उन्होंने रेलवे टाइम टेवल देखा । वह गाड़ी सुवह चार वजे दिल्ली पहुंचती थी और अहमदावाद की गाड़ी पांच वजे छूट जाती थी । केवल घंटे-भर की फुरसत थी और महादेवीजी दिल्ली से दस मील के फासले पर मृत्यु शैया पर पड़ी थीं । घंटे-भर में रोगी से मिलना और स्टेशन लौटकर अहमदाबाद की गाड़ी पकड़ना, सहज नहीं था ।

जाड़े का मौसम था । वर्फीली हवाएं तेजी से चल रही थीं । घनश्यामदासजी की खुली गाड़ी में गांधीजी को इतने सबेरे इस हालत में सफर कराना भी कठिन कार्य था । गांधीजी आ रहे हैं, इसका महादेवीजी को तो पता भी नहीं था । हां, उनकी तीव्र इच्छा गांधीजी के दर्शन करने की अवश्य थी ।

गांधीजी गाड़ी से उतरे ।

घनश्यामदासजी ने दबी जवान में कहा, "आज आप ठहर नहीं सकते ?"

गांधीजी ने कहा, "ठहरना मुश्किल है ।"

घनश्यामदासजी हताश हो गये । मृत्यु शैया पर पड़े प्राणी को कितनी निराशा होगी, वे यह जानते थे ।

गांधीजी ने घनश्यामदासजी को देखते हुए पूछा, "ठहरने की क्यों कहते हो ?"

घनश्यामदासजी ने बापू को कारण बताया ।

गांधीजी ने कहा, "चलो, अभी चलो ।"

घनश्यामदासजी ने कहा, "पर मैं आपको ऐसी तेज हवा में सुबह के समय मोटर में बैठाकर कैसे ले जा सकता हूं ?"

गांधीजी ने कहा, "इसकी चिंता छोड़ो, मुझे मोटर में बैठाओ । समय खोने से क्या लाभ ? चलो-चलो ···।"

गांधीजी को घनश्यामदासजी ने मोटर में बैठाया। जाड़े का मौसम और ऊपर से बर्फीली हवाएं। ब्रह्म-मुहूर्त की शांति सर्वत्र विद्यमान थी। मृत्यु शैया पर पड़ी महादेवीजी राम-राम जप रही थीं।

गांधीजी उनकी चारपाई के पास पहुंचे।

घनश्यामदासजी ने कहा, "देखो, गांधीजी आये हैं।"

महादेवीजी ने पलकें उठाकर देखा, पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। हक्की-बक्की-सी रह गयीं वे। उन्होंने बैठने की कोशिश की, पर वह शक्ति कहां थी ? उनकी आंखों से आंसू की दो बूंदें बह निकलीं।

घनश्यामदासजी ने सोचा——मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन कर दिया।

महादेवीजी की आत्मा को कितना सुख मिला, यह उनकी आंखें बता रही थीं। उस समय घनश्यामदासजी को ऐसा लगा कि इस तरह जो त्रिवेणी बनी है, उससे उनका मृत्यु-भय कम होता जा रहा है और उनमें सहन-शक्ति बढ़ती जा रही है।

वहां से जाते हुए महात्मा गांधी के मुंह से निकला, "आनंद से रहो, भय किसी बात का नहीं है।"

घनश्यामदासजी ने जैसे सुना——'सजग रहो, इसी में कल्याण है, सत्य बहुत कठोर है।'

उसी दिन दोपहर को मां सारे बच्चों से मिलीं और उन्हें अमित आशीष दिये। शाम के समय पत्नी ने पति से कहा, "अब मैं जाना चाहती हूं। मुझे दुख है, मैं आपको और बच्चों को तकलीफ-ही-तकलीफ दे सकी।"

पति ने पत्नी की यह बात सुनकर उसके सिर पर प्यार-भरा हाथ रखा और कहा, "तूने मेरे लिए बहुत कुछ किया और अब भी कर सकती है। मेरे कल्याण की कामना कर और बच्चों को आशीर्वाद दे।"

सुनकर पत्नी के चेहरे पर एक फीकी मुसकान फैल गयी और वह बोलीं, "मेरी क्या शक्ति है ? यों मैं तो यही चाहूंगी कि आप और हमारे बच्चे हमेशा सुखी रहें।"

घनश्यामदासजी ने कहा, "शक्ति हरेक में है दूसरे के अच्छे के लिए, बुरे के लिए नहीं। तू भले ही भौतिक स्तर पर मेरी कोई भलाई न कर सके, आत्मा के स्तर पर तो कर ही सकती है। आदमी अपनी प्रिय और अच्छी वस्तु का ही ईश्वर के सामने भोग चढ़ाता है। कभी-कभी ईश्वर के लिए प्रियजन को बलिदान भी करता है। इस समय जब तू ईश्वर के चरणों में चढ़ा दी गयी है, मेरे कल्याण की चिंता कर और बाकी सब चिंता छोड़।"[३६]

पत्नी अपलक पति के मुख को निहारती रहीं। धीरे-धीरे अजीब संतोष के साथ उनकी पलकें झप गयीं। चारों ओर सन्नाटा छा गया। चंद्रकला और बसंतकुमार रोने लगे। कृष्णकुमारजी शांत थे। घनश्यामदासजी ने बच्चों को पुचकारा और कहा, "मां, भगवान के घर गयी है। वह सुखी है, रोने की आवश्यकता नहीं है।" फिर शांति हो गयी।

काशी के सुप्रसिद्ध पाणाचार्य त्रैयंबक शास्त्री, जयपुर के मिषगाचार्य, स्वामी लच्छीरामजी, कलकत्ता के डा० कैलाश बाबू, दिल्ली के डा० अंसारी जैसे वैद्यों और डाक्टरों की कोई औषधि, दवा या उपचार महादेवीजी को बचा नहीं सका। उन्नीस सौ छब्बीस में केवल बत्तीस वर्ष की युवावस्था में घनश्यामदासजी दूसरी बार विधुर हो गये।

उस समय घनश्यामदासजी उद्योग, अर्थ एवं व्यापार जगत के विख्यात युवा पुरुष थे। ऐसी अवस्था में अगर उन्होंने फिर से विवाह कर लिया होता तो यह किसी प्रकार से अनुचित और अस्वाभाविक नहीं माना जाता। ऐसा करने के लिए उनकी माताजी ने बलदेवदासजी से भी कहा कि बेटे को समझाओ। उसका जल्दी से फिर विवाह कर दिया जाये। बनारस में रहकर उन्होंने इस काम में मालवीयजी से भी सहायता चाही। मालवीयजी ने कोशिश की, परंतु घनश्यामदासजी नहीं माने। माता-पिता ने फिर मां-विहीन छोटे-छोटे बच्चों के लालन-पालन का प्रश्न उठाया, जिसके जवाब में विनम्रता से घनश्यामदासजी ने कहा कि बच्चों के लिए मैं मां-बाप उसी क्षण से हो गया हूं, जब से महादेवी को क्षय रोग ने घर दबाया।

तीसरा विवाह न करने का निश्चय, घनश्यामदासजी के व्यक्तित्व के एक और पक्ष को उजागर करता है। स्त्री उनके लिए मन बहलाने का माध्यम नहीं थी। वह उसके व्यक्तित्व को समझते थे और उसका आदर करते थे। जब मालवीयजी और माता-पिता सबने मिलकर उन पर तीसरे विवाह के लिए जोर डाला तो उन्होंने जो

३६. मरुभूमि का वह मेघ, रामनिवास जाजु, पृष्ठ ११४-११५

उत्तर दिया, वह केवल स्त्रियों का आदर करने वाला पुरुष ही दे सकता है। उन्होंने कहा, "बत्तीस साल की आयु में एक तरुणी को लाकर उसके ऊपर अपने सारे बच्चों का बोझ डाल देना अन्याय होगा।" उनके इस कथन से पुष्टि होती है कि उनके संबंध महादेवीजी से अत्यंत मधुर थे। महादेवी में उन्होंने स्त्री का वह रूप देखा, जो घनश्याम-दासजी के मन में पूरी स्त्री जाति के प्रति आदर-भाव जगा गया था।

के० एस० रामानुजम् ने एक बार घनश्यामदासजी से पूछा था कि दोबारा शादी न करने के पीछे क्या महात्मा गांधी का प्रभाव है ? उन्होंने निश्चित स्वर में उत्तर दिया, "नहीं, ऐसा नहीं है। मेरे पास बहुत से काम हैं—स्वराज्य का बीहड़ पथ और उद्योगों को सम्हालना।" रामानुजम् ने फिर महादेवी के बारे में कुछ और उनसे पूछा था। उत्तर में घनश्यामदासजी ने कहा, "मैं उस दिव्य आत्मा के बारे में क्या कह सकता हूं ? उसने मुझसे कभी कुछ नहीं मांगा। वह जब तक जीवित थी, उसने हर क्षण मेरा ध्यान दिया और बच्चों की भरपूर सेवा की। वह आदि से अंत तक निस्वार्थ स्त्री थी।"

फिर भी यह सब जीवन की परिधि पर घटने वाली बातें हैं। इस संबंध में घनश्यामदासजी के जीवन-केंद्र पर जो कुछ हुआ, वह कुछ और ही है। यदि कोई भी क्षण, कोई भी संबंध समग्रता से जी लिया गया हो तो क्या कोई कभी इच्छा करेगा कि उसे दोहराया जाये ? मनुष्य उसकी ही कामना करता है जो कि अधूरा ही रह गया हो। घनश्यामदासजी गीता-पुत्र थे। पत्नी-वियोग को उन्होंने भागवतामृत भाव से लिया, जहां बिना वियोग के संयोग की पुष्टि नहीं होती।

**न विना विप्रलम्भेन सम्भोगो सुखमश्नुते।**

इस भाव से उन्होंने अपने आपमें एक प्रकार की शक्ति को जन्म दिया, जिसका प्रस्फुटन हुआ एक ओर महात्मा गांधी के प्रति उनकी अपरिमित सेवा-मय समर्पण और भक्ति, तो दूसरी ओर भारत को समृद्धि का अर्थ देने में।

आगे चलकर अगस्त उन्नीस सौ तीस की अपनी डायरी में उन्होंने उस समय की चर्चा की है, जब गांधीजी उपवास कर रहे थे। उनका जीवन उसी तरह मृत्यु की डोर में बंधा था, जैसे कि उनकी पत्नी महादेवी का। इस संकट के क्षण को घनश्यामदास-जी ने जो शब्द दिया वह है 'प्रेमी की व्याकुलता।'

गांधीजी की वह दशा देखकर घनश्यामदासजी ने उनके प्रति जो व्याकुलता व्यक्त की है, ऐसा लगता है जैसे वह स्वयं उतना ही गहरा कष्ट पा रहे हों। उन्होंने

आक्रोश भी दिखाया है उन लोगों के प्रति जो उपवास के समय गांधीजी के शहद चाटने की निंदा करते थे। घनश्यामदासजी ऐसे लोगों की भर्त्सना करते थे और कहते थे कि ये वे लोग हैं जिन्होंने कभी किसी से प्रेम नहीं किया और न किसी को समग्रता चाहा। ऐसे व्यक्ति इसी तरह की व्यर्थ आलोचनाएं ही कर सकते हैं।

पत्नी के जीवन काल में महात्मा गांधी, बिड़लाजी के आदर्श पुरुष थे। पत्नी के निधन के बाद वही महात्मा गांधी उनके लिए पितृ-तुल्य हो गये।

एक दिन सूने कमरे में घनश्यामदासजी को अचानक ऐसा लगा जैसे कमरे में कोई आहट हुई है। आकुल होकर उन्होंने कुछ देखना चाहा। अचानक उनकी नजर महादेवीजी के चित्र पर पड़ी। वह उस चित्र को अपलक देखते रहे। फिर अपने सधे हाथों में कलम पकड़कर उन्होंने लिखा :

*Alas, that Spring should vanish with the Rose!*
*That Youth's sweet-scented manuscript should close!*
*The Nightingale that in the Branches sang,*
*Ah, whence, and whither flown again, who knows!*

उमर खैयाम की रुबाई का यह अनुवाद महादेवी के चित्र पर अंग्रेजी में घनश्यामदासजी ने लिखकर अपने अगाध प्रेम का परिचय दिया। यह घनश्यामदासजी के उस भावुक प्रेम-पक्ष पर प्रकाश डालता है, जो अब तक अंधेरे में था। 'गुलाब', 'बसंत', 'यौवन', और 'बुलबुल' ये महत्त्वपूर्ण शब्द हैं। ये प्रतीक हैं साधनामय प्रेम के। पहली पत्नी की मृत्यु से उन्हें बहुत आघात पहुंचा था। काफी दिनों तक वह दूसरी शादी की चर्चा भी सुनने को तैयार नहीं थे। जो भी हो, यह पहला आघात था—मन के स्तर पर नहीं, बल्कि घर के स्तर पर। उन्हें यही लगा था कि उनका घर बसने से पहले ही उजड़ गया। महादेवीजी के विछोह से वे बिलकुल मौन हो गये। सब-कुछ जैसे अपने भीतर ही बांधकर सुरक्षित रख लिया। अपने हृदय के उस बंद पात्र में से केवल इस रुबाई के चंद शब्द उफनकर अभिव्यक्त हो गये हैं, उसी प्रिया के ही चित्र पर :

**पाखिक पाख, मीनक पानी।**
**जीवक जीवन, हम तुहूं जानी॥**

ये था कृष्ण के प्रति विद्यापति की राधा का हृदय-भाव। घनश्यामदासजी और महादेवीजी के परस्पर हृदय-भाव की कल्पना हम श्रीमद्भागवत पर रखी हुई बांसुरी से कर सकते हैं। उनकी विचार-श्रृंखला ललित रचना 'कृष्णं वंदे जगद् गुरुम्' में गूंज रही है।

पत्नी के स्वर्गवास के बाद यह प्रश्न उठा कि बच्चों को कहां भेजा जाये। बड़े भाई रामेश्वरदासजी उस समय बिड़ला काटन मिल्स के गेस्ट हाउस में ही रह रहे थे। अनुसूया और शांति को उनके पास भेज दिया गया, जो कुछ दिनों बाद वे स्नेहमयी ताई के साथ बंबई रहने चली गयीं।

कृष्णकुमारजी के विषय में घनश्यामदासजी पूर्णतः आश्वस्त थे, क्योंकि वह 'तब भी बहुत आत्मनिर्भर' थे। उन्हें कलकत्ता में छोटे भाई ब्रजमोहनजी के साथ रहने के लिए भेज दिया। बसंतकुमारजी छोटे और सुकुमार थे। उनके विषय में घनश्यामदासजी की चिंता स्वाभाविक थी। उन्हें भी ब्रजमोहन चाचाजी के यहां ही रखा गया। लक्ष्मीनिवासजी सारे बच्चों में बड़े थे। बुद्धि और स्वभाव से आयु में अधिक परिपक्व थे। वह अपने ताऊ जुगलकिशोरजी के साथ रह रहे थे। यों उस समय सारा बिड़ला-परिवार एक-साथ ही रह रहा था। चंद्रकला की शादी तय हो चुकी थी, उन्हें भी कलकत्ता ताऊजी के पास भेज दिया गया। बिड़ला-परिवार की परंपरानुसार बच्चों की देख-रेख की पूरी जिम्मेदारी 'बड़े बाबूजी' यानि जुगल-किशोरजी ने अपने ऊपर ले ली थी, जो स्वयं निस्संतान थे।

इसके बाद ही एकाकी घनश्यामदासजी गांधीजी के सहवास का लोभ संवरण नहीं कर सके। वे उनके साथ उड़ीसा की पद-यात्रा में निकल पड़े। गांधीजी के साथ-साथ डेढ़ महीने तक वह तंबुओं में रहे और चटाई पर सोये। गांधीजी के साथ सार्वजनिक सेवा करने का यह क्रम एक ओर घनश्यामदासजी के लिए एकाकीपन को दूर करने का प्रयास था और दूसरी ओर राष्ट्र-सेवा से अपने को संबद्ध करने का संकल्प।

गांधीजी जब कभी दिल्ली, कलकत्ता या बंबई में होते तो घनश्यामदासजी उन्हें हमेशा अपने घर आमंत्रित किया करते थे। तब गांधीजी ने घनश्यामदासजी के साथ रहना शुरू नहीं किया था। सन उन्नीस सौ तैंतीस के बाद गांधीजी घनश्यामदासजी के साथ रहने लगे और वे उन स्थानों में ही ठहरा करते थे जहां घनश्यामदासजी के मकान थे।

सन उन्नीस सौ छब्बीस की बात है, एक बार गांधीजी घनश्यामदासजी के यहां आये। घनश्यामदासजी ने कृष्णकुमारजी और बसंतकुमारजी को गांधीजी के पैर स्पर्श करने के लिए कहा था। तब दोनों की आयु क्रमशः आठ और छः वर्ष की थी। दोनों लड़कों ने गांधीजी के सामने साष्टांग दंडवत किया और उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। उन दिनों उच्च परिवार के लड़के अपने हाथ में सोने का 'कड़ा' और कान में हीरे या मोती की 'लौंग' पहनते थे। जब गांधीजी ने कृष्णकुमारजी



के हाथ में कड़ा अ
कि इतने छोटे वच्चो
इन आभूषणों को उन
का उपयोग रचनात्म
मान ली। लेकिन ग
आभूषणों को तब त
दे देते। उन्होंने सब
उनका कड़ा और लौं
की ओर उनकी राय
साथ मजाक कर रहे
कि क्या हम कड़ा उत
नौकर केवल बच्चों
उसी तरह मजाक क
मान लेनी चाहिए।
से बसंतकुमारजी क
कृष्णकुमारजी के सा
ने उनका कड़ा और
गये। उनके जाने के
लौंग का क्या होगा
एक मजाक है और थ
के कड़ा और लौंग
हुई और उन्होंने अ
लड़कों को बहुत सा
किसी अच्छे काम मे

सन उन्नीस सौ
विवाह किशनगढ़ के
पूरे राजसी ठाट-बा
विभूषित राजा बल
महाराजा साहब ने इ

के हाथ में कड़ा और कान में लौंग देखे तो उन्होंने घनश्यामदासजी से पूछा कि इतने छोटे वच्चों को यह सब क्यों पहनना चाहिए। गांधीजी ने कहा कि क्या वे इन आभूषणों को उनके शरीर से उतार सकते हैं और उन्हें बेचकर उनसे प्राप्त राशि का उपयोग रचनात्मक कार्यों में कर सकते हैं। घनश्यामदासजी ने उनकी बात तुरंत मान ली। लेकिन गांधीजी, जो वास्तव में हर दृष्टि से महान थे, ने कहा कि वे इन आभूषणों को तव तक नहीं उतारेंगे जव तक कि ये लड़के स्वयं अपनी स्वीकृति नहीं दे देते। उन्होंने सवसे पहले दोनों में से छोटे पुत्र बसंतकुमारजी से पूछा कि क्या वे उनका कड़ा और लौंग उतार सकते हैं? बसंतकुमारजी ने अपने वड़े भाई कृष्णकुमारजी की ओर उनकी राय मांगने के लिए देखा। कृष्णकुमारजी ने सोचा कि गांधीजी उनके साथ मजाक कर रहे हैं। उन्हें अनुभव था कि कई वार उनके नौकर कहा करते थे कि क्या हम कड़ा उतार लें और वे कभी कड़ा नहीं उतारते थे। उन्हें मालूम था कि नौकर केवल वच्चों से मजाक कर रहे हैं। कृष्णकुमारजी को लगा कि गांधीजी भी उसी तरह मजाक कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने सलाह दी कि वसंतकुमारजी को वात मान लेनी चाहिए। वसंतकुमारजी ने वही किया। तव गांधीजी ने स्वयं अपने हाथों से वसंतकुमारजी का कड़ा और लौंग उतार लिये। इसके बाद उन्होंने वही प्रश्न कृष्णकुमारजी के सामने रखा और कृष्णकुमारजी ने भी वही उत्तर दिया। गांधीजी ने उनका कड़ा और लौंग भी उतार लिये। थोड़ी देर के बाद गांधीजी वहां से चले गये। उनके जाने के वाद वसंतकुमारजी ने कृष्णकुमारजी से पूछा कि अब कड़ा और लौंग का क्या होगा? कृष्णकुमारजी ने कहा, घवराने की वात नहीं है। यह सव तो एक मजाक है और थोड़े समय में उनका कड़ा और लौंग वापस आ जाएंगे परंतु दोनों के कड़ा और लौंग फिर कभी वापस नहीं आये। तव दोनों वच्चों को निराशा हुई और उन्होंने अनुभव किया कि वह मजाक नहीं था। घनश्यामदासजी ने दोनों लड़कों को वहुत सावधानीपूर्वक समझाया कि उनके कड़े और लौंगों का उपयोग किसी अच्छे काम में किया जाएगा।

सन उन्नीस सौ सत्ताईस में वसंत पंचमी के दिन बड़े बेटे लक्ष्मीनिवासजी का विवाह किशनगढ़ के दीवान की बेटी सुशीला देवी के साथ संपन्न हुआ। यह विवाह पूरे राजसी ठाट-बाट से हुआ। जयपुर महाराजा द्वारा 'सोने की ताजीम' से विभूषित राजा बलदेवदासजी के पोते की वारात थी। इसलिए किशनगढ़ के महाराजा साहव ने इस आयोजन में वहुत उत्साह दिखाया। राजा बलदेवदास के

स्वागत के लिए महाराजा ने दरबार बुलाया। उस जमाने में संपन्न लोगों में भी सवारी के नाम पर रथ, ऊंट ही दहेज में दिया जाता था। लेकिन किशनगढ़ के दीवान साहब ने अपने दामाद लक्ष्मीनिवासजी को हाथी भेंट किया, जो वर्षों तक पिलानी में गर्व का विषय बना रहा।

बड़ी बेटी चंद्रकला का विवाह जलपाईगुड़ी के डागा-परिवार के सुपुत्र बंशीधरजी से तय था। यह विवाह बिड़ला पार्क, कलकत्ता में इक्कीस अगस्त सन उन्नीस सौ इकतीस को संपन्न हुआ।

संपन्न लोगों में भी
लेकिन किशनगढ़ के
या, जो वर्षों तक

के सुपुत्र बंशीधरजी
स्त सन उन्नीस सौ

# बापू का लाड़ला बालक

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा सन उन्नीस सौ चौबीस में समाप्त की। इसके बाद ही उन्होंने घनश्यामदासजी को 'भाई श्रीयुत घनश्यामदास' इस संबोधन से तेरह मई को जुहू (बंबई) से पहला पत्र लिखा था। उन दिनों घनश्यामदासजी कष्ट में थे, इसलिए स्वभावतया वे सलाह के लिए बापू के पास आये थे। मारवाड़ी समाज रूढ़िवादी था। उसने बिड़ला-परिवार की आधुनिकता के कारण सामाजिक बहिष्कार आरंभ कर दिया था।

सामाजिक बहिष्कार का मामला खड़ा हुआ था, रामेश्वरदासजी के दूसरे विवाह के प्रसंग में। रामेश्वरदासजी के लिए रिश्ता खुरजा के कोलवार माहेश्वरियों में तय किया गया। उन्हें कलकत्ता की रूढ़िवादी डीडू माहेश्वरी पंचायत, माहेश्वरी मानने को तैयार नहीं थी। घनश्यामदासजी का निर्णय था कि हम विवाह खुरजा में अवश्य करेंगे। डीडू माहेश्वरी पंचायत ने बिड़लाओं के खिलाफ खुलकर आंदोलन किया। उन्होंने पांच लाख परचे छपवाकर सारे देश में बंटवाए। इस सबके बावजूद रामेश्वरदासजी का विवाह कोलवारों में कर दिया गया। तब डीडू पंचायत ने बिड़लाओं को 'जात बाहर' करके दंडित किया।

मई के अपने पत्र में बापू ने घनश्यामदासजी को लिखा, "मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि जातिवालों के विरोध को आप बर्दाश्त कर सकेंगे तो आखिर में फल अच्छा ही होगा ··· जिस चीज को आपने अच्छी समझकर की है और जिसकी योग्यता के लिए आज भी आप लोगों के दिल में शंका नहीं है उसके लिए माफी मांगना मैं हरगिज उचित नहीं समझूंगा। आपकी तरफ से मुझे पांच हजार मिल गये हैं। 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लिए आप उचित समझें इतना द्रव्य भेज दें।"[३७]

३७. बापू की प्रेम प्रसादी, भाग-१

घनश्यामदासजी ने 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लिए उचित धन भेज दिया। उनके मन में तब भी रोष था कि गांधीजी की अहिंसा की नीति का पालन करते हुए सबकुछ कब तक चुपचाप सहते रहेंगे। इस संबंध में घनश्यामदासजी ने ग्यारह जून उन्नीस सौ चौबीस को पिलानी से बापू को काफी लंबा पत्र लिखा, "आपने मुझे अहिंसा का उपदेश दिया और मैंने भी उसे बिना शंका के सुन लिया, किंतु आपसे दूर होने के पश्चात मुझे फिर समय-समय पर शंकाएं होती हैं। इसमें तो मुझे रत्ती भर भी शंका नहीं कि अहिंसा एक उत्तम ध्येय है। किंतु आप जैसे द्वंद्व विमुख पुरुष संसार की भलाई के लिए किसी मनुष्य का यदि वध कर दें तो क्या इसको हिंसा कहा जा सकता है ?···अहिंसा तो मुझे प्रिय भी मालूम पड़ती है, किंतु कभी (मन में उठता है कि कहीं) यह वृत्ति आलस्य के कारण से तो नहीं है।"३८

इसके उत्तर में बीस जून उन्नीस सौ चौबीस को बापू ने 'भाई घनश्यामदासजी' को पत्र में लिखा, 'कार्य सिद्ध हो या न हो, तो भी हमें अहिंसक ही रहना चाहिए।' इस पत्र से घनश्यामदासजी को संतोष नहीं हुआ और उनकी शंकाएं अब शिकायतों का रूप लेने लगी थीं।

जाति-बहिष्कृत के रूप में घनश्यामदासजी को जो अनुभव प्राप्त हुए थे, उनके कारण दलित जातियों के प्रति उनकी सहानुभूति बढ़ गयी थी। फलतः बापू के हरिजन आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए वे कृतसंकल्प हुए। उन दोनों के पत्र-व्यवहार का बहुत बड़ा भाग इसी आंदोलन के संबंध में उपलब्ध है। उस पत्र-व्यवहार में सबसे अधिक दिलचस्प बात यह है कि इस कार्य में घनश्यामदासजी द्वारा समय-समय पर चैकों द्वारा धन दिया गया। धन कहां जमा कराया जाये, जिससे उनके भुगतान पर कमीशन न देना पड़े, इसके बारे में गांधीजी की वणिक-सुलभ व्यापार कुशलता का अच्छा उदाहरण है। हरिजनों से व्यक्तिगत संपर्क न होने के कारण ही कट्टर हिंदुओं में, जिनमें मालवीयजी जैसे साधु-पुरुष भी थे, हरिजनों के लिए उपेक्षा की भावना ने जड़ पकड़ ली थी। पत्र-व्यवहार को देखने से पता चलता है कि राष्ट्रीय प्रश्नों को छोड़कर और सभी बातों में बापू और मालवीयजी में मौलिक मतभेद था। यद्यपि बापू स्वराज्य पार्टी बनाने और उसके विधान सभाओं में भाग लेने के विरोधी थे, फिर भी उनकी सहानुभूति पार्टी के कट्टरपंथी नेताओं—जैसे मोतीलाल नेहरू और सी० आर० दास के साथ अपेक्षाकृत अधिक थी।

३८. बापू की प्रेम प्रसादी, भाग-१

बापू और घनश्यामदासजी के व्यक्तिगत संबंधों के ये वे दिन थे जब घनश्यामदास-जी की धर्मपत्नी महादेवी को तपेदिक की ऐसी बीमारी लग गयी थी जो बाद में घातक सिद्ध हुई। बापू की शुभकामनाएं और उनके चिकित्सा संबंधी सुझाव लगातार आते रहते थे। इसी बीच उन्होंने यौन-प्रश्नों पर भी अपने विचार लिखे।

गोरक्षा लक्ष्य की सिद्धि के प्रयास के मामले में बापू और घनश्यामदासजी में काफी विस्तार से बातें हुई हैं। इस संबंध में बापू का एक जुलाई उन्नीस सौ पच्चीस का पत्र उल्लेखनीय है :

"जमनालालजी मुझे कहते थे कि जो २५,००० रुपये आपने मुस्लिम यूनिवर्सिटी को दिये, वे जो ६०,००० रुपये जुहू (बंबई) में देने की प्रतिज्ञा की थी उसी में से थे। मेरी समझ ऐसी थी और मैंने ६०,००० रुपये दूसरे कामों में खरचने का इरादा कर रखा था। परंतु यदि आपकी समझ ऐसी न थी कि मुस्लिम यूनिवर्सिटी के रुपये अलग न माने जायें तो मुझे कुछ कहना नहीं है। दूसरी बात है कि गोरक्षा के बारे में मेरे खयाल आप जानते हैं। श्री मधुसूदनदास की एक टेनरी कटक में है, उसकी उन्होंने कंपनी बनायी है। उसमें ज्यादा शेयर लेकर प्रजा के लिए गोरक्षा के कारण कब्जा लेने का दिल चाहता है। उस पर १,२०,००० का कर्ज होगा। उस कर्ज में से उसकी मुक्ति आवश्यक है। टेनरी में चमड़े केवल मृत जानवरों के लिये जाते हैं, परंतु पाटलद्यो को मरवाकर के भी उसके चमड़े लेते हैं। यदि टेनरी लें तो तीन शर्तें होनी चाहिए :

१. मृत जानवर का ही चमड़ा खरीदा जाये।

२. पाटलद्यो को मरवाकर उसका चमड़ा लेने का काम बंद किया जाये।

३. सूत लेने की बात ही छोड़ दी जाये। यदि कुछ लाभ मिले तो टेनरी का विस्तार बढ़ाने के लिए उसका उपयोग किया जाये।

"मैं चाहता हूं कि यदि इस वर्ष से टेनरी मिले तो आप ले लें। उसकी व्यवस्था आप ही करें तो मुझको प्रिय लगेगा। यदि न करें तो व्यवस्थापक मैं ढूंढ़ लूंगा। टेनरी की अपनी ही जमीन कुछ बीघा है। मैंने देख ली है। श्री मधुसूदनदास ने इसमें अपने बहुत पैसे खर्च किये हैं। तीसरी बात है चर्खा-संघ की। आप इसमें साथ दे सकते हैं। आप अखिल भारत देशबंधु-स्मारक में अच्छी रकम दें, ऐसा मांगता हूं।" ३९

बापू ने अपने पत्रों में बार-बार आर्थिक बातों की चर्चा की है। दलित जातियों की सहायता के लिए किये जाने वाले संघर्षों में घनश्यामदासजी रुपये-पैसे से बापू

३९. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १३२-१३३

की जितनी भी सहायता कर सकते थे, करते रहे। घनश्यामदासजी के शब्दों में, 'क्योंकि यही एक ऐसी चीज थी जो उनके पास नहीं थी।'

सन उन्नीस सौ पच्चीस-छब्बीस के दिनों में हिंदू-मुस्लिम समस्या विकट रूप धारण कर चुकी थी। इस क्षेत्र में बापू और मालवीयजी के बीच में मतभेद काफी मुखर हो उठे थे। घनश्यामदासजी के बड़े भाई जुगलकिशोरजी, मालवीयजी के विचारों के पक्ष में थे, परंतु घनश्यामदासजी इस मामले में गांधीजी से ज्यादा सहमत थे। इन्हीं दिनों जब घनश्यामदासजी का राजनीतिक क्षेत्र में क्रियात्मक रूप से प्रवेश करने का प्रश्न आया तो मालवीयजी से गांधीजी का मतभेद और अधिक प्रकट हो गया। गांधीजी ने आठ जून उन्नीस सौ छब्बीस को घनश्यामदासजी को पत्र लिखा :

"कौंसिल के बारे में क्या लिखूं ? पूज्य मालवीयजी से इस बारे में मेरा तात्विक मतभेद है। मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि यदि आप मानें, कौंसिलों में आपके जाने से लोकोपकार होगा तो आप अवश्य जाएं। स्वराज्य दल का विरोध और राज-नैतिक शिक्षण प्राप्ति का प्रलोभन, ये दोनों बातें नैतिक दृष्टि से खयाल करने में अप्रस्तुत हैं। यदि आप ऐसा समझते हैं कि आपने कौंसिलों में न जाने की प्रतिज्ञा मेरे समक्ष की है तो इस समझ को आप दूर करें। ऐसा कोई प्रतिबंध निश्चयपूर्वक स्वीकार नहीं किया है। ऐसे बंधन से मुक्त समझकर केवल औपचारिक दृष्टि से आप कौंसिलों में जाने के बारे में आपका अभिप्राय निश्चित करें।"४०

इन्हीं दिनों ब्रिटिश सरकार से घनश्यामदासजी को 'नाइट हुड' की उपाधि देने का प्रस्ताव आया। उन्होंने विनम्रतापूर्वक उसे लेने से इंकार कर दिया। बापू को यह बात बहुत भायी कि घनश्यामदासजी ने 'नाइट हुड' की उपाधि लेने से इंकार कर दिया। उन्हें यह बात जितनी पसंद थी, उतनी ही विधान सभा के लिए उनके खड़े होने की बात नापसंद भी थी। सन उन्नीस सौ सत्ताईस में घनश्यामदासजी असेंबली के सदस्य थे। बाद में बापू की सलाह से उन्होंने उसे त्याग दिया। 'सर' की उपाधि के बारे में बापू ने घनश्यामदासजी को लिखा, "किसी उपाधि को इंकार करने के लिए न तो यह जरूरी है कि सरकार को अपना दुश्मन समझा जाये और न यह कि उपाधियों को बुरा माना जाये, यद्यपि आजकल की परिस्थितियों में तो मैं उन्हें बुरा ही समझता हूं।"४१

४०. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १३६
४१. वही, पृष्ठ १३७

घनश्यामदासजी के राजनीतिक जीवन के प्रारंभ के पथ-प्रदर्शकों में पंडित मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय प्रमुख रहे हैं। घनश्यामदासजी के अनुसार मालवीयजी बहुत विद्वान थे और उनमें देशभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी, किंतु सामाजिक विषयों में वे पक्के सनातनी थे। लालालाजपतराय रूढ़िवादी विचारों के नहीं थे, पर थे बहुत ही भावुक और तुनकमिजाज। अछूतों के प्रति अभिरुचि सबसे पहले उन्होंने ही जाग्रत की थी।

कलकत्ता के इतिहास में एक अभूतपूर्व भीषण सांप्रदायिक दंगा सन उन्नीस सौ छब्बीस में उन्हीं दिनों जकरिया स्ट्रीट स्थित शिव मंदिर और नाखुदा मस्जिद के पास के मोहल्लों में हुआ। इन सांप्रदायिक दंगों को शांत करने और हिंदू-मुसलमान दोनों की सहायता करने में घनश्यामदासजी का बहुत बड़ा हाथ था। संकटग्रस्त हिंदू और मुसलमान दोनों ही वर्गों की उन्होंने समान रूप से सहायता की। बड़ाबाजार क्षेत्र में उनके द्वारा स्थापित मारवाड़ी एसोसिएशन और बेडन पावेल स्काउट संस्था की रोवर्स शाखा, इन दोनों संस्थाओं के माध्यम से अपने साथ तमाम नवयुवकों को लेकर घनश्यामदासजी स्वयं विकट स्थानों में निर्भीक होकर जाते थे और अगणित बाल-वृद्ध और महिलाओं को सुरक्षित स्थानों में पहुंचाते थे। मुसलमानों को हिंदू मोहल्लों से निकालकर और हिंदुओं को मुसलमान मोहल्लों से निकालकर मोटर-गाड़ियों में बैठाकर वे उन्हें सुरक्षित स्थानों में पहुंचाते थे। वे स्वयं अपनी पिस्तौल लेकर अपने बंगाली ड्राइवर सुरेश द्वारा संचालित मोटरगाड़ी के बाहर बैठते थे और भयभीत लोगों को गाड़ी के अंदर बैठा लेते थे। उनके इस सेवा-कार्य से लोगों में असीम उत्साह पैदा हुआ और हजारों हिंदू-मुसलमानों की जान बची।

पत्नी महादेवी की मृत्यु के बाद घनश्यामदासजी जब पहली बार साबरमती आश्रम में महात्मा गांधी से मिले, उस समय उन्हें देखकर गांधीजी ने कहा, 'आप शांत-चित्त हैं, इससे मुझे आनंद आता है। अब मेरी उम्मीद है कि आप दूसरे विवाह के प्रलोभन में नहीं पड़ेंगे।'

घनश्यामदासजी महात्माजी को देखते रह गये, कुछ नहीं बोले, किंतु उनके शांत मुख पर न चाहते हुए भी यह भाव उभर आया कि व्यक्ति चाहे कितना ही विचारवान हो, कितना भी ज्ञानी हो, किसी प्रियतम की मृत्यु के बाद की स्थिति की कल्पना उसके लिए आसान नहीं है।

सन उन्नीस सौ सत्ताईस में घनश्यामदासजी काशी में पेट की बीमारी से अस्वस्थ पड़े थे। वे वहां के बिड़ला हाउस में ठहरे थे। डाक्टरों का कहना था कि पेट की

बीमारी का सीधा संबंध व्यक्ति के चिंतन से होता है। किसी भी कारण से जब व्यक्ति चिंतित या उद्वेलित होता है तो उसे पेट के रोग हो जाते हैं। घनश्यामदासजी की पत्नी का निधन हुए बहुत समय नहीं बीता था। यह पेट का रोग उनकी इसी मानसिकता का द्योतक था। उनकी चिकित्सा कर रहे थे उनके परम विश्वस्त वैद्य त्रैयंब शास्त्री। उस समय ग्यारह अक्तूबर उन्नीस सौ सत्ताईस को उन्होंने महात्माजी को लिखे पत्र में अप्रत्यक्ष रूप से एक मार्मिक बात कही, 'जिस तरह वैद्यों की शरण में मैं प्रायः स्वस्थ बन जाता हूं, उसी तरह से मुझे अब तक प्राकृतिक इलाज करने वाला कोई ऐसा वैद्य नहीं मिला जिसे मैं अपना शरीर सौंपकर निश्चिंत हो जाऊं।' तभी महात्माजी ने उन्हें प्राकृतिक इलाज का तरीका समझाया। एक प्रकार से गांधीजी उनके लिए उपयुक्त वैद्य सिद्ध हुए। उनके इलाज से कुछ लाभ भी मिला, तब उन्होंने गांधीजी को लिखा, 'धन के अभाव में कहीं काम रुकता हो तो आप बिना संकोच के मुझे लिख दिया करें। वैसे भी कुछ-कुछ भेजता ही रहूंगा। मैं आपको अधिक धन भी दे सकता हूं, किंतु मैं अपनी कुछ व्यापारिक योजनाओं के पीछे लगा हूं और उनको पूरा कर देना देश-हित के लिए आवश्यक समझता हूं।'४२

देश-हित और बापू जिस क्षण दोनों एक-दूसरे के पर्याय हो गये, उसी क्षण घनश्यामदासजी के हृदय में गांधीजी के प्रति भक्ति की धारा फट पड़ी। उनका कहना था, 'उनसे (गांधीजी) अधिक पेचदार पुरुष की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वह एक ऐसे व्यक्ति हैं जो किसी तरह पकड़ में नहीं आ सकते।' घनश्यामदासजी ने बापू में एक ही साथ महात्मा, राजनीतिज्ञ और अवतारी पुरुष को देखा। यह मानवीय नियमों का एक अपवाद था, इसीलिए उन्होंने गांधीजी को पिता-तुल्य मान लिया और अपने हृदय की समस्त कोमल भावनाओं को समर्पित करने का प्रेम-पाठ पा लिया।

यह कैसा शुभ संयोग था कि पत्नी के चले जाने के बाद जो सारी कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए एक प्रेमालंबन चाहिए था, वह बापू के रूप में उन्हें प्राप्त हो गया। उन्होंने अपने जीवन में केवल बापू के लिए यह संबोधन प्रयुक्त किया है—'परम पूज्य महात्माजी के चरणों में प्रणाम'। किसी दूसरे को उन्होंने ऐसा कभी नहीं लिखा। बापू के सान्निध्य में घनश्यामदासजी को जो कुछ भी मिला उन्होंने उसका नाम दिया 'प्रेम प्रसादी'।

घनश्यामदासजी ने गांधीजी के बारे में लिखा है, 'वह एक ऐसे व्यक्ति हैं जो किसी तरह पकड़ में नहीं आ सकते हैं।'

४२. बापू की प्रेम प्रसादी, भाग-१

यह एक मार्मिक कथन है। इसकी व्याख्या में बहुत-कुछ लिखा जा सकता है, लेकिन एक विशेष बात इस उक्ति से उभरकर सामने आती है कि गांधीजी के चरित्र की मोहिनी-शक्ति से घनश्यामदासजी अभिभूत थे। उनके व्यक्तिगत जीवन की नैतिकता और जीवन-मूल्य का हर पहलू और उसका आचरण अपना सम्मोहन प्रभाव उन पर डाल जाता था। किसी ने गांधीजी को केवल बापू के रूप में ही देखा, किसी ने महात्मा के रूप में, किसी ने राजनीतिक नेता के रूप में और किसी ने एक बागी के रूप में, लेकिन घनश्यामदासजी ने उन्हें एक ऐसे मानव के रूप में देखा जो पूर्णता की पराकाष्ठा को छू रहा था। इसीलिए उन्होंने अपनी सारी भक्ति, सारी श्रद्धा और प्रेम, निस्संकोच बिना किसी शर्त के उन्हें अर्पित कर दिया। यह सब तो था लेकिन कई मामलों में घनश्यामदासजी का गांधीजी से अच्छा-खासा मतभेद भी था। यह बात अलग है कि उस मतभेद का निदान एक सरल पद्धति से होता रहा। दोनों ने अपने मतभेदों को कभी भी एक-दूसरे से किसी भी रूप में छिपाया नहीं। घनश्याम-दासजी के ही शब्दों में, "इसका श्रेय तो मैं मुख्यत: उनकी महत्ता और उदारता को ही दूंगा। इतना आकर्षण, इतना स्नेह, मित्रों के प्रति इतनी प्रीति मैंने बहुत कम आदमियों में पायी।"[४३]

सन उन्नीस सौ सत्ताईस में ही स्वस्थ होने के बाद घनश्यामदासजी ने 'सेंट्रल असेंबली' का चुनाव लड़ने की बात सोची। चुनाव की सारी व्यवस्था पारसनाथजी ने की। उस समय घनश्यामदासजी की आयु तैंतीस वर्ष थी। इसी वर्ष उन्होंने पहली विदेश यात्रा की। वे अंतर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन, (इंटरनेशनल लेबर कांफ्रेंस) जिनेवा के दसवें अधिवेशन में सरकारी नामजद प्रतिनिधि के रूप में गये। जब वे जिनेवा से लंदन लौटे तो लाला लाजपतराय भी वहीं थे। उस समय तक लालाजी घनश्यामदासजी के काफी समीप आ चुके थे। लाला लाजपतराय का एक पत्र इसका प्रमाण है :

"प्रिय घनश्यामदासजी,

तुम्हारे बारे में मेरी जो धारणा है, वह मैं तुम्हें साफ-साफ और दिल खोलकर बता देना चाहता हूं। जहाज पर और जिनेवा में साथ-साथ रहने के कारण अब मैं तुम्हें पूरी तरह समझने लगा हूं। इतने पास से तुम्हारा अध्ययन करने का अवसर मुझे पहली बार मिला। तुममें कुछ गुण ऐसे हैं, जिनकी मैं मुक्त कंठ से सराहना करता हूं, पर तुममें कुछ ऐसी आदतें हैं, जिन्हें मैं चाहूंगा कि तुम बदल दो। तुममें

४३. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ११२

मेरी दिलचस्पी एक पिता की दिलचस्पी है, जो चाहता है कि उसका बेटा उससे भी अधिक बड़ा और अच्छा बने। तुममें एक महान नेता बनने के गुण हैं। वे सभी गुण हैं जो एक सच्चे नेता में होने चाहिए। बस, तुम्हें अपने व्यवहार के ढंग में कुछ परिवर्तन करना होगा। इस समय तुम्हारे व्यवहार से कुछ रुखाई और धैर्य के अभाव का आभास मिलता है और इस कारण जो लोग तुम्हें अच्छी तरह से नहीं जानते, वे अभिमानी समझ बैठते हैं। बातचीत और व्यवहार के मामले में हमें महात्मा गांधी से अच्छा व्यक्ति कोई नहीं मिलेगा। वैसे तो इस संसार में किसी को भी सर्व-गुण-संपन्न नहीं कहा जा सकता, पर महात्मा गांधी को लगभग पूर्णता-प्राप्त पुरुष अवश्य कहा जा सकता है। वे महान हैं, हम सबसे महान, पर वे अपने मित्रों और सह-कर्मियों के प्रति अपने व्यवहार का ध्यान रखते हैं। उन्हें उपेक्षा या उदासीनता या अशिष्टता का दोष देना संभव ही नहीं है। तुमसे उनका लाख मतभेद होते हुए भी वे तुम्हारी सारी बातें धैर्य के साथ सुनेंगे और अपना निर्णय सुनाने में कभी जल्दबाजी से काम नहीं लेंगे। वह डिग हैं, उन्हें कोई दुर्बलता का दोषी नहीं ठहरा सकता। पर उनकी दृढ़ता को कोई उद्दंडता समझ बैठे, यह संभव नहीं है। वह तो उनसे भी दिल खोलकर तर्क-वितर्क करते हैं जो किसी भी दृष्टि से उनके समकक्ष नहीं माने जा सकते। तुम अभी युवक ही हो और अभी तुमने दुनिया नहीं देखी है, पर तुम्हारी बुद्धि अच्छी है और निश्चय करने में तुम्हें देर नहीं लगती है, पर बुरा न मानना। एक राजनैतिक नेता के रूप में, जो कि आगे चलकर तुम बनोगे ही, तुम्हें मस्तिष्क और आचार-विचार संबंधी जिन गुणों की दरकार होगी वे उन गुणों से भिन्न होंगे, जिन्होंने तुम्हें एक सफल उद्योगपति बनाया है।

मेरे जीवन की तो संध्या आ गयी। गांधीजी और मालवीयजी भी तिल-तिल करके मर ही रहे हैं। भगवान करें वे चिरायु हों। हिंदुओं में आज ऐसे बहुत ही कम लोग हैं, जिन पर हम अपने देश के नेतृत्व का भार छोड़ना पसंद करेंगे। मेरी आशाएं तो बुद्धिजीवियों में जयकर और उद्योगपतियों में तुम पर बंधी हुई हैं। लेकिन जयकर बंबई के हैं। हमें एक ऐसे हिंदू नेता की जरूरत है, जो उत्तर भारत के हिंदुओं का नेतृत्व करने के लिए अपने साथियों और सह-कर्मियों का पूरा-पूरा स्नेह तथा विश्वास प्राप्त कर सके। आज मुझे एक भी ऐसा आदमी दिखायी नहीं देता है। मुझे तुमसे आशा है। यही कारण है कि मैंने तुम्हें यह पत्र लिखने का जिम्मा लिया। मेरे स्नेह और देश-प्रेम ने मुझे ऐसा करने को प्रेरित किया है। यदि तुम समझो कि मैं व्यर्थ ही टांग अड़ाने की धृष्टता कर रहा हूं तो मुझे क्षमा कर देना और इस पत्र को रद्दी

की टोकरी में डाल देना और फिर कभी इसको याद न करना। भगवान तुम्हारा भला करे, यही मेरी कामना है।

तुम्हारा सच्चा हितैषी

--लाजपतराय'' ४४

लाजपतराय के इस पत्र के बारे में घनश्यामदासजी ने स्वयं टिप्पणी की है कि इस पत्र का मुझ पर कितना असर पड़ा। मैं अपनी त्रुटियों की तरफ सचेत था और मुझे नेता बनने की कोई आकांक्षा भी नहीं थी, 'इसलिए मैंने उनकी सलाह को उसी रूप में ग्रहण किया, जिस रूप में एक युवक अपने बुजुर्गों की सलाह को ग्रहण करता है।'

इसके बाद पेरिस से छह जुलाई उन्नीस सौ सत्ताईस को लालाजी ने एक दूसरा डांट-भरा पत्र घनश्यामदासजी को भेजा।

''प्रिय घनश्यामदासजी,

मैं अभी पेरिस में ही हूं। दिल की बात कर रहा हूं, माफ करना। मेरे लंदन छोड़ने से पहले तुम मुझसे मिलने नहीं आये, इससे मेरे दिल को चोट पहुंची है। तुम सर शादीलाल के भोज और श्री पटेल के स्वागत-समारोह में नहीं आये, सो मेरी समझ में ठीक नहीं हुआ। चाहे तुम कुछ खाते नहीं, पर तुम्हें आना जरूर चाहिए था। लोगों के साथ नम्रता और शिष्टता का व्यवहार करना और उन पर अच्छा प्रभाव डालना बड़े काम आता है। तुम पर लक्ष्मी की कृपा है, इसलिए तुम्हारे लिए यह और भी आवश्यक है कि तुम जीवन के इन औपचारिक शिष्टाचारों का पालन करो। मैं चाहता हूं कि लोग तुम्हें तुम्हारे धन के लिए नहीं, बल्कि तुम्हारे गुणों के लिए प्यार करें। मेरी राय में तुम्हें अपने में थोड़ा-सा परिवर्तन करना चाहिए और अपने दोनों पूज्य नेताओं (गांधीजी और मालवीयजी) के आदर्श का अनुकरण करते हुए छोटी-छोटी बातों में भी उदार बनना सीखना चाहिए।

मैं कल या परसों विशी जा रहा हूं। मैं इस यात्रा के लिए बड़ा आभारी हूं और तुम्हें विशी पहुंचकर पत्र लिखूंगा। मैं यहां अपने दांतों की परीक्षा कराने का प्रयत्न

४४. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १३९-१४०

कर रहा हूं। इन बातों में लंदन इतना महंगा है कि मैंने आगे की डाक्टरी परीक्षा पेरिस के लिए रोक रखी थी।

तुम्हारा हितैषी
——लाजपतराय'' ४५

लाला लाजपतराय के ऐसे उलाहना-भरे पत्रों के बाद भी घनश्यामदासजी के भीतर पार्टियों और भोजों के प्रति कोई विशेष रुचि उत्पन्न नहीं हुई। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय होकर ऊपर उठने की उनकी कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। वे चाहते तो बड़े ही सहज-सरल रूप से राजनीति के क्षेत्र में फिसल पड़ते। उस क्षेत्र में पहुंचकर वे क्या-कुछ बन सकते थे, इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है।

उन्होंने उन्नीस सौ सत्ताईस में 'केंद्रीय धारासभा' का चुनाव लड़ा और वे जीते। अप्रैल उन्नीस सौ तीस में उन्होंने 'धारासभा' से त्यागपत्र भी दे दिया। इस अवधि में 'धारासभा' के सदस्य के रूप में भारतीय राजनीति का जो थोड़ा-सा स्वाद उन्होंने चखा, उसी से उनकी तीक्ष्ण बुद्धि ने यह समझ लिया कि यह क्षेत्र उनकी प्रवृत्ति के साथ मेल नहीं खायेगा।

ये वे दिन थे जब कांग्रेस पार्टी ही दलबंदी का शिकार थी। बापू, मालवीयजी, लाला लाजपतराय तीनों में राजनीतिक मतभेद को देखकर घनश्यामदासजी हतप्रभ थे। ये तीनों ही उनके आदरणीय थे, इस कारण उनके बीच ऐसी स्थिति से घनश्यामदासजी का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। उन्हें यह देखकर आश्चर्य होता था कि लाला लाजपतराय जैसे व्यक्ति को उस जगह भी षड्यंत्र और शत्रुता दिखायी देती थी, जहां ऐसा होने की संभावना नहीं थी। असेंबली के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल से लाला लाजपतराय को नफरत हो गयी थी। इस सबके कारण घनश्यामदासजी के मन में राजनीति से पीछा छुड़ाने की इच्छा और भी बलवती हो गयी। तभी बापू की सलाह से उन्होंने असेंबली से त्यागपत्र दे दिया।

मार्सेल्स से जिनेवा जाते समय स्टीमर में घनश्यामदासजी ने दो लेख लिखे—'हम पराधीन क्यों हैं ?' और 'भीषण काम लंदन'। 'हम पराधीन क्यों हैं' लेख में उन्होंने उस समय की मनःस्थिति का प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णन किया है—''जब से जहाज

४५. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १४०-१४१

पर पांव रखा है, तभी से मैं इस बात का मनन कर रहा हूं कि हम इतने गिरे हुए, पिछड़े हुए, पतित और परतंत्र क्यों हैं, और यूरोपीय लोग बढ़े-चढ़े, सुखी, सहृदय और स्वतंत्र क्यों हैं ? हालांकि पंद्रह साल से मैं अंग्रेजों के सहवास में हूं, पर सिवाय मेरे जानकार लोगों के व्यक्तिगत गुण-दोषों के उनमें सार्वजनिक गुण-दोष क्या हैं, इनका मुझे विशेष ज्ञान अब तक नहीं हुआ । इसका यह भी कारण है कि भारत में हमारे शासकगण अपने ऐबों को अत्यंत सावधानी से छिपाते ही रहते हैं, किंतु अपने अच्छे गुणों को भी इसलिए छिपाते हैं कि जिसमें हम उनकी नकल करना न सीख लें । ··· इतना ऐशो-आराम होते हुए भी आंग्ल जाति मौका पड़ने पर देश और जाति की मर्यादा के लिए किस प्रकार अपना सर्वस्व निछावर कर सकती है, इससे मैं भली-भांति परिचित था । अपने देश की स्वतंत्रता के लिए अमीर और गरीब सब किस प्रकार मर-मिटने को तैयार हैं, इसका मुझे पूरा ज्ञान था । जहां भोग की लालसा और विषय-सुख की तृष्णा की उनमें अधिकता थी, वहां शौर्य, उत्साह, धैर्य, सच्चाई हम लोगों से कहीं अधिक देखने में आयी । इसके विपरीत हम तो आज पूरे कायर बन गये हैं । बलवान की चापलूसी करते हैं, गरीब पर जुल्म करते हैं । ··· असल बात तो यह है कि हम लोग भ्रम में पड़े हैं । हम अपनी अकर्मण्यता को संतोष, कायरता को अहिंसा, दरिद्रता को अपरिग्रह, भय को क्षमा, बाह्योपचारी रूढ़ियों को धर्म, अज्ञान को शांति, आलस्य को धृति मान बैठे हैं, और इसी में अपना गौरव समझते हैं ।''४६

घनश्यामदासजी भारत की राजनीतिक स्थिति से बहुत क्षुब्ध थे । कांग्रेस पार्टी दलबंदी का शिकार थी । लाला लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू, मालवीयजी, जयकर, आयंगर, पटेल सबके-सब एक-दूसरे के विरोधी-से हो गये थे । लाला लाजपतराय चाहते थे कि ऐसे समय में घनश्यामदासजी समझौता कराएं । उन्होंने उस समय घनश्यामदासजी को लिखा, ''मैं इसी विषय पर तुमसे विस्तार के साथ बातें करना चाहता हूं, क्योंकि भविष्य में इसी पर हमारा सारा राजनैतिक कार्यकलाप निर्भर है ।'' इसके बाद घनश्यामदासजी उनसे मिले और उन्होंने झगड़ों को शांत करने की चेष्टा भी की । घनश्यामदासजी को लगा कि इसका एक ही विकल्प है, और वे हैं—बापू । बापू उस समय सेवाग्राम में थे । वे उनसे मिलने सेवाग्राम गये । लगातार तीन दिनों तक उनके साथ रहे । वहां उन्होंने देखा, आश्रम में आये-दिन सर्प सामने आ जाते हैं और आश्रमवासी उन्हें पकड़कर दूर फेंक देते हैं । बिच्छू तो कई बार आश्रम-

४६. बिखरे विचारों की भरांटी, २४२, २४३, २४४, २४५

वासियों को डंक मार चुके हैं। एक दिन महादेवभाई ने कहा, 'बापू, आप सर्प नहीं मारने देते, इसलिए कभी आपको बहुत पछताना पड़ेगा। आये-दिन सांप आश्रम-वासियों के पांव में काट जाते हैं।'

गांधीजी ने कहा, 'मैंने कब किसी को मारने को मना किया है ? यह सही है कि मैं नहीं मारता, क्योंकि मुझे आत्मरक्षा के लिए भी सांप को मारना रुचिकर नहीं है, पर अन्य किसी को मैं जोखिम में नहीं डालना चाहता। इसलिए जिनको मारना हो तो अवश्य मारें।'

गांधीजी की यह भाषा सुनकर घनश्यामदासजी ने मन-ही-मन प्रश्न किया कि मनुष्य की भाषा ईश्वर की लीला को क्या समझा सकती है ? ईश्वर की माया तो अवाच्य और अगम्य है। उन्होंने देख लिया था कि यह भाषा जहां से फूटती है, वह उद्गम स्रोत क्या है ! यह वह स्थल है जहां गांधीजी की अहिंसा अग्नि-परीक्षा में सफल हुई है।

उन्होंने अब तक अनेक स्थानों और परिस्थितियों में गांधीजी के साथ रहकर देखा है कि गांधीजी ने जब भी जो प्रतिज्ञा-व्रत लिया उसका अधिक-से-अधिक व्यापक अर्थ करना और उस पर अटल रहना जैसे उनकी आदत है। यदि किया हुआ काम अनीति-युक्त मालूम हुआ तो तुरंत वे उस मार्ग से बिना किसी के आग्रह के हट जाते। पर जब तक उन्हें अपना मार्ग अनीति-युक्त नहीं लगता, तब तक छोटी-छोटी चीजों में भी परिवर्तन नहीं करते। घूमने जाते हैं तो उसी रास्ते से। सोने के स्थान वही, खाने के स्थान वही, वर्तन वही, चीजें वही। दिल्ली आते हैं तो आते समय निजामुद्दीन स्टेशन पर उतरते हैं और जाते समय बड़े स्टेशन से गाड़ी में सवार होते हैं—"मेरे यहां ठहरते हैं तो उसी कमरे में, जिसमें बार-बार ठहरते आये हैं। मोटर बदलना भी नापसंद है। किसी आदत को ख्वामखाह नहीं बदलते। छोटी चीजों में भी एक तरह की पकड़ है।··· वे कहते हैं, 'सत मेरा सर्वोत्तम धर्म है जिसमें सारे धर्म समा जाते हैं। सत्य के मायने केवल वाणी का सत्य नहीं है, बल्कि विचार में भी सत्य। मिश्रित सत्य नहीं, पर वह नित्य शुद्ध, सनातन और अपरिवर्तनशील सत्य, जो ईश्वर है।' इन व्याख्याओं को सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो जाता हूं और स्तब्ध भी रह जाता हूं।"[४७]

घनश्यामदासजी जब भी कहीं अकेले यात्रा करते तो उन्हें पहली लंदन-यात्रा

४७. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ३९-४०

के समय गांधीजी का सोलह मार्च उन्नीस सौ सत्ताईस का लिखा हुआ वह पत्र याद आ जाता, जिसमें उन्होंने योरुप में आरोग्य रहने के लिए ग्यारह बातें लिखी थीं । वे ग्यारह बातें इस प्रकार हैं :

"(१) अपरिचित खोराक न लेना ।

(२) वे लोग छे-सात बार खाते हैं। हम तीन बार से ज्यादा न खांय--बीच में चोकलेट इ० खाने की बुरी टेव न रखे ।

(३) रात्रि को १ बजे तक भी खा लेते हैं। हम रात्रि को ८ बजे के बाद न खायं । किसी जगह पर जाने पर चाह इ० लेने के लिए हम मजबूर होते हैं, ऐसा माना जाता है, ऐसा कुछ नहिं है ।

(४) नित्य कम-से-कम ६ मईल पैदल घूमने का अभ्यास रखना अत्यावश्यक है । प्रातःकाल में और रात्रि को दोनों समय घूमना चाहीये ।

(५) हद्द के बाहर कपड़े पहनने की आवश्यकता न मानी जाय, रहस्य यही है कि शरीर को ठंडी न लगे, घूमने से ठंडी चली जाती है ।

(६) इंग्रेजी कपड़े पहनने की कोई आवश्यकता नहिं है ।

(७) यूरोप के गरीब लोगों का परीचय करने की कोशिश की जाय--इस परीचय के लीये बहोत काम पैदल करना आवश्यक है--जब समय है, तब पैदल ही जाना अच्छा है ।

(८) यूरोप में गये तो कुछ-न-कुछ करना ही है, ऐसा कभी न सोचा जाय । स्वच्छ प्रयत्नों से और निश्चिन्तता से जो बन पड़े, वह कीया जाय ।

(९) मेरे ख्याल से तो आपके जाने का एक परिणाम अवश्य आ सकता है--शरीर बज्र समय बनाया जाय । यह बात बन सकती है ।

(१०) ईश्वर आपको मानसिक व्यभिचार से बचा ले--बहोत कम हिंदी इस दोष से बचते हैं । वहां का रहन-सहन यद्यपि उन लोगों के लिए स्वाभाविक है, हमारे लीये मद्यपान-सा बन जाता है ।

(११) गीताजी और रामायण का अभ्यास हो तो हरगीज न छोड़ा जाय यदि नहीं है तो अब रखा जाय ।"[४८]

ग्यारह सितंबर उन्नीस सौ सत्ताईस को घनश्यामदासजी विदेश से भारत लौट आये ।

४८. बापूं की प्रेम प्रसादी, पृष्ठ ६८, ६९

भारत में उनकी अनुपस्थिति में लक्ष्मीनिवासजी ने उद्योगों की देख-भाल करनी शुरू कर दी थी। इस बीच बापू और घनश्यामदासजी के पत्र-व्यवहार में अनेक तत्कालीन समस्याओं की चर्चा जारी रही। बापू के पत्रों में अक्सर आत्मीयता से भरी वे बातें रहती थीं, जिनके कारण वे इतने प्रिय हो गये थे। उन्होंने जिसे भी इस प्रकार पत्र लिखा वही उनका अपना हो गया। पहली अक्तूबर उन्नीस सौ सत्ताईस को गांधीजी ने घनश्यामदासजी को लिखा कि जमनालालजी के खत से पता चलता है कि आप योरुप से स्वास्थ्य बिगाड़ के आये हैं, अब कहीं आराम कर स्वास्थ्य दुरुस्त करना आवश्यक है। 'भोजन की पसंदगी करने में मैं कुछ सहायता अवश्य दे सकता हूं, परंतु उसके लिए तो कुछ दिनों तक मेरे साथ रहना चाहिए।' घनश्यामदासजी गांधीजी के साथ रहने को तैयार नहीं हुए। वे जानते थे कि बापू उन्हें जो कुछ खिलाएंगे उसे वे खा नहीं पाएंगे। इसके अतिरिक्त उन्हें 'नीम की चटनी' वाले पथ्य पर विश्वास नहीं था। अपने उसी पत्र में 'असहयोग आंदोलन' के बारे में बापू ने लिखा था कि असहयोग के कारण कांग्रेस में दो दल हो गये हैं, ऐसा कुछ नहीं है। दो दल तो थे ही। गांधीजी ने अपना विश्वास व्यक्त किया कि असहयोग के बिना हमारी शक्ति बढ़ ही नहीं सकती। लोग इसका चमत्कार समझ गये हैं, हालांकि हिंदू-मुस्लिम झगड़ा उसमें और बाधा डाल रहा है। उन्होंने अपने पत्र में स्पष्ट लिखा, 'काउंसलों की सहायता की चेष्टा मैं नहीं कर सकता हूं। परंतु मेंबर (सदस्य) चाहें तो खादी और मद्यपान के विषय में मदद दे सकते हैं। परंतु मेंबर (सदस्य) स्वार्थ, अज्ञान और आलस्य के लिए कुछ नहीं कर सकते। . . . धन की भूख तो मुझे हमेशा रहती है। खादी, अछूत और शिक्षा का कार्य करने में ही मुझे कम-से-कम दो लाख रुपये आवश्यक रहते हैं। दुग्धालय का जो प्रयोग चल रहा है, उसके लिए आज पचास हजार रुपये की दरकार है। आश्रम का खर्च तो है ही। कोई काम रुक नहीं जाता, परंतु ईश्वर रोआ-रोआ कर धन देता है।'

उन्हीं दिनों 'शुद्धि' की लहर काफी तेजी से उठी थी। इसके पीछे आर्य-समाज का हाथ था। काफी संख्या में ऐसे हरिजन भी थे, जिन्होंने ऊंची जातियों के अत्याचार से घबराकर अपना धर्म-परिवर्तन तो कर लिया था, पर अपने जन्मगत धर्म को दोबारा अपनाना चाहते थे। बापू ने घनश्यामदासजी को चौदह दिसंबर उन्नीस सौ सत्ताईस को बेतिया (चंपारण) से जो पत्र लिखा उसमें दोनों के विचारों की झलक मिलती है। बापू के शब्दों में, 'जिस ढंग से आज शुद्धि की जाती है, वह धार्मिक नहीं है। जो बलात्कार से या अनजानपन में विधर्मी हो जाते हैं, उनकी शुद्धि क्या करनी थी।

वे तो शुद्ध ही हैं। केवल हिंदू-धर्मों की उदारता का प्रश्न है। हमारा आंदोलन ख्रिस्ती, इस्लामी शुद्धि के विरोध में होना चाहिए।' बापू के लिए जितनी गहरी समस्या हिंदू-मुस्लिम एकता की थी, उतनी ही गहरी अछूतोद्धार के लिए भी थी। दस जनवरी सन उन्नीस सौ अट्ठाईस को बिड़ला हाउस पिलानी से घनश्यामदासजी ने महादेवभाई को पत्र लिखा जिसमें उन्होंने यह जानना चाहा कि उनसे जमनालालजी ने पूछा है, "मेरा अठहत्तर हजार रुपये का ताजा दान किस काम में लगाया जाये ? मैंने यह बात महात्माजी के ऊपर छोड़ दी है। यदि उन्हें रुपये की बहुत अधिक आवश्यकता न पड़ गयी हो तो मेरा सुझाव है कि यह रुपया ऐसी योजनाओं में लगाया जाये, जिनसे स्वराज्य निकटतर आये। हिंदू-मुस्लिम एक ओर (तो) अस्पृश्योद्धार भी उन्हीं में से है और स्वराज्य प्राप्ति के लिए इसकी नितांत आवश्यकता है।"[४९]

बापू घनश्यामदासजी के स्वास्थ्य के प्रति भी उतने ही चिंतित रहते थे। उन्होंने सन उन्नीस सौ अट्ठाईस और उन्नीस सौ उन्तीस में जहां कहीं भी वे रहे हों, उन्होंने घनश्यामदासजी के स्वास्थ्य और कल्याण के प्रति सदा चिंता प्रकट की है।

इस बीच घनश्यामदासजी को अक्सर दिल्ली जाना पड़ता था। वहीं मालवीयजी, लाला लाजपतराय आदि लोगों से उनका मिलना होता था। हकीम अजमल खां का स्मारक बनाने के लिए गांधीजी ने 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में जो कुछ प्रकाशित किया था, उसके लिए भी घनश्यामदासजी प्रयत्नशील थे। उस समय घनश्यामदासजी का चीनियों के साथ संपर्क हो चला था, लेकिन यह संपर्क-संबंध नहीं बन पाया, क्योंकि उन्होंने पाया कि चीनियों में बहुत घमंड है और उनके आचरण में विश्वास की कमी है। उनके इस विचार से बापू भी सहमत थे।

सन उन्नीस सौ उन्तीस के अंत में 'गोलमेज परिषद' में गांधीजी के भाग लेने का सवाल उठा। 'साइमन कमीशन' में सिर्फ ब्रिटिश संसद के सदस्यों को रखने से भारत-वासियों के मन पर बुरा असर पड़ा था। वह दूर हो जाये तो जिस 'गवर्नमेंट आफ इंडिया बिल' का रास्ता साफ करने के लिए 'साइमन कमीशन' नियुक्त किया गया था, उसका मसविदा तैयार करने में भारत के लोग भी हिस्सा ले सकेंगे। बापू इस परिषद में जाने के लिए तैयार नहीं हो रहे थे। घनश्यामदासजी हर तरह से यह कोशिश कर रहे थे कि भारत की ओर से बापू इस परिषद में अवश्य जाएं। लेकिन

४९. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १५७

उन दिनों वह अपने 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' का दूसरा दौर शुरू करने वाले थे। उसी में वे बहुत व्यस्त थे। इस संबंध में ग्यारह नवंबर उन्नीस सौ उन्तीस को पिलानी से घनश्यामदासजी ने जो पत्र बापू को भेजा, उसका यह अंश उल्लेखनीय है :

"मेरी राय में वाइसराय एवं बेन नेकनीयती के साथ हमें सहायता देना चाहते हैं, किंतु मैं नहीं मानता कि हमें पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा मिलने वाला है। यह मैं जरूर मानता हूं कि यदि आप वहां पहुंच गये तो हमें अधिक-से-अधिक लाभ हो सकेगा। वहां की सरकार आपको असंतुष्ट करके वापस नहीं जाने देगी, ऐसा मेरा पक्का विश्वास है। शायद फौज के रिजर्वेशन के साथ हमें कुछ दे दे। इसके विपरीत आप लोगों के न जाने से मुझे परिस्थिति बिगड़ती दिखायी देती है। इसी चिंता से प्रेरित होकर यह पत्र लिख रहा हूं और आपसे बिना पूछे परामर्श देना चाहता हूं कि आप सम्मानपूर्वक परिस्थिति को अवश्य संभाल लें। मैं जानता हूं कि आपका रुख भी यही है, किंतु फिर भी लिख देना मैंने उचित समझा है। मैं राजनैतिक मामलों में आपको कभी सलाह नहीं देता हूं, किंतु परिस्थिति को देखते हुए ऐसा करना आवश्यक समझा है। देश की शांति के साथ-साथ इसकी कमजोरी का आपसे अधिक मुझको ज्ञान नहीं है, किंतु इसके कारण मैं कभी-कभी बहुत निराश हो जाता हूं, और इसलिए यही सूझता है कि यदि आपके तप का--हमारी शक्तियों का नहीं--फल हमें मिलना चाहता हो तो हमें उसे ले लेने का प्रबंध कर लेना चाहिए। यदि पूरा औपनिवेशिक दर्जा मिले तब तो आप झटपट ले लेंगे, मैं जानता हूं, किंतु मुझे ऐसी आशा नहीं है। बहुत-से-बहुत, और सो भी आपके सहयोग से, फौज छोड़कर अन्य सब चीजें हमें सम्मानपूर्वक इस समय मिल सकती हैं, मुझे तो इतनी ही आशा है। आप शायद इतना स्वीकार न करें और कांफ्रेंस में जाने से मुंह मोड़ लें, इस भय से चिंतित था और पत्र लिखने का भी यही प्रयोजन है।

आपके जाने के बाद वाइसराय से मैं डिनर पर मिला था। उनकी बातों से इतनी बात मुझ पर स्पष्ट हो गयी :

(१) कैदी छोड़ने में आनाकानी करेगा, किंतु उन्हें छोड़ देगा, (२) कांफ्रेंस का संगठन आप लोगों की राय और मशवरे से होगा, (३) शायद उन्नीस सौ तीस की जुलाई तक कांफ्रेंस कर लें, (४) पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा देना कठिन है।

किंतु इस अंतिम बात को वह अभी तो कांफ्रेंस पर ही छोड़ देंगे। न तो वह यही कहना चाहते हैं कि शीघ्र ही औपनिवेशिक दर्जा स्थापित हो सकेगा, किंतु मेरी समझ

यह है कि पूर्ण औपनिवेशिक दर्जा हमें अभी नहीं मिलेगा, तो भी हम बहुत कुछ संपादन कर सकते हैं और बचा-खुचा भी पांच-दस साल तक ले सकते हैं। आज की परिस्थिति में हम इससे अधिक की आशा भी कैसे कर सकते हैं ? मेरी राय का निचोड़ यह है कि आपका ब्रिटिश कैबिनेट से मिल लेना हमारे लिए बहुत हितकर है और इस मौके को हमें छोड़ना नहीं चाहिए। यदि कांफ्रेंस असफल भी हो जाये तो भी हमारा लाभ ही है, क्योंकि इससे गरम दल वालों का प्रभाव बढ़ेगा। हमारे तो दोनों हाथ लड्डू दीखते हैं। मैंने अपनी राय लिख दी है, बाकी तो आप सोच ही लेंगे।" ५०

इस पत्र का परिणाम अच्छा हुआ। अपने 'सविनय अवज्ञा' के कारण बापू समझ बैठे थे कि उन्हें जेल जाना पड़ेगा। जब बापू और घनश्यामदासजी की मुलाकात वर्धा में हुई तो उन्होंने घनश्यामदासजी से साफ-साफ कह दिया कि उन्हें अंग्रेजों पर घोर अविश्वास है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि अब भारतीय सदस्यों को 'धारासभा' से बिल्कुल अलग रहना चाहिए।

अट्ठाईस फरवरी सन उन्नीस सौ तीस को महात्मा गांधी ने लिखा था--अंग्रेज केवल हमारी अज्ञानता और भीरुता से लाभ उठाते हैं। असेंबली से जितनी जल्दी विदा ली जाये, उतना ही अच्छा है।

इस मौके पर स्वराज्य पार्टी ने गांधीजी की सलाह मान ली और सारे सदस्य असेंबली को छोड़कर चले आये। घनश्यामदासजी को यह काम अक्लमंदी का नहीं लगा, क्योंकि असेंबली के द्वारा भारतवासियों को संसदीय कार्यशीलता का अच्छा अनुभव मिल रहा था। 'स्वराज्य पार्टी' की समझ में यह बात अच्छी तरह आ गयी। फलतः अगले वर्ष चुनाव में वह फिर खड़ी हुई और जीतकर असेंबली में गयी। अगले वर्ष गांधीजी ने लार्ड विलिंगडन के तर्क मान लिये और घनश्यामदासजी तथा मालवीय-जी जैसे मित्रों की प्रार्थना स्वीकार कर वह दूसरी 'गोलमेज परिषद' में जाने के लिए तैयार हो गये। ऐसे परिषद के लिए कांग्रेस ने उनको अपना एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त किया। घनश्यामदासजी कांग्रेस के सदस्य नहीं थे, इसलिए उन्होंने व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में परिषद में भाग लेने का सरकारी निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

लार्ड इरविन के वाइसराय के पद पर रहते हुए जब गांधीजी उनसे मिले तब दोनों ने मिलकर गांधी-इरविन पैक्ट की रूप-रेखा तय की थी। तभी से लार्ड इरविन और गांधीजी, दोनों एक-दूसरे पर अधिकाधिक विश्वास करने लगे थे। किंतु एक वर्ष

---

५०. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १६०-१६१

पहले की परिषद के बाद से दृश्य अब बदल चुका था। रेमजे मैक्डोनल अब भी प्रधान-मंत्री थे और बदस्तूर परिषद की अध्यक्षता कर रहे थे। पर अब वे मजदूर सरकार के नेता न रहकर एक संयुक्त-सरकार के नेता थे, जिसमें बाल्डविन और उनके अनुयायी साथियों का स्थान प्रमुख था। भारतमंत्री के पद पर बेजवुड बेन के बदले, अनुदार दल के सदस्य पर सर सैमुअल होर (बाद में लार्ड टेम्पिलवुड) थे। इसलिए गांधीजी की तरह घनश्यामदासजी को भी अंग्रेजों की नीयत पर शक होने लगा था।

घनश्यामदासजी ने गांधीजी के दर्शन को अच्छी तरह समझा था। उन्होंने उनके दर्शन की व्याख्या भी की है। वे 'गांधी-दर्शन' के अच्छे भाष्यकार सिद्ध हुए, जिन्होंने अपने कर्म, जीवन और आचरण में उसे साकार रूप दिया और अपने समूचे साहित्य में विशेषकर 'मेरे जीवन में गांधीजी' और 'बापू की प्रेम प्रसादी' में उसे सहज और सरल शब्दों में बांधा।

गांधीजी की आत्मकथा के कुछ भागों का घनश्यामदासजी ने 'गांधी मेरे विचारों में' का जैसा भाष्य किया है, वह अप्रतिम है। गांधीजी को मारने के लिए दक्षिण अफ्रीका में गोरे लोगों की भीड़ टूट पड़ी थी। मुश्किल से गांधीजी बचे थे।

दिल्ली में जुगलकिशोरजी ने लक्ष्मीनारायण मंदिर बनवाया। उसका उद्घाटन महात्मा गांधी ने किया था। उस समय गांधीजी के दर्शनों के लिए अपार भीड़ उमड़ी थी। गांधीजी का व्यक्तित्व ही ऐसा था। सच पूछा जाये तो घनश्यामदासजी और गांधीजी में इतनी प्रगाढ़ता पैदा हो गयी थी कि दोनों अलग नहीं किये जा सकते थे। कई प्रश्नों पर घनश्यामदासजी का गांधीजी से मतभेद भले रहा हो, लेकिन वह व्यक्तिगत संबंधों को कभी नहीं तोड़ सका। घनश्यामदासजी ने स्वतंत्रता की लड़ाई के समय उदारतापूर्वक धन दिया और गांधीजी ने भारत की चेतना को जगाकर अपने अधिकारों के प्रति सजग किया। दोनों के बीच समय-समय पर जो पत्र-व्यवहार हुए हैं, वे वैयक्तिक कम, इस देश की स्वाधीनता के लिए दोनों की समान चिंता के प्रमाण-पत्र अधिक हैं। 'बापू की जीवनी' और 'मेरे जीवन में गांधीजी', इन दोनों पुस्तकों में घनश्यामदासजी ने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी है। ये पुस्तकें वास्तव में उस समय की मानसिकता का दस्तावेज हैं।

एक अक्तूबर उन्नीस सौ सत्ताईस के अपने पत्र में गांधीजी ने घनश्यामदासजी को लिखा था कि धन की भूख तो उन्हें हमेशा रहती है। इतनी सारी सेवा योजनाएं, विकास कार्यक्रम, बड़े-बड़े आश्रम, खादी, गो-पालन, अछूत और हरिजन और शिक्षा

आदि के कार्यों के लिए काफी मात्रा में धन की आवश्यकता रहती थी। घनश्यामदास-जी इन कार्यों के लिए सदा मुक्तहस्त से दान देते रहे और बापू उसे सहर्ष स्वीकार करते रहे। जाहिर है, यह धन घनश्यामदासजी अपने बड़े-बड़े उद्योग, मिल, मशीन और व्यापार से अर्जित करते थे। बापू छोटे-छोटे घरेलू उद्योग-धंधों--जैसे चर्खा और घानी--में विश्वास रखते थे। जब घनश्यामदासजी के धन का उपयोग करने से बापू नहीं हिचके तो स्पष्ट है कि देश की समृद्धि के लिए बड़े उद्योगों और व्यवसायों को गांधीजी की परोक्ष रूप से सहमति प्राप्त रही है। गांधीजी ने घनश्यामदासजी के मोटर-उद्योग को स्वयं आशीर्वाद दिया था, इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

वस्तुतः चर्खा और घानी, बापू के लिए नैतिकता के प्रतीक थे। उनके माध्यम से वे यह बताना चाहते थे कि व्यक्ति को अपना जीवन अधिक-से-अधिक सरल और सादा रखना चाहिए। जहां तक संभव हो सके, अपनी आवश्यकताओं को ऐसी सीमा में रखना चाहिए कि व्यक्ति आत्मनिर्भर रह सके। इसका कारण यह भी था कि बापू भारत की दरिद्र जनता की आंखों में समृद्धि के झूठे सपने नहीं बसाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अपना जीवन इतना सरल और सादा रखा।

बापू के बारे में सोचते हुए घनश्यामदासजी अक्सर आश्चर्यचकित रह जाते, यह कैसा मनुष्य है ? छोटा-सा शरीर, अर्धनग्न, जिसने इतने लोगों को मोहित कर दिया, जिसने इतने लोगों को पागल कर दिया। यह सब पागलपन शायद इसलिए है कि गांधीजी ने मार खाकर, ठोकरें खाकर भी क्षमा-धर्म को नहीं छोड़ा। गांधीजी का यह विश्वास उनके भीतर बैठ गया था, 'पाप से घृणा करो, पापी से नहीं।'

बापू के माध्यम से घनश्यामदासजी ने 'हे राम' का एक अत्यंत मानवीय अर्थ निकाला। उन्होंने देखा कि गांधीजी जब उठते-बैठते हैं, जम्हाई लेते हैं, या अंगड़ाई लेते हैं तो लंबी सांस लेकर 'हे राम, हे राम' उनके मुख से फूटता है। उन्होंने ध्यानपूर्वक सोचा कि उनके 'हे राम, हे राम' में कुछ आह होती है, कुछ करुणा होती है, कुछ थकान होती है। ऐसा क्यों होता है ? उन्हें यह समझते देर न लगी कि यह बापू की करुणा के स्वर हैं, जो पराधीनता और गरीबी से उपजे हैं। उन्होंने बापू की प्रकृति से भी यह अर्थ और सहज ढंग से पा लिया कि वे जो कहते हैं या बोलते हैं, उसे पहले अपने जीवन में उतारते हैं। इसके अलावा बापू की भगवान में अटूट श्रद्धा थी, इसका इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता था ?

बापू बहुत कम बोला करते थे। जो कुछ कहते थे, वह भी संकेतों में और सार-गर्भित होता था । गांधीजी के विचारों में 'ट्रस्टीशिप' की अवधारणा सबसे ज्यादा मौलिक थी । यह अवधारणा जितनी महान थी, उसके अनुसार व्यापक पैमाने पर प्रयोग करने के लिए उनके पास पर्याप्त समय नहीं था । घनश्यामदासजी ने ट्रस्टीशिप के संपूर्ण आशय को समझा और अपने व्यावसायिक जीवन में प्रयोग करने की चेष्टा भी की । बापू और घनश्यामदासजी दोनों का यही विचार था कि 'सब व्यवसाय केवल साधन हैं,' जो जीवन को श्रेष्ठता की ओर अग्रसर करने में सहायता करते हैं । अपने आगे के जीवन में घनश्यामदासजी ने मित्रों तथा संबंधियों से हमेशा यही पूछा कि कमाई में से दान कितना किया है ? इससे भी आगे बढ़कर वह कहा करते थे कि किसी व्यक्ति या संस्था को दान देना, सहायता करना ही पर्याप्त नहीं है, महत्त्व है कि उसका उपयोग ठीक तरह से हुआ है या नहीं ।

बिड़ला हाउस, नयी दिल्ली से चौदह मार्च, उन्नीस सौ बत्तीस को घनश्यामदासजी ने सर सैमुअल होर को जो पत्र लिखा है उसमें 'सहज ही विश्वास कर लेने' का एक मार्मिक प्रसंग आया है। इस विश्वास-जैसे जीवन तत्त्व के बारे में सोचते हुए उन्होंने कहा है कि जहां जितना ही विश्वास है, वहां उतनी ही ज्यादा जिम्मेदारी है। इसीलिए उन्होंने चाहा है कि लोग जान लें कि बापू से उनके संबंध क्या हैं ? उन्होंने स्वयं लिखा है 'मेरे लिए यह कहना अनावश्यक है कि मैं गांधीजी का प्रशंसक हूं। वास्तव में, यदि मैं यह कहूं कि मैं उनका एक लाड़ला बालक हूं, तो अनुचित नहीं होगा ।'

# इतिहास का निर्माण

अक्षर-ज्ञान शिक्षा का आधार है। बच्चे जब पढ़ाई शुरू करते हैं, सर्वप्रथम उन्हें अक्षरों से परिचित कराया जाता है। जब वे अक्षरों से शब्दों को बनाने लगते हैं, तब उन्हें अंकों से परिचित कराया जाता है। लेकिन घनश्यामदासजी का विद्यारंभ, जैसा पहले बताया भी जा चुका है, अक्षरों से नहीं, अंकों से हुआ। पहले अंक, फिर पहाड़े, फिर हिसाब और तब अक्षर। अर्थात उनकी शिक्षा की आधारशिला बने 'अंक'।

कहते हैं, जब मनुष्य ने अंकों का आविष्कार किया तो उसने ब्रह्म-ज्ञान के पथ पर अपना पहला कदम रखा। अंकों की सबसे बड़ी शक्ति है उनकी असंदिग्धता। अंक पूर्ण हैं। बिना दूसरे को जोड़े, उनके मूल्य में न कुछ कमी की जा सकती है, न कोई बेसी। चाहे जिस तरह से भी उनका उच्चारण किया जाये, उनमें कोई अंतर नहीं पड़ता। पर अक्षर और शब्दों के साथ ऐसी बात नहीं है। अक्षरों के उच्चारण, बोले जाने के तरीके, वाक्य में उनके अलग-अलग स्थान से उनके अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। इसलिए भाषा जहां अनेकार्थी है, अंक सुस्पष्ट एकार्थ हैं।

घनश्यामदासजी के व्यक्तित्व पर 'अंक से अक्षर-ज्ञान' वाली शिक्षा का ही प्रभाव था। उनकी सूझ-बूझ एक गणितज्ञ की थी। हर बात को ठीक-ठीक समझना और हर बात को सुस्पष्ट, असंदिग्ध रूप में कहना, जैसे उनकी अस्मिता में ही परिव्याप्त था। इसीलिए घनश्यामदासजी ने जो कुछ भी किया, उसमें उन्हें सफलता ही मिली।

राजनीति-क्षेत्र में भी एक कुशल गणितज्ञ की तरह उन्होंने अपने मोहरे ऐसे चले कि उनकी अधिकतर चालें सफल हुईं। सबसे बड़ी सफलता जो उन्हें मिली, वह थी—बापू के विचारों को अंग्रेजों के सम्मुख सुस्पष्ट रूप देना और अंग्रेजों की

बातों और उनके वायदों का ठीक-ठीक मूल्यांकन करके, बापू और उनके माध्यम से उन्हें कांग्रेस के समक्ष प्रस्तुत करना ।

कितनी कुशलता से घनश्यामदासजी ने यह कार्य किया, यह उन चिट्ठियों से साफ पता चलता है जो उन्होंने उस काल में बापू को लिखीं । साक्ष्य रूप में उनका लिखा ग्यारह नवंबर उन्नीस सौ उन्तीस का पत्र--"सामंत सभा और कामन्स की बहस तो आपने पढ़ ही ली होगी। मेरी राय में तो परिस्थिति को देखते हुए बेन की स्पीच अच्छी थी । यदि हम उनकी ईमानदारी में संदेह न करें तो कहना होगा कि उनकी कठिनाइयों को देखते हुए वे इससे ज्यादा नहीं कह सकते थे । बेन की भावना में परिवर्तन हुआ है, ऐसा तो स्पष्ट ही है । नेताओं के वक्तव्य का प्रतिवाद नहीं किया, यह एक शुभ चिह्न है ।"

यह पत्र इस बात का प्रमाण है कि भारतीय और ब्रिटिश दोनों ही दृष्टिकोण घनश्यामदासजी के मानस में बिल्कुल स्पष्ट थे ।

नवंबर सन उन्नीस सौ सत्ताईस में 'साइमन कमीशन' का गठन करके अंग्रेज एक बड़ी भूल कर बैठे । इस कमीशन में एक भी सदस्य भारतीय नहीं था । इस बात से सबके सब भारतीय राजनीतिक दल नाराज हो गये और एक साथ मिलकर उन्होंने 'साइमन कमीशन' का बहिष्कार किया। सन उन्नीस सौ तीस में कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई । तब तक इसके सारे मसविदे बेमानी हो चुके थे। इसके प्रकाशित होने से पहले अक्तूबर सन उन्नीस सौ उन्तीस में वाइसराय लार्ड इरविन ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि भारत के राजनीतिक झगड़े को हल करने का सबसे अच्छा उपाय है--एक सभा बुलाकर भारतीय नेताओं से अंग्रेजों की बातचीत करायी जाये। उन्होंने अंग्रेज सरकार की ओर से यह भी वक्तव्य दिया कि भारत की संवैधानिक प्रगति का लक्ष्य है 'डोमिनियन स्टेटस'--की प्राप्ति ।

दिसंबर सन उन्नीस सौ उन्तीस में पंडित जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। लाहौर के अधिवेशन में यह निर्णय लिया गया कि भारत का राजनीतिक लक्ष्य है--पूर्ण स्वराज्य । इसके थोड़े ही दिन बाद--बारह मार्च उन्नीस सौ तीस को गांधीजी ने ऐतिहासिक डांडी यात्रा की। यह 'सविनय अवज्ञा' का नया चरण था ।

इसी बीच लार्ड इरविन के अक्तूबर में दिये गये वक्तव्य के आधार पर अंग्रेज सरकार एक 'गोलमेज परिषद' बुलाने की योजना बना रही थी। मई उन्नीस सौ तीस

में वाइसराय ने यह घोषणा की कि लंदन में परिषद बुलायी जायेगी। ऐसा ही हुआ--- बारह नवंवर उन्नीस सौ तीस को परिषद बुलायी गयी और सम्राट जार्ज पंचम ने उसका उद्घाटन भी किया।

गांधीजी और श्री मोतीलाल नेहरू पहले ही घोषित कर चुके थे कि जब तक भारत को 'डोमिनियन स्टेटस' प्रदान नहीं किया जाता है, वे परिषद में भाग नहीं लेंगे। ''इस परिस्थिति में घनश्यामदासजी ने सोचा कि भारत की राजनीतिक स्थिति का सही चित्र वाइसराय के आगे प्रस्तुत किया जाये। इसके लिए उन्होंने भारतीय व्यापारिक प्रतिष्ठानों की ओर से 'फेडरेशन आफ इंडियन चैंबर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री' के मंच को माध्यम बनाकर वाइसराय को एक प्रतिवेदन दिया।''५१ सन उन्नीस सौ तीस के फेडरेशन के अध्यक्ष थे---लाला श्रीराम। जमाल मुहम्मद साहब उपाध्यक्ष थे। घनश्यामदासजी इसकी कार्यकारिणी के प्रमुख सदस्य थे।

इस प्रतिवेदन में कहा गया कि उस उद्घोषणा में, जो उस समय 'दिल्ली मेनिफेस्टो' के नाम से प्रसिद्ध हुई, स्पष्टता का अभाव है। उसमें न तो 'डोमिनियन स्टेटस' की ही ठीक परिभाषा की गयी है और न 'गोलमेज परिषद' के कार्यों की ही। फिर भी ''यदि ब्रिटिश केबिनेट सचमुच ही किसी तरह का समझौता चाहती है, तो जो बातें दिल्ली मैनिफेस्टों में उठायी गयी हैं, तुरंत स्वीकार कर लें।''५२

घनश्यामदासजी जानते थे कि गांधीजी को वाइसराय की सीमाओं का ज्ञान है, तभी उन्होंने वाइसराय से केवल ग्यारहसूत्रीय मांग की थी। प्रतिवेदन में घनश्यामदासजी ने वाइसराय से कहा, ''आप जैसे वाइसराय के शासनकाल में भी सेना और अध्यादेशों का होना ठीक नहीं लगता है। साथ ही महात्मा गांधी को भी, जिन्हें शांति का अग्रदूत कहा जा सकता है, जेल में रखा गया है।''५३

बीस मई उन्नीस सौ तीस को फेडरेशन द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें कहा गया कि ''गोलमेज परिषद की तरह कोई भी परिषद जो भारतीय संविधान की रूपरेखा पर चर्चा करने के लिए बुलायी गयी हो, विना गांधीजी के सहयोग के किसी भी ऐसे निर्णय पर नहीं पहुंच सकती जो भारतीयों को स्वीकार हो।''५४

---

५१. रेप्रेजेंटेशन टु दि वाइसराय बाई दि फेडरेशन आफ इंडियन चैंबर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री, १९३०, प्रकाशक—डी. डी. मुलहरकर, दिल्ली क्लाथ मिल
५२. वही
५३. वही
५४. वही

प्रतिवेदन के अंत में कहा गया, "जब तक सम्माननीय हल नहीं निकलता, वे इसी तरह आंदोलन करते रहेंगे। इस समय राजनीतिक दृष्टि से यही उचित है कि विध्वंस और विनाश को रोकने के लिए वाइसराय कारगर कदम उठाएं और भारत तथा ब्रिटेन दोनों देशों के हित के लिए उचित कार्य करें।"५५

इसके बाद लार्ड इरविन के साथ बातचीत के बाद 'गांधी-इरविन समझौता' पांच मार्च उन्नीस सौ इकतीस को हुआ। इस समझौते का प्रत्यक्षतः कोई लाभ नहीं हुआ, लेकिन इसके बाद ही अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस की सत्ता स्वीकार की और उसे देश की प्रतिनिधि संस्था मान लिया। अब अंग्रेज सरकार के सामने कांग्रेस से समझौता करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह गया। कांग्रेस ने भी इस समझौते के फलस्वरूप 'सविनय अवज्ञा' आंदोलन स्थगित कर दिया।

जिस समय समझौते के लिए गांधीजी और लार्ड इरविन में बातचीत चल रही थी, घनश्यामदासजी दिल्ली में ही थे। चूंकि उस समय बच्चे कलकत्ता में ही थे, वह कलकत्ता पहुंचने को उत्सुक थे। फरवरी, उन्नीस सौ इकतीस को उन्होंने पुत्र लक्ष्मी-निवासजी को लिखा, "प्रत्येक दिन मैं तूफान मेल में अपना रिजर्वेशन कराता हूं, लेकिन अब तक मैं यहां से जा नहीं पाया। मैं रोज सुबह गांधीजी से पूछता हूं, 'मुझे जाने की आज्ञा है ?' उनका छोटा-सा उत्तर होता है, 'अभी ठहरो।' इसीलिए मैं यहां हूं। मैं हमेशा उनके (गांधीजी) साथ जाता हूं। पहले रोज वाइसराय निवास में बड़ी चहल-पहल थी। वह दृश्य अद्‌भुत था। मेरी आंखों में आंसू आ गये। बापू वाइसराय के घर के भीतर जा रहे थे, वाइसराय जो यहां सम्राट का प्रतिनिधि है। बापू का दुबला-पतला शरीर, थोड़े से वस्त्रों में लिपटा, पांव में टूटी चप्पलें, कंधों पर फटा कंबल। धीमे चलते हुए उनके कदम और लगभग तीन हजार उत्साह-भरे कंठों से एक साथ उच्चरित 'महात्मा गांधी की जय।"५६

इसके बाद ही अठारह अप्रैल उन्नीस सौ इकतीस को लार्ड इरविन रिटायर होकर भारत से विदा हुए। उनकी जगह लार्ड विलिंगडन सत्रह अप्रैल उन्नीस सौ इकतीस को नये वाइसराय बने। उनके साथ 'गांधी-इरविन-समझौते' को लेकर गांधीजी के कुछ मतभेद थे। इस कारण गांधीजी दूसरी 'गोलमेज परिषद' में भाग नहीं लेना चाहते थे। किंतु घनश्यामदासजी की तीव्र दृष्टि यह देख रही थी कि गांधीजी के इस बहिष्कार का अंग्रेज यह मतलब लगा सकते हैं कि कांग्रेस पार्टी अपनी मांगों पर दृढ़

५५. रेप्रेजेंटेशन टु दि वाइसराय बाई दि फेडरेशन आफ इंडियन चेंबर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री, १९३०, प्रकाशक—डी. डी. मुलहरकर, दिल्ली क्लाथ मिल
५६. घनश्यामदासजी द्वारा लक्ष्मीनिवासजी को लिखा गया पत्र

नहीं है, तभी मालवीयजी के साथ मिलकर उन्होंने बापू को द्वितीय 'गोलमेज परिषद' में भाग लेने के लिए राजी कर लिया ।

राजनीतिक स्तर पर इतनी व्यस्तता के बावजूद घनश्यामदासजी अपने परिवार, और विशेषकर अपने मातृविहीन बच्चों को कभी नहीं भूले । उन्नीस जुलाई, सन उन्नीस सौ तीस को उन्होंने अपने छोटे लड़के बसंतकुमारजी को पत्र लिखा :

''प्रिय बसंत,

तुम्हारी और अन्य वानरों की चिट्ठियां मुझे मिलती रहती हैं, किंतु मुझे उत्तर देने की फुरसत नहीं मिली, इसलिए आज लिखने बैठा हूं । तुम्हें पता होगा, आजकल तुम्हारी उमर के लड़कों ने जगह-जगह सभाएं कायम की हैं और वे 'वानर सेना' कहलाती हैं । वानरों की सहायता से श्रीरामजी ने लंका-सा गढ़ ढा दिया था । तुम लोगों की सहायता से गांधीजी स्वराज लेने वाले हैं। इसलिए, हे बंदर मंडली, तुम्हें अभिवादन । अब तुम्हारा, सबों का नामकरण कर देता हूं । श्रीकृष्णजी तो हैं रिच्छराज जाम्बवंत । माधवजी हैं हनुमान । तुम हो अंगद ।''

इस तरह के पत्र लिखकर घनश्यामदासजी अपने किशोर वय के बच्चों को भावात्मक स्तर पर स्वतंत्रता-आंदोलन से जोड़ रहे थे । वे उनमें राष्ट्रीय चेतना के संस्कार जगा रहे थे। इसके लिए उन्होंने रामायण के पात्रों का ही प्रतीकात्मक उपयोग उचित समझा, ताकि बच्चे स्वतंत्रता की लड़ाई से अपने आपको सांस्कृतिक रूप से जुड़ा हुआ समझें । इस प्रकार बच्चों से दूर रहने पर भी वे उन्हें अपने राष्ट्रीय मानस से जोड़े रहे ।

इसी पत्र में उन्होंने कर्म के साथ ईश्वर में अदम्य विश्वास का भाव दिया है । इसके बाद उन्होंने ग्वालियर की यात्रा का विवरण देते हुए बच्चों को बताया कि परतंत्रता किस तरह मनुष्य को विवश, निर्बल और असहाय बना देती है । मोटर वाले की गलती पर भी उलटे बैलगाड़ी चलाने वाले 'सरकार मेरो कसूर भय गयो' कहकर गिड़गिड़ाने लगता है ।

गांधीजी का दरिद्रनारायण कौन है, यह उस गरीब आदमी का, जिसके पेट-पीठ एक हो गये हैं, चित्र खींचकर उन्होंने बच्चों को समझाने की कोशिश की है। पत्र के अंत में इन्हीं गरीबों की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने बच्चों के साथ नारे लगाये हैं-- 'महात्मा गांधी की जय' और 'वानर सेना की जय' ।

उन्तीस अगस्त उन्नीस सौ इकतीस को गांधीजी दूसरी 'गोलमेज परिषद' में

भाग लेने के लिए लंदन रवाना हो गये। वे कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि थे। घनश्यामदासजी और सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास इसमें व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में गये। घनश्यामदासजी यद्यपि व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, पर उस समय वे गांधीजी के विश्वासपात्र और व्यावहारिक रूप में उनके निजी सलाहकार थे।

'राजपूताना' जहाज से घनश्यामदासजी गांधीजी के साथ दूसरी 'गोलमेज परिषद' में भाग लेने के लिए रवाना हुए। इस यात्रा के दौरान लेखक घनश्यामदासजी ने जो कुछ लिखा है, विशेषकर उनकी डायरी के पृष्ठ, वह सब ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

घनश्यामदासजी ने इस 'गोलमेज परिषद' के संबंध में न केवल तथ्यपूर्ण सामग्री दी है, बल्कि उस पूरे काल और लोगों की मनःस्थिति का सजीव चित्रण किया है। साथ ही उनकी अपनी मनःस्थिति की एक झांकी भी परोक्ष रूप से डायरी के उन पृष्ठों में मिलती है।

गांधीजी भारतवर्ष से कुछ दिन बाहर रहेंगे—इस संबंध में पूरे देश में, खासकर बंबई में, काफी चहल-पहल थी। बंदरगाह से आधी मील की दूरी तक के सभी मकानों की छतें दर्शनार्थियों से खचाखच भरी थीं। चारों ओर जय-जयकार हो रहा था। घनश्यामदासजी को भी देखने के लिए लोग आतुर थे। घनश्यामदासजी ने अपनी डायरी में लिखा है, "बंगले से चलकर बंदर पर पहुंचा तो फोटो लेने वाले पागल, दर्जनों की तादाद में मुझ पर टूट पड़े।" घनश्यामदासजी को विदा देने के लिए उनके बड़े भाई रामेश्वरदासजी और छोटे भाई ब्रजमोहनदासजी दोनों आये थे। उस क्षण घनश्यामदासजी की मनःस्थिति कैसी थी? उनके ही शब्दों में "मैं तो विचित्र दशा में गोते खा रहा था।"

सचमुच उनके मन में अपने उत्तरदायित्व की कितनी बड़ी भावना होगी। परिषद में व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि बनकर जा रहे थे, लेकिन गांधीजी उनके साथ थे। उनके ऊपर न केवल गांधीजी की शारीरिक जिम्मेदारी थी, बल्कि समय-समय पर उन्हें महत्त्वपूर्ण सलाह देने की भी जिम्मेदारी थी। उन्हें इस बात का ठीक-ठीक अनुमान था कि सलाह के रूप में जो कुछ वे गांधीजी से कहेंगे, स्वतंत्रता-संग्राम पर उनका कितना असर पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त रिक्तता की एक भावना भी उनमें रही होगी। विदेश जाते

समय लोग अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियां पत्नी के कंधों पर डाल जाते हैं, लेकिन उनके लिए तो यह संभव नहीं था। महादेवी के देहावसान के बाद कौन था इतना अपना, जिस पर वे अपने दायित्व छोड़ आते ? उन्हें महसूस हुआ, जब वे लौटेंगे तो स्वागत के लिए सूने घर की दीवारें ही तो रहेंगी।

"ज्यों-ज्यों जहाज और किनारे के बीच अंतराल बढ़ता गया, त्यों-त्यों मन तेजी के साथ किनारे की ओर दौड़ लगाने लगा।"५७ जैसे कोई बार-बार पीछे पुकार रहा हो।

इस ऐतिहासिक यात्रा का दृश्य सचमुच मर्मस्पर्शी था।

जहाज चलते ही गांधीजी ने अपना 'असबाब' संभालना शुरू किया। घनश्यामदासजी से पूछताछ शुरू हुई। घनश्यामदासजी मीरा बेन की तरफ देखते और मीरा बेन उनकी तरफ। सार प्रबंध का भार मीरा बेन पर ही था।

गांधीजी ने पूछा, "इस ट्रंक में क्या है ?"

मीरा ने कहा, "बापू, इसमें आपके कपड़े हैं।"

"मेरे कपड़े हैं ? इतने बड़े ट्रंक में !"

"लेकिन यह भरा हुआ नहीं है।"—मीरा ने बताया।

गांधीजी बोले, "हां, तो तुम इसे भर देना चाहती थीं। यह नहीं सोचा कि हिंदुस्तान में मेरे कपड़े बिना ट्रंक के ही चलते थे ?"

गांधीजी का चेहरा लाल हो गया। सामान ज्यादा न था, किंतु एक पैसा भी अधिक खर्च हो, यह गांधीजी को असह्य था। इस बात पर वे घनश्यामदासजी को भी धमकाने लगे। अंत में तय हुआ कि थोड़ा-सा सामान छोड़कर बाकी अदन से वापस कर दिया जाये।

घनश्यामदासजी ने देखा, गांधीजी जहाज के अंतिम हिस्से के उस खतरनाक कोने पर बैठे हैं जहां कोई कभी नहीं बैठता। ऐसा गांधीजी ने क्यों किया, इसका उत्तर लेखक घनश्यामदासजी को तत्काल मिल गया, "यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।"

घनश्यामदासजी ने गांधीजी को वहां से हटाने के लिए काफी दौड़-धूप की। यहां तक कि कप्तान ने कहा, लेकिन गांधीजी टस-से-मस नहीं हुए। फिर मालवीयजी

५७. बिखरे विचारों की मरोटी, पृष्ठ २८४

की सहायता से उन्होंने प्रयत्न किया कि गांधीजी का डेक टिकट फर्स्ट में बदलवा दिया जाये। इसका नतीजा यह हुआ कि उन्होंने फर्स्ट क्लास की छत पर टहलना भी बंद कर दिया।

स्वेज में जहाज के पहुंचते ही घनश्यामदासजी को बसंतकुमारजी की एक चिट्ठी मिली। अभी देश छोड़े केवल सात दिन हुए थे। जाहिर है बच्चे, खासकर बसंतकुमार-जी, पिता को बहुत याद करते थे। उत्तर में जो पत्र घनश्यामदासजी ने चिरंजीव बसंत को लिखा, उसमें उन्होंने अपनी यात्रा की तमाम मनोरंजक घटनाओं को विस्तार से लिखा, ताकि बच्चों को ऐसा लगे कि पिता कहीं पास ही बैठे उनसे बातें कर रहे हैं।

'राजपूताना' जहाज की यात्रा में घनश्यामदासजी यह जानने को सर्वाधिक उत्सुक रहते थे कि महात्माजी लंदन पहुंचते ही क्या करेंगे। उन्हें पता था कि 'गोलमेज परिषद' में करीब सौ सदस्य हो गये हैं। सदस्यों को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन नहीं था कि यह परिषद हिंदुस्तान के प्रतिनिधियों की परिषद नहीं है। गांधीजी को छोड़कर 'प्रतिनिधि' कहे जाने वाले सभी सदस्य अंग्रेजों द्वारा मनोनीत थे। इस तरह वे सब अंग्रेज सरकार के चमचे थे। ऐसी हालत में अकेले गांधीजी क्या करेंगे, घनश्यामदासजी को इसी बात की चिंता थी।

इसके निदान में घनश्यामदासजी विचार करते रहे कि 'गोलमेज परिषद' के और सदस्य हाथी के दांत की तरह शोभा बढ़ाते रहेंगे, पर गांधीजी खाने के दांत की तरह मंत्रिमंडल एवं वहां के नेताओं से अलग मंत्रणा करेंगे। उन्हें भारत की दशा समझाएंगे। यदि वहां का मंत्रिमंडल अलग बात करने की इच्छा प्रकट न करे, तो गांधीजी फेडरल कमेटी में अपना वक्तव्य सुना देंगे और कहेंगे, मुझसे बहस करनी हो तो करो। "इतने पर भी यदि गांधीजी को लगा कि सब धान बाईस पसेरी की चाल चली जा रही है तो गांधीजी तुरंत वापस चले आएंगे। मेरा अपना मत है कि जाते ही गांधीजी वापस आने का निर्णय सुना देंगे। मंत्रिमंडल गांधीजी से अपनी अलग मंत्रणा करेगा और शेष में गांधीजी ही राउंड टेबल कांफ्रेंस बन जाएंगे।"[५८]

घनश्यामदासजी की इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि इस परिषद में जाने का उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि वहां जाकर वे गांधीजी के नैतिक मनोबल को हर तरह से बढ़ावा दे सकें। उन्होंने अपने मन में यह तय कर लिया था कि उनकी यही कोशिश रहेगी कि अंग्रेज गांधीजी के विचारों को सही संदर्भों और सही अर्थों में समझ लें।

५८. डायरी के पन्ने, बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ २८९

नौ सितंबर उन्नीस सौ इकतीस को घनश्यामदासजी ने गांधीजी के साथ जहाज की यात्रा समाप्त कर ग्यारह सितंबर को ट्रेन से यात्रा की। पहले मार्सेल्स पहुंचे और वहां से रेलगाड़ी द्वारा पेरिस । पेरिस से बुलों। वहीं इंगलिश चैनेल पार किया और वे लोग एक बजे फोकस्टन पहुंचे । यहां दो सरकारी गाड़ियां आयी हुई थीं—एक में गांधीजी बैठे और दूसरी में मालवीयजी तथा घनश्यामदासजी । पुलिस ने दोनों गाड़ियों को अलग-अलग रास्तों से लंदन के लिए रवाना किया । यह जानते हुए भी कि गांधीजी रेल से नहीं आएंगे, हजारों लोग विक्टोरिया स्टेशन पर जमा थे । वर्षा हो रही थी, तब भी बहुत से लोग सभा-भवन के बाहर गांधीजी की वाट जोह रहे थे ।

लंदन के सभा-भवन में गांधीजी का स्वागत हुआ । इस समारोह में लगभग डेढ़ हजार लोग उपस्थित थे । उनमें छह सौ के करीब भारतीय थे । गांधीजी ने अपना पहला व्याख्यान दिया । व्याख्यान समाप्त होते ही जनता ने तालियों की गड़गड़ाहट से उनका स्वागत किया । उसी शाम घनश्यामदासजी ने अपनी डायरी लिखी :

"गांधीजी का भाषण तो अपूर्व था । लोग बिलकुल मोहित हो गये । बैठे-बैठे हजारों हैटधारियों के बीच कमली ओढ़े गांधीजी का प्रवचन हुआ। ऐसा लगता था मानो अंग्रेजों का ईसामसीह बोल रहा हो । गांधीजी ने कहा, 'तुम्हारी सरकार इस समय अपने आय-व्यय का हिसाब बराबर कर रही है, इसलिए बड़ी व्यस्त है । किंतु जब तक हमारा हिसाब बराबर न करोगे, तब तक तुमने कुछ नहीं किया, ऐसा समझना होगा । मैं देश-भक्त हूं, किंतु मेरी देश-भक्ति जीवन-भक्ति है । मैं सबका भला चाहता हूं ।'

"स्वागत के बाद गांधीजी अपने डेरे गये, जो मजदूर मुहल्ले में है । पंडितजी आर्य-भवन में आ गये । सभा-भवन से निकले, तो मालवीयजी गद्‌गद हो गये थे । एकांत में मुझसे कहते थे, 'गांधीजी के शरीर की मुझे बहुत चिंता है, वे कपड़े नहीं पहनते, कहीं इन्हें कुछ हो न जाये । मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि रोग हो तो मुझे, मौत आये तो मुझे आये ।" मैंने कहा, 'पंडितजी, आप अपनी ही चिंता करें, इनकी नहीं ।' पंडितजी बंबई छोड़ने के बाद काफी दुर्बल हो गये हैं और ढीले होते जाते हैं । इनके शरीर की मुझे तो बहुत चिंता है ।"[५९]

घनश्यामदासजी जानते थे कि गांधीजी के अंतर में सत्य की अग्नि प्रज्ज्वलित है—उस तेज के सम्मुख तो विलायती मौसम की ठंड भी प्रभावहीन है । प्रथम 'गोलमेज

५९. डायरी के पन्ने, बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ २९६, २९७

परिषद' के पूरे समय कांग्रेस में पूरी बगावत की स्थिति थी, क्योंकि उसमें महात्मा गांधीजी जैसे व्यक्ति नहीं थे। इस दूसरी 'गोलमेज परिषद' की बैठक में पुराने सभी उल्लेखनीय सदस्य वापस आ गये थे। साथ ही नये सदस्यों का एक महत्त्वपूर्ण अंग भी था। महात्मा गांधी के अतिरिक्त सर मुहम्मद इकबाल, कवि डा० एस० के० दत्त—एक विशिष्ट ईसाई नेता, घनश्यामदास बिड़ला—एक समृद्ध उद्योगपति, पंडित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू और सर अली इमाम जैसे प्रख्यात देशभक्त थे। ब्रिटिश दल में लगभग वही पुराने लोग थे। परिषद की बैठक से थोड़ा पहले 'लेबर सरकार' की जगह 'नेशनल पार्टी' सत्ता में आ गयी थी, लेकिन अभी भी मैक्डोनल्ड ही प्रधानमंत्री थे। बेजवुड बेन की जगह सर सैमुअल होर भारतीय मामलों के मंत्री हो गये थे।

दो अन्य घटनाओं का प्रभाव इस कांफ्रेंस पर पड़ा था। पिछली जून में ब्रिटिश सरकार ने पार्लियामेंट को यह सूचना दी थी कि भारत सरकार की आर्थिक अवस्था, विश्वव्यापारी मंदी और नये विधान के अंतर्गत इसके आर्थिक अनिश्चय के कारण इतनी संकटपूर्ण हो गयी थी कि सरकार को शायद पार्लियामेंट से कहना पड़े कि यदि आवश्यकता हुई तो भारत सरकार को आर्थिक सहायता देनी पड़ेगी। उनका कहना था कि—"वैधानिक समस्या के हल होने तक देश की आर्थिक मान्यता बनी रहे।" ६०

अंततः आर्थिक सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ी, लेकिन ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इस बात पर सिर्फ इसलिए जोर दिया ताकि इसका प्रचार हो सके कि भारत आर्थिक रूप से बहुत कमजोर है।

दूसरी घटना थी, स्टेट्यूट आफ वेस्टमिन्स्टर, जो पार्लियामेंट के अंतिम दिनों में पारित की गयी थी। इससे सदस्यों को 'डोमिनियन स्टेटस' क्या है, इसे ठीक तरह समझने में मदद मिली।

कांफ्रेंस की मुख्य कार्रवाई दो समितियों में हो रही थी—एक थी फेडेरल स्ट्रक्चर कमेटी और दूसरी माइनारिटीज कमेटी। गांधीजी इन दोनों समितियों के सदस्य थे। इससे यह आशा की जाने लगी कि उनके नेतृत्व से कांफ्रेंस अपनी नीतियों से दूर नहीं हटेगा और कांग्रेस की नीति के अनुसार कोई-न-कोई समझौता अवश्य हो जायेगा। पर होने लगा कुछ और ही, कांफ्रेंस के बाहर समाज और आम जनता को गांधीजी ने बहुत प्रभावित किया, लेकिन कांफ्रेंस में उनकी कार्रवाई उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रही।

६०. हनसार्ड सी सी/४ सी सी एल आई बी (१९३१) ७६९

उन्होंने अपने पहले ही भाषण में इस बात पर बल दिया कि वह पूरे भारत के प्रतिनिधि हैं। उन्होंने कहा कि कांग्रेस एक राजनीतिक दल ही नहीं, बल्कि एक राष्ट्रीय संगठन है।

पंद्रह सितंबर उन्नीस सौ इकतीस की शाम को भोजन के बाद घनश्यामदासजी, महात्माजी के साथ किंग्स्ले हाल पहुंचे। घनश्यामदासजी को खासकर तीन बातों के संबंध में महात्माजी के विचार जानने थे। पहली बात यह थी कि जहां गांधीजी ठहरे हुए थे, वह स्थान बहुत छोटा था। वहां आराम भी नहीं था। बहुत सारे लोग मकान के सामने खड़े जय-जयकार करते रहते। घनश्यामदासजी को लगा, इस वातावरण में गांधीजी को पूरा आराम और पूरी शांति नहीं मिल सकती। वे चाहते थे, गांधीजी को वहां से हटाकर किसी उचित स्थान पर ले जाया जाये। दूसरा प्रश्न, स्टेनो का था। घनश्यामदासजी जानना चाहते थे कि गांधीजी को कब से उसकी जरूरत पड़ेगी। तीसरा प्रश्न था उचित सवारी का। गांधीजी के यातायात के लिए कोई पक्की व्यवस्था अभी तक नहीं थी।

घनश्यामदासजी नहीं चाहते थे कि इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों में गांधीजी का अमूल्य समय नष्ट हो। इसीलिए उन सब बातों की चिंता उन्होंने अपने ऊपर ले ली।

अगले दिन कांफ्रेंस में जाने से पहले गांधीजी घनश्यामदासजी के साथ भारतीय मामलों के मंत्री सर सैमुअल होर से मिले। गांधीजी ने होर को स्पष्ट शब्दों में कहा कि एक समय था जबकि वह अंग्रेजी शासन को भारत के लिए हितकर समझते थे। उसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, "मेरा दावा है कि संसार में शायद ही कोई दूसरा मनुष्य होगा जिसने मेरी तरह पवित्र और निस्वार्थ भाव से तुम्हारा साथ दिया हो। फिर क्या कारण है कि मैं आज दोस्त से दुश्मन बन गया हूं और तुम्हारी जड़ सींचने की बजाय उसे खोदने में दिन-रात लगा हुआ हूं।"

होर ने गांधीजी की बातें ध्यान से सुनीं। उसका रुख गांधीजी को अच्छा लगा। इसके बाद और कई लोग उनसे मिले और सभी प्रभावित हुए।

कांफ्रेंस में गांधीजी का जो भाषण हुआ, उसकी बहुत चर्चा हुई और लोगों ने सराहना की। जब गांधीजी से घनश्यामदासजी ने उस भाषण की तैयारी के संबंध में पूछा तो गांधीजी ने बताया कि उन्होंने उसके लिए कोई तैयारी नहीं की थी। घनश्यामदासजी ने मान लिया कि भाषण देते समय गांधीजी किसी 'दैवी अनुप्रेरणा' के वशीभूत थे।

इस भाषण के बाद इंग्लैंड के अखबार जैसे 'डेली मेल' और 'मैनचेस्टर गार्जियन' महात्माजी के लेख छापने के लिए उत्सुक हो उठे। एक ग्रामोफोन कंपनी वाला उनसे प्रवचन के लिए अनुरोध करने लगा। महात्माजी आत्मविज्ञापन नहीं चाहते थे और उन्होंने इस सबके लिए अपनी स्वीकृति नहीं दी। बहुत कहने-सुनने के बाद ही उन्होंने प्रवचन के लिए हामी भरी।

गांधीजी की सुरक्षा के लिए खुफिया पुलिस तैनात थी। उन लोगों ने गांधीजी से अनुरोध किया कि वे कहीं भी जाएं तो उसकी पूर्व सूचना उन्हें दे दें। उनका कहना था, इस देश में आकर यदि गांधीजी का बाल भी बांका हुआ तो उनके मुख पर सदा के लिए कालिख पुत जायेगी। एक बार चर्चिल ने 'अधनंगे' फकीर की उपाधि देकर गांधीजी का मजाक उड़ाया था। आज वही गांधी चर्चिल के ही देश में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व लिए उपस्थित थे।

गांधीजी का सम्मान होते देखकर घनश्यामदासजी को बेहद खुशी हुई। उस समय उनकी आयु सैंतीस वर्ष की थी। अपनी आंखों के सामने वे इतिहास को साकार होते देख रहे थे। चौबीस सितंबर उन्नीस सौ इकतीस को गांधीजी ने इंग्लैंड के हाउस आफ कामंस में भाषण दिया। उसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारतवासी 'पूर्ण स्वराज्य' चाहते हैं। अंग्रेजों से भारतवासियों की कोई दुश्मनी नहीं, वे सिर्फ अपनी आजादी चाहते हैं। अंग्रेजों को भारत से निकालना उनका उद्देश्य नहीं है। वे सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि अंग्रेज शासक बनकर नहीं, सहभागी बनकर रहें। सेना और परराष्ट्र नीति की चर्चा करते हुए गांधीजी ने स्पष्ट किया कि अगर इन दोनों शक्तियों को अपने हाथ में रखकर अंग्रेज भारत को 'औपनिवेशिक स्वराज्य' देते हैं तो वह बेमानी है, क्योंकि सैनिक-बल का दबाव भारत को सदा पराधीन रखेगा।

गांधीजी ने भारतीय अर्थनीति की भी चर्चा की। यह घनश्यामदासजी को पसंद नहीं आयी। उसे लेकर गांधीजी के साथ उनकी जोरदार बहस हुई। अंत में गांधीजी ने मान लिया कि अब आगे जब भी आर्थिक समस्याएं—जैसे 'गोल्ड स्टेंडर्ड' और 'स्टर्लिंग' इत्यादि पर चर्चा होगी, तो घनश्यामदासजी से पहले ही सलाह कर लेंगे।

इस गोलमेज परिषद के दौरान महात्माजी का इंग्लैंड के प्रायः सभी बड़े-बड़े नेताओं से बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ।

प्रधानमंत्री मैक्डोनल्ड ने गांधीजी से अजीब बातें पूछीं, जैसे "आप बार-बार यही पूछते हैं कि अंग्रेज आपको क्या देंगे ? पहले आप बताइए, आपमें क्या-क्या लेने की ताकत है ?"

उसने सोचा था कि इस चुनौती से गांधीजी घबरा जाएंगे, लेकिन जिस व्यक्ति के अंदर सत्य का अदम्य साहस होता है, उसे चुनौती देना हंसी-खेल नहीं है। गांधीजी ने उत्तर देते हुए एक महत्त्वपूर्ण बात कही थी, "तुम मुझे वापस जाने दो, मैं जो लेना चाहूंगा, ले लूंगा।" इस उत्तर ने प्रधानमंत्री का मुंह बंद कर दिया।

घनश्यामदासजी जानते थे, अंग्रेज हारकर भी नहीं हारने वाले हैं, क्योंकि वे गांधीजी की तरह नैतिक मूल्यों के लिए लड़ाई नहीं कर रहे थे। वे लड़ रहे थे अपने उस साम्राज्य की रक्षा के लिए, जहां सूरज कभी अस्त नहीं होता था। उसे बचा रखने के लिए वे अपने सारे सिद्धांत और जीवन-मूल्य दांव पर लगा सकते थे।

गोलमेज परिषद में आये हुए अन्य सदस्यों के चरित्र का घनश्यामदासजी ने सूक्ष्म अध्ययन किया। घनश्यामदासजी ने उन्हें देखकर जो कुछ अनुभव किया, वह आज भी उतना ही सच है, जितना उस समय था। वे सत्ता की 'हां में हां' मिलाने में ही अपना कल्याण मानते हैं। जरूरत पड़ने पर जीवन के सारे सिद्धांत और मूल्यों को भुला देते हैं। अंतिम लक्ष्य से वे भटक जाते हैं और छोटी-छोटी बातों में उलझकर अपना रास्ता भूल जाते हैं। उनके पास विचार-ही-विचार होते हैं। किसी भी ठोस काम में उनका विश्वास नहीं। छोटे, महत्त्वहीन प्रश्न—जैसे अल्पसंख्यकों की समस्या को लेकर अपने अंतिम लक्ष्य स्वराज्य को भूल जाना, और बिना किसी ठोस कार्यक्रम की रूपरेखा बनाये केवल 'विचारों' की बात करना आदि।

उन सब बातों को घनश्यामदासजी के विवेक ने अच्छी तरह तौला, उन्होंने पाया, गांधीजी एक आदर्श पुरुष हैं। वह अपना लक्ष्य कभी नहीं भूलते, लेकिन उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने मूल्य और अपने सिद्धांत कभी नहीं छोड़ते और सत्य की शक्ति को ही अपनी आत्मिक ऊर्जा मानते हैं।

सर तेजबहादुर सप्रू और डा० एम० आर० जयकर अंग्रेजों की दृष्टि में महत्त्व-पूर्ण सदस्य थे। ये 'माडरेट' नेता अंग्रेजों के काफी नजदीक थे। संभवतः इसीलिए उन लोगों ने गांधीजी को इस विषय में कोई सहायता नहीं दी। यह बात घनश्यामदास-जी को उचित नहीं लगी। पर घनश्यामदासजी को ऐसी स्थिति का अंदेशा था और वे इसके लिए तैयारी करके गये थे। उन्होंने 'फेडेरल स्ट्रक्चरल' कमेटी की रिपोर्ट की १८वीं, १९वीं और २०वीं धाराओं के बारे में अपना मत निश्चित कर रखा था और बापू को उसके बारे में पूरी तरह अवगत करा रखा था। अर्थ विभाग के नियंत्रण के मापदंड के बारे में उन्होंने अपना दृष्टिकोण निश्चित कर लिया था। उनकी राय

में १८वीं, १९वीं और २०वीं धाराओं में निम्नलिखित परिसीमाएं लगायी जाएं :

१. रिजर्व बैंक की स्थापना,

२. पत्र-मुद्रा या टंक वर्ग विधान में संशोधन करने से पहले गवर्नर जनरल की स्वीकृति,

३. स्थायी रेलवे बोर्ड की स्थापना,

४. ऋण-व्यय, ऋण-व्यय के लिए शोधन कोश, वेतन और पेंशन और सैनिक विभाग के लिए धन की व्यवस्था करने हेतु संघनित कोष भार (कंसोलीडेटेड पेड चार्ज) का संगठन,

५. जब गवर्नर जनरल समझें कि जो ढंग अपनाये जा रहे हैं, उनके कारण भारत की साख को गहरा धक्का लगेगा तो उसे बजट संबंधी और उधार लेने की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने का अधिकार।

इन अधिकारों के अंतर्गत समूचा आर्थिक क्षेत्र आ जाता था। इसके बारे में घनश्यामदासजी ने भारतीय सदस्यों, खासकर तेजबहादुर सप्रू और डा० जयकर को आगाह किया कि इन धाराओं के द्वारा भारतवर्ष को कोई उत्तरदायित्व नहीं मिलता।

घनश्यामदासजी की ये बातें गांधीजी, पंडित मदनमोहन मालवीय, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास तो समझ रहे थे, पर जयकर और सप्रू, जिनकी वार्ता को अंग्रेज ज्यादा महत्त्व देते थे, इन बातों को जैसे समझना ही नहीं चाह रहे थे। घनश्यामदासजी का व्यक्तित्व इतना सबल था कि वे जान रहे थे कि उन बातों को ठीक तरह से न समझना और परिषद में उन्हें समुचित रूप से न प्रस्तुत कर पाने का दुष्परिणाम क्या होगा? इसलिए उन्होंने उनके सामने अर्थ विभाग का पूरा ढांचा ही प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने अथक परिश्रम से सारे आंकड़े इकट्ठे करके बताया कि रेलवे बजट को मिलाकर अर्थ विभाग की आय और उसका व्यय लगभग एक अरब तीस करोड़ है। इसके अलावा अर्थ विभाग के जिम्मे भारतीय मुद्रा और उसके विनिमय की भी देखभाल करना है। उन्होंने यह भी समझाया कि रिजर्व बैंक हमारा नहीं होगा। व्यवस्थापिका का इसलिए उस पर कोई अधिकार नहीं रहेगा। रेलवे बोर्ड की जो स्थापना हो रही है, उसमें भी हमारा हाथ नहीं रहेगा।

इस तरह 'अंक से अक्षर-ज्ञान' तक जाने वाले घनश्यामदासजी ने हिसाब लगाकर दिखा दिया, "अब हमारे पास रह गये नब्बे करोड़। इनमें से पैंतालीस करोड़ सेना के लिए चाहिए, पंद्रह करोड़ ऋण-व्यय के लिए और पंद्रह करोड़ रुपये पेंशन और

अन्य मदों के लिए चाहिए। इस प्रकार पचहत्तर करोड़ रुपये संघनित कोषभार के लिए चाहिए। इस मद का आय पर पहला दावा रहेगा। इस प्रकार हमारे पास एक सौ तीस करोड़ में से केवल पंद्रह करोड़ रह गये। जिस किसी को भी एक सौ तीस करोड़ की आय पर एक सौ पंद्रह करोड़ व्यय का सर्वप्रथम अधिकार रहेगा, वह हमारी बजट संबंधी और उधार लेने की व्यवस्था में पग-पग पर हस्तक्षेप करना चाहेगा। यही कारण है कि गवर्नर जनरल को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया है। भारत में अनिश्चित मौसमों को देखते हुए बजट में पांच से दस करोड़ का उतार-चढ़ाव अवश्यंभावी है। इसलिए कदम-कदम पर गवर्नर जनरल के हाथ की कठपुतली बनने को बाध्य होना पड़ेगा। मेरी राय में इन तीन धाराओं के अंतर्गत लोकप्रिय अर्थ मंत्री को किसी प्रकार का नियंत्रण संबंधी अधिकार नहीं दिया गया है। मेरा कहना है कि ये धाराएं रिजर्व बैंक तक ही सीमित नहीं हैं, जैसा कि आपका कहना है, बल्कि समूचे क्षेत्र पर परिव्याप्त हैं।''६१

इतना ही नहीं, घनश्यामदासजी कांफ्रेंस के बाहर इन भारतीय सदस्यों के साथ उठते-बैठते, खाते-पीते, कहते रहते थे कि फेडेरल स्ट्रक्चरल कमेटी की अनेक धाराएं ''संघनित कोष-भार के संगठन का स्वाभाविक परिणाम हैं। इसके दो विकल्प हो सकते हैं—या तो संघनित कोषभार को सुझायी गयी मात्रा की अपेक्षा कम कर दी जाये अथवा गवर्नर जनरल को हमारी चूक होने तक हस्तक्षेप करने का अधिकार न रहे। मेरी राय में तो हमें इन दोनों विकल्पों की मांग करनी चाहिए।''६२

घनश्यामदासजी ने कांफ्रेंस के अंग्रेज सदस्यों से भी इस विषय पर बातचीत की थी। कुछ सदस्यों को वे अपने पक्ष में भी ले आये थे, परंतु इस बारे में जब सप्रू और जयकर से उन्होंने कहा तो अपनी ओर से उन दोनों ने कोई भी उत्साह नहीं दिखाया।

लंदन में तीस सितंबर के दिन की डायरी में घनश्यामदासजी ने लिखा, ''हिंदू-मुस्लिम प्रश्न पर अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण विचार नहीं हुआ और न कोई इसका हल सामने आया। आशा भी कम है।

''सोमवार (अट्ठाईस सितंबर सन उन्नीस सौ इकतीस) को कांफ्रेंस की अल्पसंख्यक-दल-कमेटी की मीटिंग थी। प्रधानमंत्री ने उसमें प्रजा-प्रतिनिधियों को इस क्रम से बैठाया—सबसे पहले श्रीमती नायडू, फिर गांधीजी, फिर मालवीयजी, फिर मैं।

---

६१. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १६४
६२. वही

"प्रधानमंत्री का भाषण मुझे अच्छा नहीं लगा, उसमें ईमानदारी नहीं थी, खुशामद काफी थी ।"६३

पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास की गोलमेज परिषद संबंधी फाइलों६४ से पता चलता है कि घनश्यामदासजी के विरुद्ध इस परिषद में काफी प्रचार किया गया था । "इसका फल यह हुआ कि मेरा अविश्वास किया जाता है । हां, जब से कांफ्रेंस का मेंबर बना हूं, तब से लोगों से मिलना-जुलना ज्यादा होता है ।"६५

अपने प्रति कुप्रचार और अविश्वास के बावजूद, घनश्यामदासजी लगातार भारत के हित में और परिषद की बैठकों को अधिक-से-अधिक सार्थक बनाने के लिए तमाम तरह के लोगों से मिलते रहे। इनमें लार्ड लोदियन६६, बेजवुड बेन६७, सर हेनरी स्ट्राकोश६८, सर सैमुअल होर, सर एडवर्ड बेंथल६९ मुख्य थे ।

इन लोगों से बराबर संपर्क रखने में उनका उद्देश्य था कि अंग्रेजों के दिल और दिमाग में क्या बातें चल रही हैं, वे क्या योजनाएं बना रहे हैं, इसकी पूरी जानकारी मिलती रहे। वे महात्मा गांधी को उन तथ्यों से अवगत कराते जाएं । उन्हें ऐसा लग रहा था कि इस परिषद में कुछ होना-जाना नहीं है । अंग्रेज बड़ी चतुराई से भारतीयों के मतभेदों का लाभ उठाकर उन्हें बैरंग वापस भेज देंगे । घनश्यामदासजी को यह विश्वास हो चला था कि अंग्रेजों का ख्याल है कि नये चुनाव में कंजरवेटिव बड़ी तादाद में आ जाएंगे और फिर दमन-चक्र आरंभ हो जायेगा । इस सिलसिले में घनश्यामदास-जी जब हेरोल्ड लास्की७० से मिले तो उन्हें पता चला कि वहां भयंकर स्थिति पैदा होने वाली है । एक दिन पहले वहां एक जुलूस निकला था, जिस पर पुलिस की लाठियां बरसी थीं । कम्युनिस्ट पार्टी, जो भारत के प्रति संवेदना रखती है, जोर पकड़ती जा रही है।

सैमुअल होर से महात्मा गांधी की बातचीत के दौरान घनश्यामदासजी हमेशा उपस्थित रहे । करेंसी और एक्सचेंज के संबंध में वे महात्माजी को एक विशेषज्ञ की तरह सलाह देते रहे ।

६३. डायरी के पन्ने, बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ ३०६
६४. पी. डी. फाइल नं. १३०-३१२, नेहरू म्यूजियम लायब्रेरी
६५. डायरी के पन्ने, बिखरे विचारों की भरांटी, पृष्ठ ३०६
६६. अमरीका के तत्कालीन ब्रिटिश राजदूत, भारतीय राजनीति के अच्छे ज्ञाता
६७. मजदूर मंत्रि-मंडल में भारत-सचिव, पार्लियामेंट के पुराने सदस्य
६८. अर्थशास्त्री और भारत के सचिव सलाहकार, व्यवसायी
६९. कलकत्ते की बर्ड कंपनी के मालिक, ब्रिटिश व्यापारियों के प्रतिनिधि
७०. लंदन विश्वविद्यालय में राजनीति के अध्यापक और ब्रिटेन के एक प्रसिद्ध विद्वान

एक अक्तूबर उन्नीस सौ इकतीस को अल्पसंख्यक दल कमेटी की फिर बैठक थी। महात्माजी ने मुसलमान प्रतिनिधियों से कहा, "मैं साफ-साफ बता दूंगा कि मौजूदा हालत में समझौता मेरे बस की बात नहीं है। अगर कुछ नहीं होता तो मैं कांफ्रेंस से हट जाता हूं।" इस पर लोगों ने आग्रह किया कि महात्माजी समझौते के लिए एक छोटी कमेटी बना दें। इस तरह फिर एक सप्ताह के लिए कमेटी का कार्य स्थगित हो गया। समझौते की कमेटी बनी, घनश्यामदासजी भी उसके सदस्य थे।

घनश्यामदासजी ने गांधीजी से कहा, "ऐसी बीसों कमेटियां पहले बैठ चुकी हैं। अंसारी के बिना आप तो कुछ कमोबेश करने वाले नहीं। अन्य लोगों से तो अंतकाल तक भी समझौता नहीं होने का है।"

महात्माजी बोले, "यह कमेटी तो मुझे नीचा दिखाने के लिए बनायी गयी है। यह जानते हुए भी मैंने इसका संचालन करना स्वीकार किया है।"

चार अक्तूबर को बेंथल से दिन में भोजन के समय घनश्यामदासजी की देर तक बातें हुईं।

घनश्यामदासजी ने बेंथल से कहा, "हम लोगों का ख्याल है कि कांफ्रेंस के कारण समय की बर्बादी हो रही है। सरकार ने इसे अपने खुशामदी टट्टुओं से भर दिया है। इस तरह कुछ भी काम करना असंभव है। अगर सचमुच समझौता करना चाहते हो तो पहले मूल बातें निश्चित हो जानी चाहिए कि तुम कहां तक आगे बढ़ने को तैयार हो।"

बेंथल ने कहा, "ऐसे काम में अधीर होना ठीक नहीं। साल भर भी इस काम के लिए थोड़ा समझना चाहिए।"

घनश्यामदासजी बोले, "साल भी लगे तो परवाह नहीं, बशर्ते कि सच्चाई हो, समझौते की पूरी ख्वाहिश हो।"

बेंथल ने उत्तर दिया, "मैं यह मानता हूं, पर जहां तुम्हारी ओर से कानून द्वारा हमें बहिष्कृत करने की बातें होती हैं, वहां समझौता कैसे हो?"

इस तरह बेंथल और घनश्यामदासजी के बीच कांग्रेस वर्किंग कमेटी की रिपोर्ट, भारतवासियों और उनके उद्योग-धंधे की रक्षा, फौज के बारे में अंग्रेजों की राय, भारत सरकार का सालाना बजट, रेलवे बोर्ड की स्थापना, देशी नरेश और ब्रिटिश भारत की समस्याओं पर बातचीत हुई।

छह अक्तूबर उन्नीस सौ इकतीस की शाम को इंडिया आफिस में सर हेनरी स्ट्राकोश के साथ एक बैठक हुई। सभापति का आसन पहले तो भारत सचिव सर सैमुअल होर ने ग्रहण किया, पर ब्रिटिश मंत्रिमंडल की मीटिंग के कारण वह सर

रेजिनाल्ड मेंट को अपना पद देकर चले गये। उस बैठक में गांधीजी, घनश्यामदासजी, पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, मोहम्मद अली जिन्ना, सर मानिकजी, सर फिरोजशाह सेठना, के० टी० शाह, प्रोफेसर जोशी, रंगास्वामी आयंगर आदि मौजूद थे।

स्ट्राकोश की दलील थी कि अगर एक्सचेंज रेट एक-छह स्टर्लिंग पर न बांध दिया गया होता, तो न जाने लुढ़कते-लुढ़कते यह कहां जाकर रुकता और न जाने सरकार को कहां तक नोट छपाकर अपना काम चलाना पड़ता। इस पर घनश्यामदास-जी ने पूछा, "आखिर ठहराने के लिए तुम्हारे पास साधन क्या है ?"

स्ट्राकोश निरुत्तर रह गये।

पांच नवंबर उन्नीस सौ इकतीस को गांधीजी एवं घनश्यामदासजी के साथ गोलमेज परिषद के सारे सदस्य सम्राट जार्ज पंचम के मेहमान थे। उनकी कुल संख्या करीब चार सौ थी। ज्यादातर लोग देशी पोशाक में थे। घनश्यामदासजी ने लिखा है, "मैं तो देशी पोशाक ले ही नहीं गया था, इसलिए 'चिमनी' हैट ओढ़कर ही गया था।"

बातचीत में मुख्य भाग सम्राट का ही था। गांधीजी हंसते रहे, बोले बहुत ही कम।

घनश्यामदासजी जैसे हर क्षण एक जागरूक दर्शक के रूप में गोलमेज परिषद की सारी स्थितियों को परख रहे थे। उनके लिए गांधीजी का सम्राट से मिलना, भारतीय राष्ट्रीयता की विजय थी। उनकी दृष्टि में यह पहला अवसर था कि इस तरह एक 'अर्धनग्न' मनुष्य और साथ में गांधी-टोपी पहने महादेवभाई, ब्रिटिश सम्राट से मिले। मिलन के उन क्षणों में घनश्यामदासजी की दृष्टि ने ब्रिटिश चरित्र को अच्छी तरह परख लिया। "अंग्रेज बनिये हैं, स्वभाव से ही संग्राम-प्रिय नहीं। लेकिन जब उनके व्यापारिक हित पर चोट पड़ती है तो फिर वे हथियार उठा लेने में हिचकते नहीं।"

घनश्यामदासजी ने देखा, गांधीजी प्रिंस आफ वेल्स के प्रति उदासीन हैं, लेकिन फिर भी सम्राट का व्यवहार उनके प्रति सौजन्य से भरा है। यह सौजन्य ब्रिटिश चरित्र की एक अनोखी विशेषता है, जिसके बल पर ब्रिटिश जाति के लोग सहज ही दूसरों पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं।

घनश्यामदासजी की भूमिका राजनीति की इस शतरंज में बहुत महत्त्वपूर्ण रही। वे ब्रिटिश और भारतीय दोनों चरित्रों को 'अंक' की तराजू से तौलते रहे। राजपूतों की यह खूबी रही है। उनके इतिहास में इस तरह के उदाहरण मिलते हैं। "महाराणा



उदयपुर ने अलवर-न
ठाकुर साहब' ही क
तक कहा। मरते स
रहे।"७१

उन्होंने बारह न
करीब दो महीने हो
यह भी पता नहीं है
हम लोग कितने निक
सब लोग अपना-अप

घनश्यामदासजी
विजय हुई। सोलह न
उन्होंने कहा, "सारी

घनश्यामदासजी
से इकरारनामा करके

बेंथल ने कहा,
तरह से दरख्वास्त की
मिलना चाहिए।"

घनश्यामदासजी
गांधीजी के समय घनश
पर कहीं भी कोई बात
के स्वराज्य-प्राप्ति की

सत्ताईस नवंबर
विधान बनने में न जाने
था, पूरा हो चला था।

तीस नवंबर, उन्नी
दासजी ने जो भाषण
उन्होंने पूरे अधिवेशन
सम्मेलन में अपने सहक
के साथ भारतीय वाणि

७१. बिखरे विचारों की भ

उदयपुर ने अलवर-नरेश को कभी 'महाराज' कहकर संबोधित नहीं किया। 'अलवर ठाकुर साहब' ही कहते रहे। अंग्रेज सरकार ने तोपों की सलामी दी, 'हिज हाइनेस' तक कहा। मरते समय महाराज जयपुर ने ढिलाई कर दी, मगर राणा अकड़े ही रहे।"७१

उन्होंने बारह नवंबर की अपनी डायरी के पृष्ठ में दर्ज किया, "आज यहां आये करीब दो महीने हो गये और हम लोग एक तिल भी आगे नहीं बढ़े हैं। क्या होगा, यह भी पता नहीं है। 'गोलमेज परिषद' का यह दो महीने का इतिहास दर्दनाक है। हम लोग कितने निकम्मे हैं, यह लोगों ने यहां साबित कर दिया। ऐक्य तो है ही नहीं। सब लोग अपना-अपना मान बढ़ाने की फिक्र में हैं।"

घनश्यामदासजी की दृष्टि से गोलमेज परिषद में ब्रिटिश नीति की सोलहों आने विजय हुई। सोलह नवंबर को बेंथल, घनश्यामदासजी से अपने आप ही मिलने आये। उन्होंने कहा, "सारी फसाद की जड़ 'होर' है।"

घनश्यामदासजी बोले, "आप लोगों ने मुसलमानों और अछूतों के प्रतिनिधियों से इकरारनामा करके समस्या और भी जटिल कर दी है।"

बेंथल ने कहा, "हम लोगों ने कोई इकरारनामा नहीं किया है। हमने तो एक तरह से दरख्वास्त की है कि हमारा यह हक है, हमें शासन-विधान में यह अधिकार मिलना चाहिए।"

घनश्यामदासजी के अनुसार इस तरह की बातों का कोई फल नहीं हो रहा था। गांधीजी के समय घनश्यामदासजी अंग्रेज नेताओं से उनके घर पर जाकर मिलते थे। पर कहीं भी कोई बात नहीं बन पाती थी। घनश्यामदासजी को लगा, बिना लड़ाई के स्वराज्य-प्राप्ति की आशा नहीं की जा सकती।

सत्ताईस नवंबर उन्नीस सौ इकतीस को विधान परिषद की अंतिम बैठक थी। विधान बनने में न जाने अभी कितनी देर थी, पर इसके नाम पर जो नाटक चल रहा था, पूरा हो चला था।

तीस नवंबर, उन्नीस सौ इकतीस को प्लेनरी सेशन (पूर्ण अधिवेशन) में घनश्यामदासजी ने जो भाषण दिया, वह कई अर्थों और प्रसंगों में महत्त्वपूर्ण है। सबसे पहले उन्होंने पूरे अधिवेशन के सामने नये सिरे से अपना परिचय देते हुए कहा, "मैं इस सम्मेलन में अपने सहकर्मी सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और मि० जमाल मुहम्मद के साथ भारतीय वाणिज्य, व्यापार और उद्योग का प्रतिनिधित्व कर रहा हूं। यहां

७१. बिखरे विचारों की भरोटी, पृष्ठ ३३०

'फेडरेशन आफ इंडियन चैंबर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री' के प्रतिनिधित्व करने का गौरव मुझे प्राप्त है ।''७२

गोलमेज परिषद का सारा काम मुख्य रूप से दो उप-समितियों द्वारा किया जा रहा था––फेडेरल स्ट्रक्चरल सब-कमेटी और माइनोरिटीज सब-कमेटी । घनश्याम-दास बिड़ला माइनोरिटीज सब-कमेटी के सदस्य थे । पूरे अधिवेशन के सामने तीस नवंबर को बोलते हुए घनश्यामदासजी ने कहा, ''महानुभाव, जब पिछली गोलमेज सभा का समापन हो रहा था और जब प्रधानमंत्री ने अपनी प्रसिद्ध घोषणा की थी, तब हमें उस पर विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ । उस समय हम लोगों ने यह अनुभव किया कि केंद्र को जो उत्तरदायित्व गोलमेज परिषद ने दिया है, वह कितने ही बंधनों, प्रतिबंधों और गतिरोधों से जकड़ा हुआ है । इसी कारण वह कदापि हमें उस लक्ष्य तक नहीं पहुंचा सकता जो हमने अपने सम्मुख रखा है ।''७३

गोलमेज परिषद का पूरा वातावरण, घनश्यामदासजी के शब्दों में, 'नाटक' जैसा था । उस नाटक के पीछे जो यथार्थ था, उसे प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, ''हम भारतीय हमेशा से यही कहते आये हैं कि भारतीय शासन-व्यवस्था बहुत ही खर्चीली है। अब मान लें कि जो भी वित्त मंत्री नियुक्त होगा, वह खर्च कम करना चाहेगा तो प्रश्न है कि वह कटौती कहां करेगा ? नब्बे करोड़ में से बहत्तर करोड़ तो गवर्नर जनरल के लिए सुरक्षित होगा, जिसे वित्त मंत्री छू नहीं सकता। तो फिर बचे हुए कुल अठारह करोड़ में से वह कौन-सा खर्च कम कर देगा ? इसके अतिरिक्त भारत में विकास कार्यों के लिए उसके पास धन होना चाहिए । तो उसे नये कर लगाने ही पड़ेंगे । हर साल उसे घाटे का बजट ही बनाना पड़ेगा । यह तो ऐसा ही हुआ, जैसे खजाने की सारी तिजोरी तो हमें मिली, लेकिन बिलकुल खाली । मेरा ख्याल है कि कोई आत्म-सम्मान वाला व्यक्ति इस तरह के कठोर बंधनों में वित्त मंत्री बनना स्वीकार नहीं करेगा । कोई भी सरकार भारत की जमा धनराशि की रक्षा तब तक नहीं कर सकती, जब तक वह भारतीय पूंजी-निवेशक के मन में विश्वास न पैदा कर दे । नयी विकास योजनाओं के लिए कौन धन का प्रबंध करेगा ? 'सिटी फाइनेंसियर्स' (लंदन के पूंजी-निवेशक) तो ऐसा नहीं करेंगे । यह धन तो भारतीय निवेशक ही लगाएंगे । इसलिए आप लोगों को ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहिए, जो उनके विश्वास को तोड़ दे ।''७४

७२. स्पीच आफ जी. डी. बिड़ला एट दि प्लेनरी सेशन, ३० नवंबर १९३१
७३. वही
७४. वही

घनश्यामदासजी ने भारत में अंग्रेजी शासन-व्यवस्था के विषय में कहा, "कोई भी शासन इतना शक्तिशाली नहीं हो सकता कि बिना लोकमत के ही अपना कार्य कर ले। तभी मैं यह कह रहा हूं कि यदि आप कानून-व्यवस्था चाहते हैं, तो शर्त यही है कि आप लोकमत से शासन करें या फिर भारतीयों को शासन का अधिकार दें। उससे वे आपके मित्र और साझेदार बन सकेंगे। मैं आपको फिर सावधान कर रहा हूं, यदि आपने इस मौके पर मैत्रीपूर्ण समझौता नहीं किया तो आप बहुत बड़ी भूल कर बैठेंगे। मैं अपने देश के युवा वर्ग को जानता हूं। यह बिलकुल ही संभव है कि कुछ वर्ष बाद आप गांधी-जैसे व्यक्तियों के साथ काम नहीं करेंगे, जो कई मामलों में आप लोगों से भी अधिक पुरातनपंथी हैं। शायद तब आपको रजवाड़ों के साथ भी काम करने का अवसर प्राप्त नहीं होगा। तब मेरे जैसे पूंजीपतियों के साथ भी आप काम नहीं करेंगे।"७५

अपने इस ऐतिहासिक अभिभाषण का समापन करते हुए घनश्यामदासजी ने सबको सावधान किया, "केवल दो ही रास्ते हैं। उनमें एक ले जायेगा विनाश, विध्वंस, अशांति और अराजकता की ओर, दूसरा–शांति और समृद्धि की ओर। इंग्लैंड कौन से रास्ते को चुनेगा ?"७६

घनश्यामदासजी के अनुसार, "इस राउंड टेबल कांफ्रेंस से कुछ भी नतीजा नहीं निकला। परंतु वह बिलकुल टूट गयी, यह भी नहीं कहा जा सकता।" उन्होंने समाचार-पत्रों और इंग्लैंड की राजनीतिक हवा से यह अनुमान कर लिया कि "बंगाल में और अन्यत्र भी दमन खूब जोर-शोर से होने वाला है। साथ ही समझौते की बात भी जारी रहेगी।"

चार दिसंबर को कांफ्रेंस के नाटक का आखिरी पर्दा गिर गया। भारतीय एक-एक कर लंदन से लौटने लगे। चलते समय लार्ड लोदियन ने महात्माजी से कहा कि लड़ने से तुम्हारा भला जरूर है, पर ऐसी लड़ाई न करना, जिसमें हमारा सत्यानाश हो जाये। गांधीजी ने कहा, "मैं इसका ध्यान रखूंगा।"

सर कैंपबेल रोड्स ने घनश्यामदासजी से कहा, "बिड़ला, जब तुम्हें कभी नौकरी करने की जरूरत हो, तो सर हेनरी स्ट्राकोश के पास जाना, वह बहुत अच्छा सर्टिफिकेट देगा।"

---

७५. दि प्लेनरी सेशन, ३० नवंबर १९३१, घनश्यामदासजी का भाषण

७६. किसी जमाने में कलकत्ता के एक उद्योग के मालिक, इंडियन फिस्कल कमीशन के सदस्य

घनश्यामदासजी ने पूछा, "वे मेरे विषय में क्या कहते थे ?"

रोड्स बोला, "मुझसे मत पूछो । तुम अपनी प्रशंसा सुनकर असमंजस में पड़ जाओगे ।"

राउंड टेबल कांफ्रेंस के दिनों घनश्यामदासजी की ब्रिटिश नेताओं और उद्योग-पतियों से जो भेंट-मुलाकातें हुईं, उनके दौरान बेंथल से उन्होंने एक सीधा प्रश्न किया था कि वह उन्हें 'गरम मिजाज' क्यों बताता फिरता है ? यह घटना उस काल के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण है । इससे यह पता चलता है कि राजनीति और व्यापार दोनों ही क्षेत्रों में घनश्यामदासजी ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया था । उस वक्त का एक साधारण भारतीय तो अंग्रेजों के आगे आंखें उठाकर बात करने की हिम्मत भी नहीं करता था, जबकि घनश्यामदासजी ब्रिटिश व्यापारी समाज में चर्चा का विषय बन चुके थे ।

द्वितीय 'गोलमेज परिषद' की पूरी स्थिति को देखकर सामान्यतः यही कहा जा सकता था कि इसका समापन असफलता में ही हुआ । लेकिन इस दौरान गांधीजी का जो प्रभाव मुख्यतः इंग्लैंड और सामान्यतः पश्चिम के देशों पर पड़ा, अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण था । व्यक्तिगत रूप से सभी चाहते थे कि परिषद सफल हो, लेकिन जब अंग्रेज राजनीतिक सिद्धांत की बात उठाते तो सारा मामला वहीं ठप्प हो जाता ।

द्वितीय 'गोलमेज परिषद' के समापन के बाद घनश्यामदासजी जब भारत लौटने को थे, उस समय वह काफी उदास थे । उनका स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा नहीं था । इतनी दौड़-धूप, व्यस्तता और गांधीजी के साथ एक बजे रात तक जागने और सुबह चार बजे उठ जाने का यह फल हुआ कि उनका वजन काफी घट गया था । वह शारीरिक रूप से थक से गये थे, मानसिक रूप से अवश्य कुछ आशावान थे ।

उस समय भारत के राजनीतिक आकाश पर निराशा के काले बादल छाये हुए थे । लंदन-प्रवास से महात्मा गांधी घनश्यामदासजी को आशा की किरण लगे । उन्होंने परख लिया कि यद्यपि गांधीजी इंग्लैंड से खाली हाथ ही लौट रहे हैं, किंतु इंग्लैंड की झोली उन्होंने अपने दोनों हाथों से भर दी है । जो कुछ देकर वह भारत लौट रहे हैं, वही आगे चलकर भारत के लिए सहायक सिद्ध होगा । यह भारतीयों और अंग्रेजों के बीच अविश्वास, अज्ञान और असहिष्णुता की खाई पर बनते हुए पुल की नींव-जैसी थी ।

इंग्लैंड से भारत लौटते ही घनश्यामदासजी को इंडिया आफिस से सर सैमुअल होर का एक पत्र मिला। सत्ताईस जनवरी उन्नीस सौ बत्तीस के इस पत्र में उन्होंने घनश्यामदासजी बिड़ला को एक समिति में शामिल होने का निमंत्रण भेजा था। निमंत्रण में उनका नाम सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के स्थान पर था। स्वभावतः घनश्यामदासजी ने इसे स्वीकार नहीं किया।

इधर गांधीजी ने भारत वापस आने के तुरंत बाद ही 'सविनय अवज्ञा' आंदोलन फिर से शुरू कर दिया। सीमांत गांधी सक्रिय हो उठे। बंगाल में उग्रवादी भी कार्यशील हो गये। इन घटनाओं के कारण ब्रिटिश सरकार ने अपनी दमन की कार्रवाई और तेज कर दी। गांधी, नेहरू आदि सारे महत्त्वपूर्ण नेताओं को फिर से गिरफ्तार कर लिया गया।

चौदह फरवरी उन्नीस सौ बत्तीस को नयी दिल्ली के बिड़ला हाउस से घनश्यामदासजी ने एक पत्र सर सैमुअल होर को लिखा, "मैं अपने देश और समाज के हित में जो सबसे अच्छी सेवा कर सकता हूं, वह यही है कि संघ को बाकायदा सहयोग प्रदान करने के लिए राजी करूं। मैं जानता हूं कि कार्यकारिणी के कार्य-कलाप में हमारे भाग लेने के संबंध में सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास का भी वही मत है, जो मेरा है। इसके अलावा भारतीय व्यापारी वर्ग के प्रतिनिधि की हैसियत से वह मुझसे कई बातों में अच्छे हैं। उनमें अपेक्षाकृत अधिक व्यवहार कुशलता, अधिक योग्यता और अधिक अनुभव हैं। यदि हम दोनों संघ से अपने रुख में संशोधन कराने में समर्थ हुए तो मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि भारतीय व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिए वह सबसे योग्य व्यक्ति हैं।"[७७]

नयी दिल्ली में रहकर भारतीय वाणिज्य और उद्योग संघ के कुछ सदस्यों से घनश्यामदासजी ने व्यवसाय और वाणिज्य की उन समस्याओं पर बातचीत की, जो 'गोलमेज परिषद' के समय प्रकाश में आयी थीं। उन्होंने कलकत्ते में भी संघ के शेष सदस्यों से ऐसा ही विचार-विमर्श किया। तभी उन्हें सैमुअल होर का पच्चीस फरवरी उन्नीस सौ बत्तीस का पत्र मिला। उस पत्र में सर सैमुअल होर ने एक नया प्रश्न उठाया था। वह था—साम्राज्य, अधिमान (इंपीरियल प्रेफरेंस) के बारे में ओटावा में होने वाली परिषद का प्रश्न। उस परिषद का उस समय अपना महत्त्व था। घनश्यामदासजी ने भारतीय वाणिज्य उद्योग संघ समिति के सदस्यों से परामर्श करके चौदह मार्च उन्नीस सौ बत्तीस को सर सैमुअल होर को पत्र द्वारा जवाब

---

७७. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १७०

दिया कि उन्होंने लार्ड लोदियन और सर जार्ज शुस्टर से आर्थिक मामलों में जो बातें की हैं, उन्हीं के प्रकाश में हल तलाश करने का प्रयत्न करना चाहिए। एकमात्र मार्ग यही है कि दोनों पक्षों के अनुभवी व्यापारी एक साथ बैठें और ऐसा हल ढूंढ़ निकालें, जो सभी को मान्य हो। उन्होंने सर सैमुअल होर को बताया कि शायद एक उन्मूलन-वादी भारत और एक अत्यंत अनुदार ब्रिटिश पार्लियामेंट में इस समय समझौता नहीं हो सकता है। फिर भी इस पार्लियामेंट और कांग्रेस से असंबद्ध प्रगतिशील भारतीय लोकमत के बीच समझौता अवश्य संभव है।

इसी पत्र में घनश्यामदासजी ने लिखा, "मैं गांधीजी और कांग्रेस में हमेशा से भेद करता आया हूं और मेरा आपसे यही कहना है कि आपके लिए हमें ऐसा विधान प्रदान करना संभव है, जो कांग्रेस को ग्राह्य न होते हुए भी गांधीजी द्वारा नामंजूर नहीं किया जाये और जिसका भविष्य में निष्कंटक रूप में अमल में आना संभव हो। यदि विधान के जारी किये जाने के दूसरे ही दिन उसका विध्वंस करने के लिए कोई आंदोलन खड़ा कर दिया तो शांति असंभव हो जायेगी और मैं चाहता हूं, दोनों देशों में स्थायी शांति।"७८

सोलह मार्च को घनश्यामदासजी सर जार्ज शुस्टर से मिले और सत्रह तारीख को वाइसराय से। इस बीच उन्होंने इंग्लैंड के राजनेताओं को, जिनसे राउंड टेबल कांफ्रेंस के दिनों में उनकी भेंट हुई थी, अपने बारे में यह अवश्य बता दिया, "जहां तक हमारा संबंध है, आप हमें भावुकता और राजनीति को छोड़कर आर्थिक हितों के लिए काम करने को सदैव तत्पर पाएंगे।"

दिल्ली में एक पखवाड़ा रहकर घनश्यामदासजी कलकत्ता वापस चले आये। दस अप्रैल उन्नीस सौ बत्तीस को सुबह साढ़े दस बजे बंगाल के गवर्नर से मिले। अपना परिचय देते हुए घनश्यामदासजी ने उन्हें बताया कि वे गांधीजी को सन उन्नीस सौ पंद्रह से जानते हैं और सन उन्नीस सौ इक्कीस से पक्के प्रशंसक रहे हैं। उनके साथ 'गोलमेज परिषद' में काम किया है। यह भी बताया कि राजनीतिक और आर्थिक मामलों में वह सरकार के कड़े आलोचक रहे हैं। उन्होंने यद्यपि सविनय अवज्ञा आंदोलन में नहीं भाग लिया और न उसमें रुपया लगाया है, फिर भी उन्होंने सरकार को अस्त-व्यस्त करने की भरसक चेष्टा की है। उन्होंने गांधीजी के रचनात्मक कार्यों में हाथ खोलकर रुपया दिया है। अतएव वह गांधीजी के मन की बात जानने का दावा करें तो गलत नहीं होगा। उन्होंने गवर्नर से गांधीजी की नीतियों और उनके व्यक्तित्व

७८. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ १७३

का सूक्ष्म विश्लेषण किया । अपनी बात की पुष्टि में उन्होंने बताया कि फिंडलेटर स्टुअर्ट ने गांधीजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । दुर्भाग्यवश इस समय भारत में कोई विवेक-बुद्धिवाला अंग्रेज मौजूद नहीं है । गांधीजी को शीघ्रता से काम लेने के लिए बाध्य किया वाइसराय लार्ड विलिंगडन ने ।

सन उन्नीस सौ बत्तीस में लार्ड लोदियन 'भारतीय मताधिकार समिति' के अध्यक्ष बनकर भारत आये । भारत से उन्हें सहानुभूति थी । गोलमेज परिषद के दिनों में वह घनश्यामदासजी के काफी करीब आ गये थे । उनसे घनश्यामदासजी की खूब खुलकर बातचीत हुई । घनश्यामदासजी की इच्छा थी कि गांधीजी, जो उन दिनों जेल में थे, व्यावहारिक दृष्टि से विजयी सिद्ध हों । इससे भविष्य में असहयोग-आंदोलन चलाने की आवश्यकता ही न रह जाये । उनकी यह चेष्टा सफल नहीं हो सकी । उसी साल उन्नीस जुलाई को घनश्यामदासजी ने सर जान एंडरसन से मुलाकात करके उनकी और गांधीजी की भेंट कराने की चेष्टा की।

हरिजनों के मताधिकार के प्रश्न पर यरवदा केंद्रीय जेल में गांधीजी का आमरण अनशन शुरू हुआ । उस समय घनश्यामदासजी की मुख्य चिंता यह हो गयी कि गांधीजी को कैसे जेल से छुड़ा लिया जाये । उन्होंने सर तेजबहादुर सप्रू, सर सैमुअल होर और लार्ड लोदियन को तार भेजकर गांधीजी की रिहाई के लिए अनुरोध किया । उन्होंने अपना विश्वास प्रकट किया कि अस्पृश्यों के साथ समझौता करने से संकट टल सकता है, पर यह केवल गांधीजी के व्यक्तिगत प्रभाव से ही संभव है ।

गांधीजी के आमरण उपवास की घोषणा ने घनश्यामदासजी को व्याकुल कर दिया । वह बापू की उन भावनाओं के मर्म से अवगत थे, जिनसे प्रेरित होकर उनका अनशन शुरू होता था । उन्हें मालूम था कि गांधीजी के मन में कोई अभिमान नहीं था । अनशन के काल में वह अपनी सारी चेतना ईश्वर की ओर उन्मुख कर देते थे, ताकि जिस कारण वह उपवास कर रहे हैं, उसका ठीक-ठीक निदान उन्हें मिल जाये । उनके उप-वास का एकमात्र लक्ष्य था--आत्मशुद्धि और तपस्या । घनश्यामदासजी अच्छी तरह जानते थे कि गांधीजी अपनी मृत्यु को एक अत्यंत तुच्छ घटना मानते हैं । वह जीवित रहना चाहते थे तो इसलिए कि ईश्वर के काम आ सकें । ईश्वर की कृपा से उनका मार्ग निष्कंटक होता चले । अगर ऐसा नहीं हुआ तो गांधीजी सहज ही प्राण दे सकते हैं, यह घनश्यामदासजी का विश्वास था ।

उस उपवास के संबंध में जो पत्र गांधीजी ने रामेश्वरदास बिड़ला को लिखा,

उल्लेखनीय है, "मेरे यज्ञ को सुनकर नाचो और रामनाम पर अधिक विश्वास रखो। अनशन मेरा नहीं, राम का है, चिंता मुझे नहीं, उसको है।"७९

गांधीजी के आमरण उपवास को लेकर घनश्यामदासजी अंबेडकर से कई बार मिले। एक तरह से बंबई का बिड़ला हाउस, उस प्रश्न को लेकर हलचल का केंद्र बन गया। घनश्यामदासजी यही सोचते रहे कि गांधीजी की प्राण-रक्षा के लिए राष्ट्र के हित को कहां तक नजर-अंदाज करना न्यायोचित है। इसी प्रश्न को लेकर तेजबहादुर सप्रू, जयकर, राजेंद्र बाबू और देवदास गांधी के साथ घनश्यामदासजी आधी रात को पूना के लिए रवाना हो गये। सूर्योदय से पहले वे पूना पहुंचे। सुबह सात बजे जेल में घनश्यामदासजी ने गांधीजी से मुलाकात की।

महादेव भाई ने इस प्रसंग का अपनी डायरी में जो विवरण दिया है, उसके अनुसार डा० अंबेडकर का रुख अच्छा नहीं था। इससे घनश्यामदासजी बहुत दुखी हुए। इसी के फलस्वरूप घनश्यामदासजी के हृदय में हरिजन सेवा का संकल्प और दृढ़ हो गया। 'अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ की स्थापना' गांधीजी के इतिहास विख्यात 'हरिजन-उपवास' के उपरांत हुई थी। वह उपवास उन्होंने तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेमजे मैक्डोनल्ड द्वारा किये गये सांप्रदायिक निर्णयों के विरुद्ध पूना की यरवदा जेल में किया था। यह घटना सितंबर उन्नीस सौ बत्तीस में घटी थी। वह 'हरिजन-उपवास' हिंदू समाज को छिन्न-भिन्न होने से बचाने का महान प्रयत्न था। पांच करोड़ हरिजनों को हिंदू समाज से अलग कर देने का एक भीषण षड्यंत्र रचा गया था। उस षड्यंत्र में अंग्रेज, मुस्लिम लीग और कई बड़े नेता भी शामिल थे। इसका पता गांधीजी, घनश्यामदासजी और राजाजी जैसे कुछ ही लोगों को था।

उपवास समाप्त होने के तुरंत बाद पच्चीस सितंबर उन्नीस सौ बत्तीस को गांधीजी के कमरे८० में ही एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई थी। इस बैठक में घनश्यामदासजी के अतिरिक्त मदनमोहन मालवीय, ठक्कर बापा, राजाजी, राजेंद्र बाबू, डा० अंबेडकर आदि उपस्थित थे। बातचीत इस प्रस्ताव पर हो रही थी कि 'अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण संघ' की स्थापना किस प्रकार की जाये, गांधीजी ने बिस्तर पर पड़े-पड़े ही धीमे से पूछा, "इस संघ को चलायेगा कौन ?"

सन्नाटा छा गया। लोग एक-दूसरे का मुंह देखने लगे। तब गांधीजी ने ही कहा,

७९. हरिजन सेवक संघ का इतिहास, मुकुट बिहारी वर्मा, पृष्ठ ३७
८०. पूना में लेडी विट्ठलदास ठाकरसी के बंगले का कमरा

"अगर इस कार्य को घनश्यामदासजी ले सकें, तभी यह हो सकता है।" फिर थोड़ी देर चुप्पी छायी रही। बापू के मुख से फिर निकला, "बोलो घनश्याम ?"

घनश्यामदासजी ने विनयपूर्वक कहा, "अगर मुझे ठक्कर बापा का साथ मिल जाये तो मुझे स्वीकार है।"

ठक्कर बापा ने कहा, "मैं इसके लिए सहर्ष प्रस्तुत हूं।"

ठक्कर बापा के अनन्य साथी और जीवनीकार वियोगी हरि के शब्दों में, "ठक्कर बापा ने उस समय कहा था, 'मेरी उम्र दस साल कम हो गयी'।"

इस प्रकार अध्यक्ष के रूप में घनश्यामदासजी और मंत्री के रूप में ठक्कर बापा की देख-रेख में संघ का भविष्य उज्ज्वल हो गया। घनश्यामदासजी इस काम में न केवल गांधीजी के निकट थे, अपितु उपवास के समय यरवदा ऐक्ट में भी उनकी भूमिका रचनात्मक रही।

महादेवभाई देसाई की डायरी के अनुसार गांधीजी ने उसकी प्रशंसा में कहा है, "इस सबके पीछे घनश्यामदास है।"

अपने सभी कार्यों में गांधीजी ने यह पाया कि घनश्यामदासजी उनके साथ हैं तथा उनके पीछे हैं। कुछ ही समय बाद 'अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण संघ' का नाम बदलकर 'अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ' कर दिया गया।

संघ के वार्षिक अधिवेशन का श्रीगणेश अध्यक्ष घनश्यामदास बिड़ला ने इन शब्दों से किया, "सज्जनो ! हमें अपनी कार्यवाही हिंदी में ही चलानी है।" उनका प्रारंभिक भाषण हिंदी में होता था, पर प्रस्ताव अंग्रेजी में बनते थे। दूसरों के भाषण प्रायः अंग्रेजी में होते थे।८१

प्रारंभिक दिनों में संघ का कार्य बिड़ला काटन मिल्स, दिल्ली कार्यालय के एक बड़े कमरे में होता था। उन दिनों बिड़ला काटन मिल्स के सेक्रेटरी ज्वालाप्रसाद मंडेलिया, अस्पृश्यता-उन्मूलन कार्य में सहयोग दे रहे थे। ठक्कर बापा, प्रो० एन० आर० मलकानी और वियोगी हरि इसके प्रमुख कार्यकर्ता थे।

उसके बाद अस्पृश्यता-उन्मूलन कार्य की प्रगति के लिए महात्मा गांधी ने पूरे भारत का भ्रमण किया था। यह ऐतिहासिक यात्रा 'अस्पृश्यता निवारण यात्रा' के नाम से जानी गयी। यह वर्धा से प्रारंभ हुई, किंतु व्यवहार रूप में इसका श्रीगणेश घनश्यामदासजी के द्वारा बिड़ला काटन मिल्स, दिल्ली से ही कराया गया।

८१. मेरा जीवन प्रवाह, वियोगी हरि, पृष्ठ १५८

सन उन्नीस सौ तैंतीस में गांधीजी बिड़ला मिल्स में पधारे थे। उनका स्वागत मिल के पीछे विस्तृत उद्यान में जामुन के वृक्ष के नीचे किया गया। घनश्यामदासजी के साथ मिल के सारे कार्यकर्त्ता महात्माजी के स्वागत के लिए उपस्थित थे। उस समय बापू को केले के पत्ते पर मान पत्र और छह हजार रुपये की थैली हरिजन सेवा के लिए भेंट की गयी। अपने भाषण में धन्यवाद देते हुए गांधीजी ने कहा, "यह तो बिड़ला जैसों का ही काम है कि वह अस्पृश्यता निवारण के लिए पैसा दें। हर धार्मिक हिंदू का कर्त्तव्य इस धरती पर से अस्पृश्यता को नष्ट करना है।"

यह यात्रा बिड़ला मिल्स से आरंभ होकर बारह हजार पांच सौ मील की परिक्रमा के बाद काशी में संपन्न हुई। इसे पूरा करने में नौ महीने लगे थे। घनश्यामदासजी के शब्दों में, "यह यात्रा हिंदुओं के इतिहास में इसलिए विख्यात रहेगी क्योंकि अस्पृश्यता निवारण अब केवल सभाओं में प्रस्ताव पारित करने की वस्तु नहीं, अपितु यह एक अत्यधिक धार्मिक, सामाजिक ज्वलंत प्रश्न के रूप में हमारे सामने है।"

इस यात्रा में घनश्यामदासजी ने गांधीजी का पूरा साथ दिया और उनके साथ पैदल चले। इस लंबी यात्रा के दौरान गांधीजी ने सबसे पहले मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश पर विशेष ध्यान दिया। उसके लिए देशव्यापी आंदोलन 'अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ' के माध्यम से चलाया गया। इसके सूत्रधार थे—घनश्यामदासजी और ठक्कर बापा।

घनश्यामदासजी की दक्षिण भारत की यात्रा के फलस्वरूप वहां के अनेक मंदिरों के द्वार हरिजनों के लिए खुल गये। इनमें प्रमुख था, प्रसिद्ध गुरुवायूर मंदिर। इसका प्रभाव भारत के अन्य प्रांतों पर भी पड़ा। हरिजनों के लिए मंदिरों के द्वार खुलने लगे।

इस सफलता पर संघ के अध्यक्ष के रूप में घनश्यामदासजी ने 'हरिजन सेवक' के अंक में लिखा, "काफी मंजिल पड़ी हुई है, पर जो कुछ हुआ है वह भी एक चमत्कार समझना चाहिए।"[८२] बिहार के जो मंदिर उन्नीस सौ चौंतीस के भयंकर भूकंप से टूट गये थे, उनकी मरम्मत के लिए एक लाख रुपये का अनुदान घनश्यामदासजी के बड़े भाई जुगलकिशोर बिड़ला ने इस शर्त पर संघ को दिया कि उनमें हरिजनों का निर्बाध प्रवेश हो। बिड़ला मंदिर के नाम से नयी दिल्ली का लक्ष्मीनारायण मंदिर इस अवधि में बन रहा था। अठारह मार्च, उन्नीस सौ उन्तालीस को पचास

८२. २३ फरवरी १९३३, 'हरिजन सेवक'

हजार जन-समूह की उपस्थिति में घनश्यामदासजी ने गांधीजी के कर-कमलों से उसका उद्घाटन कराया। इस मंदिर का निर्माण जुगलकिशोरजी ने अपने पिता राजा बलदेवदासजी के नाम से कराया। इसमें हरिजनों को प्रवेश की पूरी छूट थी। इस अवसर पर जो गांधीजी के उद्गार थे, वे अनेक अर्थों में महत्त्वपूर्ण हैं, "मेरे लिए हिंदू धर्म में ऊंच-नीच के विचार का कोई स्थान नहीं है। वर्ण तो जरूर है, पर कोई एक वर्ण दूसरे से ऊंचा नहीं है। वर्णों में उच्चता की भावना का कहीं समावेश है ही नहीं। यह तो केवल विभिन्न कार्यों और विभिन्न कर्त्तव्यों के सूचक हैं।"

हरिजन सेवक संघ के लिए घनश्यामदासजी ने ठोस काम किये। उससे महात्मा गांधी इतने प्रभावित हुए कि तीस सितंबर उन्नीस सौ तैंतीस के पत्र द्वारा साबरमती आश्रम की भूमि और इमारत को हरिजन सेवा कार्य के निमित्त संघ के सुपुर्द करने का प्रस्ताव किया। इसके उत्तर में हरिजन सेवक संघ के प्रधान के रूप में घनश्यामदासजी ने चार अक्तूबर उन्नीस सौ तैंतीस को गांधीजी को पत्र लिखा, "यह आपकी और आश्रम के ट्रस्टियों की महती उदारता है। मैं इस प्रस्ताव को अविलंब स्वीकार करता हूं और आशा करता हूं कि संघ अपने आपको आपके विश्वास के योग्य प्रमाणित करेगा।"[८३]

पांच अक्तूबर उन्नीस सौ तैंतीस के अपने दूसरे पत्र में घनश्यामदासजी ने बापू को फिर लिखा, "आपके दान और हमारी स्वीकृति के फलस्वरूप दो-एक वार्ता की ओर आपका ध्यान दिलाना आवश्यक है। अब तक हमारे पास बैंक में जमा रुपये को छोड़कर कोई संपत्ति नहीं थी। हम लोग हरिजन छात्रावास बनाने के लिए जमीन खरीदने का विचार कर रहे थे, पर अब हमारे पास आपकी दी हुई बहुमूल्य स्थावर संपत्ति हो जायेगी। अब यह प्रश्न तुरंत ही उठ खड़ा होगा कि इस संपत्ति का स्वामी कौन होगा—हरिजन मंडल? यदि हरिजन मंडल ही इसका स्वामी हुआ तो उसी की बाध्यता के अनुरूप इसका अस्तित्व रहेगा और हमारे संघ में बाध्यता नाम की चीज अभी तक नहीं है।"[८४]

इस संबंध में बापू और घनश्यामदासजी के बीच बराबर पत्र-व्यवहार हुआ। दोनों व्यक्तियों ने हरिजन सेवा कार्य करते-करते एक ओर ईश्वर में अपनी आस्था को बढ़ता हुआ पाया और दूसरी ओर अपनी शक्ति की तुच्छता का प्रत्यक्ष अनुभव

८३. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ २५१
८४. वही, पृष्ठ २५२

किया । इस प्रकार ईश्वर की दया पर विश्वास रखकर अस्पृश्यता-निवारण का जो काम दोनों ने किया, उसका प्रभाव व्यापक रूप से सारे भारत पर पड़ा । जन-मानस में यह बोध जाग गया कि अस्पृश्यता जिसे अभी तक धर्म समझा जाता था, वस्तुतः एक अमानवीय प्रवृत्ति है ।

गांधीजी से प्रेरणा पाकर 'हरिजन सेवक' के संपादन-काल में घनश्यामदासजी ने कुछ भाषा संबंधी प्रयोग किये । राजस्थानी, गुजराती, बुंदेलखंडी आदि बोलियों के कुछ शब्दों को चलाने का प्रयत्न किया । अरबी, फारसी के कुछ अनफबते शब्दों को बीच-बीच में डालकर 'हरिजन सेवक' की भाषा को हिंदुस्तानी जामा पहनाने की कोशिश की ।

'हरिजन सेवक संघ' स्थापित हुए मुश्किल से एक वर्ष हुआ होगा कि अध्यक्ष घनश्यामदासजी के मन में आया कि दिल्ली में क्यों न एक अच्छा-सा हरिजन छात्रावास खोला जाये । साथ ही उद्योगशाला खोलने की भी उनकी कल्पना थी । इन सबके लिए पुरानी छावनी के पास, किंग्सवे के पास ढका गांव के जमींदारों की इक्कीस एकड़ जमीन तीस हजार रुपयों में खरीद ली । जमीन की कीमत घनश्यामदासजी ने चुकायी । यह वही जगह है जहां सन उन्नीस सौ ग्यारह का सुप्रसिद्ध दिल्ली दरबार हुआ था ।

संघ का प्रथम वार्षिक अधिवेशन दिसंबर उन्नीस सौ तैंतीस में ग्यारह से तेरह तारीख तक दिल्ली में हुआ । उसमें अध्यक्ष श्री घनश्यामदासजी और मंत्री ठक्कर बापा के अतिरिक्त चौबीस व्यक्ति पदेन तथा आंदोलन में रुचि लेने वाले ग्यारह कार्यकर्ता सम्मिलित हुए । ये लोग उस समय भारत के सभी प्रांतों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे ।

संघ के दूसरे केंद्रीय बोर्ड की वार्षिक बैठक काशी में अट्ठाईस और उन्तीस जुलाई, उन्नीस सौ चौंतीस को हुई । वहां अस्पृश्यता-निवारण यात्रा के अंतिम दौर में गांधीजी का कार्यक्रम निश्चित किया गया ।

अध्यक्ष घनश्यामदासजी ने केंद्रीय कार्यालय से संबद्ध एक ऐसा प्रशिक्षण केंद्र और औद्योगिक संस्थान खोलने का सुझाव रखा जिसमें व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ-साथ अनुसंधान भी हो । इसकी विस्तृत योजना सदस्यों के पास भेजी गयी ।८५

'हरिजन सेवक संघ' के हर पदाधिकारी को एक तरह की शपथ लेनी पड़ती थी जिसका आशय था कि—मैं अपने जीवन में ऊंच-नीच का भेद नहीं मानूंगा ।

८५. हरिजन सेवक संघ का इतिहास, मुकुटबिहारी वर्मा, पृष्ठ १.

घनश्यामदासजी के जागरूक मन में 'ऊंच-नीच' को लेकर कुछ शंकाएं उपस्थित हुईं। इसलिए वह शपथ लेने से पहले अपनी शंकाओं के समाधान के लिए गांधीजी के पास पहुंचे। उनका तर्क था, "केवल जन्म से न कोई ऊंचा है, न नीचा, यह तो मैं सहज मान सकता हूं। पर यदि एक आदमी चोर है, दुष्ट है, पापी है, उसके पाप-कर्म प्रत्यक्ष हैं और मुझमें वे ऐब नहीं हैं तो मैं अभिमान न भी करूं तो भी, इस ज्ञान से कि मैं अमुक से भला हूं, कैसे वंचित रह सकता हूं ?"

गांधीजी का उत्तर था, "ऐसी कल्पना ही भ्रम मूलक और अहंकार से भरी है।"

यह उत्तर घनश्यामदासजी को मोहक लगा। अधिक मोहक तो यह चीज लगी कि गांधीजी किस हद तक चैतन्य हैं। गांधीजी की यही जागरूकता, वे हरिजन मंदिर-प्रवेश और उनके उत्थान के कार्यों में गहराई से महसूस करते रहे। अनुभूति की यह यात्रा अखिल भारतीय स्तर की थी। गांधीजी के साथ घनश्यामदासजी काफी पैदल चले थे। इन सब बातों के फलस्वरूप हरिजनों के लिए जगह-जगह मंदिरों के द्वार खुलने लगे। सनातनियों ने बहुमत से हरिजनों को मंदिर-प्रवेश करने की इजाजत दे दी। प्रयाग में 'सनातन धर्म सभा' ने भी इसी प्रकार के प्रस्ताव पास किये। यह सारा चमत्कार पांच महीने की छोटी-सी अवधि में हुआ।

इसी बीच बसंतकुमारजी का एक पत्र घनश्यामदासजी को मिला, जिसमें उन्होंने भी मजहब के आधार पर मनुष्य के अच्छे-बुरे, ऊंच-नीच होने के प्रश्न को उठाया था। उसके उत्तर में घनश्यामदासजी ने चिरंजीव बसंतकुमार को लंबा-सा पत्र लिखा, "हमें किसी आदमी को अच्छा-बुरा कायम करने के लिए उसके चरित्र को देखना चाहिए, न कि उसके मजहब को। धर्म के लक्षण जिस आदमी में पाये जाएं, वह धार्मिक और अच्छा मनुष्य है। जिसमें इसके विपरीत लक्षण हों, वह बुरा है। ईश्वर के दरबार में चोटी और दाढ़ी से लोगों की परख नहीं करते। चरित्र देखते हैं।"[८६]

गांधीजी के आमरण अनशन और अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन के बाद घनश्यामदासजी ने अनुभव किया कि भारत की सारी राजनीतिक स्थिति ने मूर्त रूप धारण कर लिया है। उग्रपंथियों को गांधीवाद की उपयोगिता में संदेह होने लगा। बापू ने यह भी देखा कि कांग्रेस के अनुयायियों में अहिंसा के वेश में हिंसा घुस आयी है। इसीलिए वह 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' बंद कर सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक बुराइयों को दूर करने के काम में जुट गये। घनश्यामदासजी उनके इन कार्यों में छाया की तरह

८६. धर्म के लक्षण मनुस्मृति के आधार पर दिये हैं

उनका अनुसरण करते रहे । गांधीजी की तरह उन्होंने भी यह माना कि स्वराज्य भीतर से आयेगा, बाहर से नहीं । वे जानते थे कि स्वराज्य एक मानसिक स्थिति है, लेकिन साथ ही वे इस बात के प्रति भी सचेत थे कि जिस विदेशी सत्ता से हमें मुक्त होना है, उसके बारे में हमें ज्ञान होना चाहिए । इसलिए उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों से व्यक्तिगत संपर्क बनाये रखना उचित समझा और पारस्परिक समझौते के मार्ग को प्रशस्त करने की चेष्टा में लगे रहे ।

घनश्यामदासजी देख रहे थे, इस समय कांग्रेस को तीन शक्तियों के साथ लड़ना पड़ रहा है । एक ओर सरकार से, दूसरी ओर समाजवादियों से और तीसरी ओर मुस्लिम लीग और अल्पसंख्यकों के नेताओं से । यह समय आंतरिक विवादों के लिए बहुत ही अनुपयुक्त था, क्योंकि ब्रिटिश नेताओं का रुख भारत की ओर नरम हो रहा था ।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में घनश्यामदासजी की भूमिका ऐतिहासिक रही है । वह ब्रिटिश शासकों को भारतीय दृष्टिकोण से अवगत कराते थे और उनकी कठिनाइयों को समझकर अपनी ओर से सहानुभूतिपूर्वक यथोचित परामर्श देते थे । उन दिनों ब्रिटिश नेताओं को लिखे उनके पत्रों से उनकी यह मानवीय और मनोवैज्ञानिक समझ स्पष्ट हो जाती है । भारत मंत्री सर सैमुअल होर को अपने उन्नीस जनवरी उन्नीस सौ पैंतीस के पत्र में घनश्यामदासजी ने अपने उस दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है, "कभी-कभी तो मैं यह महसूस करता हूं कि मैं लंदन जाकर और आपसे मिलकर आपसे भी अपना यह दृष्टिकोण मनवाऊं कि पारस्परिक सद्भावना से बुरे संरक्षण (उस समय ब्रिटिश सरकार भारतीय हितों के लिए कुछ संरक्षण देने का विचार कर रही थी) भी खतरों के लिए बीज बोने का काम कर सकते हैं, जबकि मानवीय भावनाओं के अभाव में अच्छे संरक्षण भी शांति और सहज कार्य-संचालन के मार्ग में बाधक सिद्ध होंगे ।"[८७]

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए घनश्यामदासजी सन उन्नीस सौ पैंतीस की गर्मियों में लंदन गये । वे जून से सितंबर तक वहां रहे और रेमजे मैक्डोनल्ड, बाल्डविन, एटली, विंसटन चर्चिल, लार्ड हेलीफैक्स एवं लार्ड लिनलिथगो, जार्ज शुस्टर, ब्रिटेन के अर्थ-मंत्री बटलर, लार्ड लोदियन, लार्ड जेटलैंड आदि ब्रिटिश नेताओं से मुलाकात कर उनको भारतीयों के दृष्टिकोण से परिचित कराया । उनके दृष्टिकोण को भी समझने की चेष्टा की । सद्भावना का वातावरण उत्पन्न करने के अपने उद्देश्य में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर घनश्यामदासजी सितंबर उन्नीस सौ पैंतीस में भारत लौट आये ।

८७. देशभक्त उद्योग प्रवर्तक, पृष्ठ ७३

भारत लौटते ही घनश्यामदासजी सीधे गांधीजी से मिलने वर्धा गये, ताकि गांधीजी के साथ रहकर उन्हें खुद अपनी जबानी अपने संस्मरण सुना सकें। घनश्यामदासजी से गांधीजी ने जो बातें सुनीं, उनसे गांधीजी को यह अनुमान हो गया कि घनश्यामदासजी को इंग्लैंड में जिस मित्रता के दर्शन हुए, वह अभी भारत के सरकारी क्षेत्रों में व्याप्त नहीं हुई है। फिर भी गांधीजी ने घनश्यामदासजी से लिनलिथगो और दूसरों को यह लिखने के लिए कहा कि वह वाइसराय के भारत पहुंचने के पहले सुधारों के बारे में कांग्रेस को कोई भी नया निश्चय न करने की सलाह दें।

अपनी प्रसन्नता प्रगट करते हुए लार्ड लोदियन ने, और फिर स्वयं लार्ड लिनलिथगो ने घनश्यामदासजी को जो कुछ लिखा, वह उल्लेखनीय है। "मुझे नये विधान का यथाशक्ति अच्छे से अच्छा उपयोग करना होगा और जहां तक मुझसे संभव होगा, मेरी यही चेष्टा रहेगी कि उसकी मर्यादा के भीतर रहकर सभी प्रकार के राजनैतिक दलों के स्त्री-पुरुष काम कर सकें। शायद आप इस बात से सहमत होंगे कि भारत की राजनैतिक अवस्था पर कैसा, क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका इस समय अनुमान करना बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी के लिए भी संभव नहीं होगा। इसलिए मेरी तो यही धारणा है कि इस समय हमारी सम्मति जो भी हो, हमें अंतिम निर्णय उस समय तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए जब तक चित्र और भी अधिक स्पष्ट न हो जाएं। जैसा कि मैं समझता हूं, आप स्वयं जानते हैं, मैं इस बीच में पारस्परिक सम्मान और पारस्परिक विश्वास की उस भावना को बल देने और उसके क्षेत्र को अधिक व्यापक करने की चेष्टाओं में, जिसके अभाव में कोई भी मंगलदायी कार्य संपन्न होना संभव नहीं है, अपना योग देने को सदैव तत्पर मिलूंगा। मैं व्यक्तिगत मित्रता के उन संबंधों को भी दृढ़ करने में पूरा योग दूंगा, जिनके द्वारा सार्वजनिक जीवन की कठिनाइयां बहुधा कम हो जाती हैं और उसके भार हल्के हो जाते हैं। इन मैत्री-पूर्ण संबंधों का अपना निजी महत्त्व और अपना निजी मूल्य है।"८८

उस समय घनश्यामदासजी ने कहा था, "लिनलिथगो में प्रतिभा नहीं है, लेकिन वह सुयोग्य हैं और अपना काम जानते हैं। कल्पनाविहीन हैं, किंतु व्यावहारिक हैं, साथ ही ईमानदार, सच बोलने वाले और उनके इरादे अच्छे हैं।"८९

सन उन्नीस सौ पैंतीस में ब्रिटिश सरकार ने यह वचन दे दिया था कि वह भारत को इस योग्य कर देगी कि वह 'कामनवेल्थ' के अंदर रहकर 'डोमिनियन स्टेटस'

---

८८. मेरे जीवन में गांधीजी, पृ. ३१९-३२०
८९. दि वाइसराय एटवे. जान ग्लैंडेबेन, पृ. ३४-३५

की अपनी प्रतिष्ठा को जी सके। इस बात को ब्रिटेन पर शासन कर रही कंजरवेटिव पार्टी का समर्थन प्राप्त नहीं था। फिर भी यह काम लार्ड लिनलिथगो को सौंपा गया जो सन उन्नीस सौ छत्तीस में भारत के वाइसराय बनकर आये। उनका मुख्य काम था—भारत में एक संघ राज्य (फेडरेशन) स्थापित करना।

द्वितीय गोलमेज परिषद के दिनों में घनश्यामदासजी की लार्ड लिनलिथगो से पहली मुलाकात लंदन में ही हुई थी। लंदन की इस मुलाकात के बाद वाइसराय लिनलिथगो से भारतवर्ष में वह पहली बार पांच अगस्त उन्नीस सौ छत्तीस को मिले। यह मुलाकात करीब एक घंटे तक चली। इस मुलाकात का जो विवरण स्वयं घनश्यामदासजी ने 'लिनलिथगो का शासनकाल' शीर्षक से दिया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि घनश्यामदासजी के लिए वाइसराय एक सदाशयी और ईमानदार आदमी हैं। उन्हें अपने देश और भारतवर्ष, दोनों जगहों से प्रतिकूल परिवेश में संघर्ष करना पड़ रहा है।

भारत में उस पहली भेंट के समय अधिकतर बातें घनश्यामदासजी ने ही कीं। उन्हें याद दिलायी कि जेटलैंड, हेलीफैक्स, लोदियन और होर ने जो उनसे कहा था कि गांधीजी को नये वाइसराय से मिलने से पहले कोई नया निर्णय करना चाहिए, वह संदेश उन्होंने गांधीजी तक पहुंचा दिया था। प्रसन्नता से उन्होंने कहा कि गांधीजी ने अपने वचन का पालन किया।

वाइसराय से मिलकर घनश्यामदासजी को यह विश्वास हो गया कि इस बार अंग्रेजों का इरादा पक्का है। यही कारण है कि उन्नीस सौ पैंतीस के ऐक्ट को घनश्यामदासजी ने स्वतंत्रता का पहला कदम माना। उस मुलाकात में घनश्यामदासजी ने वाइसराय से पूछा कि क्या वे गांधीजी को बुला रहे हैं? इसके उत्तर में उन्होंने बताया कि वह ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते जो कांग्रेस पार्टी को बढ़ावा दे और वोट पाने में उनकी सहायता करे। इसलिए वह गांधीजी को नहीं बुला रहे हैं, लेकिन उनके दरवाजे सबके लिए खुले हैं।

वाइसराय को यह लगा कि परोक्ष रूप से घनश्यामदास बिड़ला उनसे कह रहे हैं कि वह गांधी का समर्थन करें, क्योंकि गांधी कांग्रेस के उन तत्वों के प्रतिनिधि हैं जो उसके वामपक्ष का विरोध करते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण मुलाकात थी। इससे पता चलता था कि लिनलिथगो दृढ़ और लचीले दोनों ही हैं। उन्होंने बड़े तौलकर शब्दों का इस्तेमाल किया था, क्योंकि उन्हें मालूम था कि जो घनश्यामदास बिड़ला को मालूम होगा, वह गांधीजी को भी ज्ञात हो जायेगा।

अगले मार्च के चुनाव समाप्त हो जाने के बाद वाइसराय के साथ घनश्यामदासजी की जो बातचीत हुई, वह अधिक आशाप्रद थी। वाइसराय ने कहा, "मुझे खुशी है कि कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। मैं पहले से ही जानता था, पर मेरे आदमी यह नहीं जानते थे।"

इसके बाद घनश्यामदासजी ने पूछा, "अब क्या होगा ? आप तो जानते ही होंगे कि कांग्रेस का दिमाग किस ओर काम कर रहा है। जहां तक मैं समझ सका हूं, गांधीजी यह नहीं चाहते कि विधान बदला जाये, पर वह एक शालीन समझौता अवश्य चाहते हैं।"

वाइसराय ने जवाहरलालजी के संबंध में भी बात की। पूछा, "क्या गांधीजी और जवाहरलाल में गहरा स्नेह है ?"

घनश्यामदासजी ने उत्तर दिया, "हां, है।"

वाइसराय ने फिर पूछा, "यदि किसी समझौते की बात पर जवाहरलाल सहमत न हों, तो क्या गांधीजी उनके खिलाफ उठ खड़े होंगे ?"

घनश्यामदासजी ने उत्तर दिया, "जवाहरलालजी चुपचाप गांधीजी का अनुसरण करेंगे।"

कांग्रेस द्वारा पद ग्रहण करने से पहले ही गर्मी के दिनों में घनश्यामदासजी फिर भारत और ब्रिटेन के बीच व्यापारिक समझौते की बातचीत करने के लिए लंदन गये। उन्होंने इस अवसर से लाभ उठाया और पारस्परिक संदेहों को दूर करने और ऐसे समझौते पर पहुंचने की कोशिश की, जिसके द्वारा कांग्रेस के लिए प्रांतों में पद ग्रहण करने के बाद उस पर बने रहना संभव हो सके। उनकी कामना थी, इससे उस स्वशासन का आरंभ हो जाये जिसके लिए उस समय प्रांतीय स्वायत्त शासन का अवसर मिला था। उनकी योजना थी कि भारत के राजनीतिक नेताओं को शासन चलाने का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो जाये।

वाइसराय वस्तुतः गांधीजी से मिलने का विचार लेकर ही भारत आये थे, पर अभी तक गांधीजी से उनकी मुलाकात नहीं हुई थी। घनश्यामदासजी के लंदन पहुंचने के कुछ ही समय बाद उन्हें महादेव देसाई का पत्र मिला। पत्र में उन्होंने इतना तक लिख डाला कि लार्ड हेलीफैक्स हमारे साथ दुरंगी चाल चल रहे हैं और भारत के मित्र नहीं हैं। वह यों तो समझौते की तमाम बातें करते हैं, पर दिल से चाहते हैं कि गांधीजी के साथ किसी भी हालत में समझौता न किया जाये।

घनश्यामदासजी ने भी इंग्लैंड में यह अनुभव किया कि अंग्रेजों के दिमाग में भारतीयों के प्रति केवल अविश्वास है। यह जाति यदि किसी से डरती है तो वह केवल 'अधनंगा फकीर'--महात्मा गांधी से। उनसे न उन्हें आंखें मिलाने की हिम्मत है और न बातचीत करने की।

इंग्लैंड में घनश्यामदासजी को 'रायटर' ने टेलीफोन पर सूचना दी कि गांधीजी के कहने से कांग्रेस कार्यकारिणी ने छः प्रांतों में पद ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। इस समाचार से घनश्यामदासजी को बेहद खुशी हुई। उन्हें लगा कि हमारी मांगें कुछ हद तक पूरी हो गयी हैं, किंतु अभी बहुत कुछ हासिल करना है। अस्तु, "हमारी परीक्षा का समय आरंभ होता है और मुझे इसमें संदेह नहीं है कि बापू की देख-रेख में कांग्रेसी मंत्रिमंडल सबसे सफल मंत्रिमंडल सिद्ध होगा और हम अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे।"[९०]

इंग्लैंड से चलने के पहले घनश्यामदासजी लार्ड हेलीफैक्स, सर फिडलेटर स्टुअर्ट, लार्ड जेटलैंड और लार्ड लोदियन से मिले। अपनी भेंट में उन्होंने इन लोगों के दिमाग में यह बात बैठा देनी चाही कि यदि कांग्रेस मंत्रिमंडल के साथ विवेक से काम नहीं लिया गया तो वह पद त्याग देगी। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि ऐसी स्थिति में ब्रिटिश नौकरशाही को सीमा के भीतर रखना बहुत आवश्यक है।

इस बार इंग्लैंड जाने से पहले घनश्यामदासजी ने टोंसिल का आपरेशन करवाया था। इंग्लैंड प्रवास में अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए घनश्यामदासजी ने पटेबाजी फेंसिंग का अभ्यास किया। पटेबाजी ही क्यों? क्योंकि वह लड़ने का कौशल सिखाती है।

घनश्यामदासजी के लिए पटेबाजी कोई नयी चीज नहीं थी, क्योंकि वह बचपन में अच्छी खासी लाठी चला लेते और कुश्ती लड़ लेते थे। यहां यह सब जैसे उस पुराने अभ्यास को ताजा करने के लिए यत्न कर रहे थे।

इन्हीं दिनों बसंतकुमारजी का एक पत्र काकोजी के पास पहुंचा, जिसमें पुत्र ने पिता के स्वास्थ्य के बारे में जिज्ञासा प्रकट की थी। खासकर यह पूछा था कि वह क्या खाते हैं? इसके उत्तर में पिता ने अपने होटल 'ग्रासवेनर हाउस' पार्क लेन, लंदन से पत्र में यह बताया, "इस प्रकार खाता हूं :

| | | |
|---|---|---|
| सात बजे सुबह | : | एक पाव दूध |
| सवा दस बजे | : | पच्चीस खजूर, तीन टोमेटो, हरी पत्ती, एक पाव मट्ठा (दही यहां बहुत अच्छा मिलता है) |

९० गांधीजी की छत्रछाया में, पृ. ३३७

क अंग्रेजों के दिमाग में
सी से डरती है तो वह
आंखें मिलाने की हिम्मत

सूचना दी कि गांधीजी
स्वीकार कर लिया है।
लगा कि हमारी मांगें
रना है। अस्तु, "हमारी
है कि बापू की देख-रेख
र हम अपने लक्ष्य की

सर फिडलेटर स्टुअर्ट,
ंने इन लोगों के दिमाग
थ विवेक से काम नहीं
या कि ऐसी स्थिति में
क है।
का आपरेशन करवाया
यामदासजी ने पटेबाजी
ा कौशल सिखाती है।
ी, क्योंकि वह बचपन
यह सब जैसे उस पुराने

ा पहुंचा, जिसमें पुत्र
यह पूछा था कि वह
र हाउस' पार्क लेन,

हरी पत्ती, एक पाव
मिलता है)

की छत्रछाया में, पृ. ३३७

ढाई बजे : एक पाव दूध, तीन औंस माल्ट के साथ
साढ़े पांच बजे : तीन औंस शहद, पानी के साथ
आठ बजे : तरकारी डबल रोटी (चीज स्पेमटी)

यहां आने के बाद माल्ट, शुगर और शहद ज्यादा खाता हूं।"

बाईस जुलाई उन्नीस सौ सैंतीस को घनश्यामदासजी ने चर्चिल के साथ मुलाकात की। चर्चिल ने उन्हें दोपहर के भोजन पर आमंत्रित किया था। दो घंटे तक दोनों साथ रहे। चर्चिल ने कहा, "अब तो एक महान प्रयोग का आरंभ हो ही गया है।"

"हां, सो तो है, परंतु इसे सफल बनाने में आपकी सारी सहानुभूति, सदाकांक्षा की दरकार होगी," घनश्यामदासजी बोले।

चर्चिल बोले, "यह सब आप ही लोगों पर निर्भर है। आप जानते ही हैं कि जब से सम्राट ने विधान पर हस्ताक्षर किये हैं, मैंने उसके विरुद्ध जबान तक नहीं खोली। आप खेल के नियमों का पालन कीजिए, हम भी वैसा ही करेंगे।"

"इससे आपका क्या अभिप्राय है ?"

"हिंसा मत होने दीजिए और अंग्रेजों की हत्या मत करिए।"

"आप विश्वास करते हैं कि हम अंग्रेजों की हत्या करेंगे। उग्र-से-उग्र कांग्रेसवादी भी अंग्रेज-विरोधी नहीं है।"

"क्या यही बात जवाहरलाल नेहरू के संबंध में भी कही जा सकती है ?" चर्चिल ने पूछा।

घनश्यामदासजी का उत्तर था, "हां, यद्यपि मैं पूंजीवादी हूं और वह समाजवादी। सामाजिक कल्याण के संबंध में हम दोनों के दृष्टिकोण भिन्न हैं फिर भी यह कहना पड़ेगा कि वे एक महान व्यक्ति हैं। वे बहुत साफ तबीयत के आदमी हैं और अंग्रेज-विरोधी तो जरा भी नहीं हैं।"

यूरोप की राजनीतिक स्थिति घोर संकटों से घिरी थी। युद्ध की आशंका जोर पकड़ रही थी।

इस दौरान घनश्यामदासजी ने सीधे गांधीजी को पत्र न लिखकर महादेव भाई को ग्रासवेनर हाउस, पार्क लेन, लंदन से पत्र लिखे। इन पत्रों में वह ब्रिटिश राजनेताओं से हुई अपनी बातचीत तथा यूरोप की स्थिति के विषय में विस्तारपूर्वक लिखते थे। भारत के समाचार के लिए वह ऐसे लालायित रहते थे जैसे "सहारा के रेगिस्तान

में प्यास से कोई तड़प रहा हो।'' महादेव भाई के पत्रों से उनकी यह प्यास बुझती थी। उस इतिहास-निर्माणकाल में घनश्यामदासजी के मन से एक पल के लिए भी स्वदेश की चिंता दूर नहीं होती थी। वहां होने वाली हर छोटी-बड़ी घटना का वह बारीकी से अध्ययन करते रहते थे।

भारत लौटने के बाद घनश्यामदासजी सन उन्नीस सौ सैंतीस के दिसंबर महीने में वाइसराय लिनलिथगो से मिले। उन्होंने वाइसराय को यह बताया कि गांधीजी ने उस प्रस्ताव का बिलकुल ही खंडन कर दिया, जिसमें यह था कि यदि 'संघ' बना तो कांग्रेस मंत्रिमंडल त्यागपत्र दे देगा।

घनश्यामदासजी का मत था कि गांधीजी राज्यों को लेकर संघ बनाने के विरोधी नहीं थे। वे रक्षा और विदेश विभाग के लिए अधिक चिंतित थे। इस बात का आश्वासन चाहते थे कि दोनों मामले वाइसराय के लिए ही सुरक्षित नहीं रहे। इस प्रसंग में लिनलिथगो, बिड़लाजी से इतना ही कह सके कि वे यह अवश्य चाहेंगे कि उनका संघीय मंत्रिमंडल उन्हें इन दो विषयों पर राय दे।९१

घनश्यामदासजी ने वाइसराय को सलाह दी कि संविधान को कार्यशील बनाने के लिए कांग्रेस मंत्रिमंडलों को अनुभव और राजनीतिक प्रशिक्षण की जरूरत है। ऐसे समय वाइसराय को चाहिए कि वह उन्हें अपना सहयोग दे। इस पर लिनलिथगो ने कहा कि वह सहारा देने को प्रस्तुत हैं, बशर्ते कांग्रेस-मंत्रिमंडल शांति और व्यवस्था बनाये रखे। यदि ऐसा न हुआ तो उसका हस्तक्षेप अनिवार्य हो जायेगा।९२

उन्नीस सौ अड़तीस के शुरू में घनश्यामदासजी फिर वाइसराय से मिले। उन्होंने सोचा कि कांग्रेस, संघ को स्वीकार कर लेने के पथ पर बढ़ रही है। उन्होंने वाइसराय को बताया कि गांधी, केन्द्र द्वारा रक्षा और विदेशी मामलों पर अधिकार के कारण ज्यादा चिंतित नहीं हैं। वे राज्यों से प्रतिनिधि चुनने के तरीके पर ज्यादा ध्यान दे रहे हैं।९३ घनश्यामदासजी चाहते थे कि इस मामले में वाइसराय गांधीजी की मदद करें, पर लिनलिथगो का उत्तर था कि यह कार्य बहुत कठिन है। अपने उद्योग-साम्राज्य पर सफलतापूर्वक शासन करने वाले घनश्यामदासजी ने उत्तर दिया, ''गांधीजी मूल सिद्धांतों पर ही ध्यान देते हैं। सामान्य बातों की चिंता उन्हें नहीं होती।''

९१. इंडियाज मार्च टु वर्ड्स फ्रीडम, पृष्ठ ७५-७६
९२. वायसराय एटवॅ, पृष्ठ ७५-७६
९३. वही, पृष्ठ ८८-८९

इस पर वाइसराय ने सिद्धांतों पर अटल रहने के झगड़ों की ओर घनश्यामदासजी का ध्यान दिलाया और कहा कि उस हालत में मुसलमान अलग होकर अपना हक मांगेंगे।

घनश्यामदासजी जानते थे कि भारत में हिंदू-मुसलमान के विरोध की स्थिति चिंताजनक होती जा रही है। संभवतः उनकी दूरदृष्टि ने उसी समय पाकिस्तान की स्थापना को अनिवार्य समझ लिया था। उन्होंने वाइसराय से कह दिया कि यदि और कोई रास्ता बिलकुल ही न निकले तो इस हालत में उत्तर-पश्चिम में मुसलमानों को अपना ही संघ बना लेने देना चाहिए। यह उत्तर लिनलिथगो को अभूतपूर्व लगा और उनके मन में ख्याल आया कि शायद घनश्यामदास बिड़ला मजाक कर रहे हैं।

सन उन्नीस सौ उन्तालीस के उत्तरार्द्ध में दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया। इस कारण सारे संसार की स्थिति भयावह हो गयी। चारों ओर निराशा का अंधकार छा गया। भारत में जहां इस समय स्वतंत्रता प्राप्त करने की तैयारियां हो रही थीं, वहां जैसे यह अंधकार और भी घनीभूत हो उठा। इस अंधकार से उबरने के लिए घनश्यामदास-जी के मन में एक विचारपूर्ण योजना बनने लगी। "जो युद्ध इंग्लैंड लड़ रहा हो, उस युद्ध का प्रभाव बहुत सारे देशों की स्वतंत्रता पर पड़ेगा, भारत की अप्राप्ति स्वतंत्रता पर भी।"९४

जब सब बातें उनके मन में स्पष्ट हो गयीं तो उन्होंने उस योजना का प्रारूप भारत के वाइसराय और ब्रिटेन के कुछ मित्रों को भेजा, "लोकतांत्रिक शक्तियों की पराजय का प्रभाव भारत तथा अन्य निर्बल देशों की स्वतंत्रता पर निश्चित रूप से पड़ेगा। भारत की ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट निर्णय लेना होगा कि उसका दायित्व और कर्त्तव्य क्या है ?"

"भारत ने सदा यही कहा है कि निर्बल देशों की रक्षा के लिए इंग्लैंड को हथियार उठाना चाहिए। इसके साथ ही यदि भारत यह भी कहे कि वह इंग्लैंड को अपना सहयोग नहीं देगा, तो इस कथन को लोकतांत्रिक और फासिस्ट दोनों शक्तियां गलत समझेंगी। लोकतंत्र के शत्रुओं की विजय न भारत चाहता है और न चाह सकता है। भारत का कोई भी नेता इंग्लैंड की कठिनाई को अपने लिए सुअवसर नहीं समझता है। यदि इंग्लैंड के कष्टों को भारत के लिए सुअवसर समझना भूल होगी, तो फिर ग्रेट-ब्रिटेन के लिए भी, उससे भी बड़ी भूल यह होगी कि एक ओर तो वह भारत से

९४. इंपोर्टेन्ट पेपर्स, ६.९.१९३९-७.७.१९४०, फाइल नं. ३८ आफ पर्सनल पेपर्स

एक महान उद्देश्य की रक्षा के नाम पर उसके उच्च विचारों को जगाकर उनसे फायदा उठाये और दूसरी ओर उसी उद्देश्य से उसे वंचित रखे जिसके लिए वह अन्यत्र युद्ध कर रहा है। भारत की स्वतंत्रता के लिए इस समय इंग्लैंड से अधिक आदर की अपेक्षा की जाती है। भारत ने संकट के समय सदा इंग्लैंड का साथ दिया है, इसलिए भारत को इंग्लैंड का मित्र समझना चाहिए। भारत के लिए स्वतंत्र शासन के अधिकार को लेकर कोई झगड़ा नहीं है। झगड़ा है स्वतंत्र शासन करने की उसकी योग्यता को लेकर। परंतु पिछले दो सालों में भारत ने प्रांतों में जिस प्रकार सफलता से शासन चलाया है, उससे उसके दुश्मनों के मन से भी संदेह दूर हो गया है। कोई भी इस बात से असहमत नहीं हो सकता कि पूर्ण स्वतंत्रता की ओर भारत के प्रस्थान में अब देर नहीं करनी चाहिए। ऐसा न हो कि लोग यह कहें कि इंग्लैंड ने लोकतंत्र की रक्षा के लिए अन्यत्र तो युद्ध किया, लेकिन अपने ही मित्रों को उन सिद्धांतों से वंचित रखा, जिसके लिए वह चाहता था, भारत युद्ध करे।"[९५]

इस मसौदे को तैयार करने का उद्देश्य स्पष्ट था। घनश्यामदासजी अंग्रेजों के मन में भारत के प्रति सौजन्यता और सहृदयता को पूरी तरह जगाना चाहते थे। गांधीजी की तरह वह चाहते थे कि अंग्रेजों के मन में न केवल वैमनस्य समाप्त हो, बल्कि मित्रता भी स्थापित हो। यही वजह थी कि वह अंग्रेजों के संकट और दुर्दिन से किसी प्रकार के भी लाभ उठाने के पक्ष में नहीं थे।

इस समय लार्ड लिनलिथगो ने ऐलान किया कि एक सहायक समिति का गठन किया जायेगा जिसमें सारे भारतीय राजनीतिक दल के प्रतिनिधियों के साथ, रजवाड़ों के राजे भी होंगे। साथ ही उन्होंने यह भी घोषणा की कि युद्ध के बाद सन उन्नीस सौ पैंतीस के ऐक्ट में आवश्यक संशोधन किये जाएंगे। कांग्रेस की कार्यकारी समिति ने इसका विरोध किया और कांग्रेस मंत्रिमंडलों को त्यागपत्र देने के लिए कहा गया।

इन्हीं दिनों सर स्टाफोर्ड क्रिप्स ने भारत की यात्रा की। घनश्यामदास बिड़ला उस समय क्रिप्स के आने से चिंतित थे। उन्होंने वाइसराय से कहा कि उन्हें डर है कि स्थिति चिंताजनक हो जायेगी। नेहरू के संबंध में उन्होंने कहा कि जब वे व्याख्यान देने के लिए मंच पर खड़े होते हैं, जोश में बह जाते हैं। इस बात के उत्तर में लिनलिथगो ने कहा कि उन्हें जो जिम्मेदारियां सौंपी गयी थीं, उन्हें निभाने में उन्हें बड़ी कठिनाई हो रही है। घनश्यामदास बिड़ला ने कहा कि "भारत के लिए गांधीजी ही एकमात्र आशा रह गये हैं।"

९५. इंपोर्टेंट पेपर्स, ६.९.१९३९-७.७.१९४०, फाइल नं. ३८ आफ पर्सनल पेपर्स

उस समय घनश्यामदास बिड़ला ने वाइसराय को एक पत्र लिखा जिसका अभिप्राय था कि यद्यपि गांधीजी और वाइसराय के बीच बातचीत सफल नहीं हो पायी है, फिर भी वाइसराय और गांधीजी एक-दूसरे के समीप आ गये हैं। गांधीजी का मत था कि अल्पसंख्यकों की समस्या की आड़ में अंग्रेजों को अपने उचित कर्त्तव्य से नहीं हटना चाहिए। साथ ही भारतीयों को चाहिए कि इस समस्या से मुंह न छुपाएं, स्वयं इसका हल खोज निकालें। लगता था, स्थितियां भिन्न थीं। युद्ध के कारण लार्ड लिनलिथगो ने बिना परामर्श किये ही भारत को युद्धरत राष्ट्र घोषित कर दिया। इस बात को घनश्यामदासजी ने अंग्रेजों की गंभीर भूल माना।

कांग्रेसी मंत्रियों ने युद्ध के आरंभिक काल में पद-त्याग कर दिया। तब भी घनश्यामदासजी के प्रयत्नों से वाइसराय ने फिलहाल गांधीजी के साथ संपर्क बनाये रखा और दोनों के बीच अनेक पत्र-व्यवहार हुए। लगभग एक गतिरोध-सा आ गया था परंतु घनश्यामदास बिड़ला ने यह उचित समझा कि इस सन्नाटे को तोड़ा जाये। दोनों पक्षों में फिर परस्पर बातचीत हो सके, इसके लिए उन्होंने सार्थक परिस्थिति का निर्माण किया। भारत की स्वतंत्रता और उसके संविधान का स्वरूप क्या हो, इसका उन्होंने अपने विवेक-अनुसार एक प्रारूप तैयार किया। उस प्रारूप को एक पत्र के रूप में उन्होंने राजर हिक्स को भेजा। उन्होंने पांच सुझाव दिये थे। घनश्यामदासजी के सिवाय इंग्लैंड में क्वेकरों ने और समझौता समिति के कार्लहीथ जैसे अन्य सदाशयी व्यक्तियों ने भी कोई रास्ता ढूंढ़ निकालने का प्रयास किया था। ये प्रयास निष्फल रहे। तब भी ग्यारह नवंबर उन्नीस सौ उन्तालीस को घनश्यामदासजी वाइसराय लिनलिथगो से मिले। वाइसराय से मिलकर घनश्यामदासजी को लगा, "वह बहुत ही दुखी और चिंतित थे। युद्ध एक भयंकर मोड़ ले रहा है··· वाइसराय भारत को लेकर बहुत परेशान हैं। यदि मैं कोई ठोस प्रस्ताव ले जाऊं तो वह उस पर सहानुभूति से विचार करेंगे।"

घनश्यामदासजी ने इस पूरी परिस्थिति का विश्लेषण किया। उन्हें मालूम था, अंग्रेजों की योजना एक और गोलमेज परिषद बुलाने की थी। विधानसभा में प्रतिनिधित्व के प्रश्न को लेकर भारतीय और अंग्रेजों में मतभेद था, "हम भारतीय उसमें ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि नहीं चाहते।"९६

डायरी के उन्हीं पृष्ठों में घनश्यामदासजी ने आगे लिखा कि तीन चरणों में

९६. इंपोर्टेन्ट पेपर्स, ६.९.१९३९-७.७.१९४०, फाइल नं. ३८ आफ पर्सनल पेपर्स

स्वतंत्रता-प्राप्ति का सुझाव उन्होंने वाइसराय के आगे रखा ।

(१) वाइसराय के मंत्रिमंडल में भारतीयों का तुरंत प्रवेश ।

(२) उन्नीस सौ पैंतीस के ऐक्ट, इस प्रावधान के साथ कि रक्षामंत्री और विदेश मंत्री दोनों ही असेंबली के अधीन हों ।

(३) युद्ध के समाप्त होते ही 'डोमिनियन स्टेटस' की घोषणा ।

वाइसराय को उस सुझाव में कोई दोष नहीं दिखायी दिया । लेकिन मंत्रिमंडल में भारतीयों के प्रवेश के प्रति उन्होंने आस्था नहीं दिखायी । वाइसराय ने कहा कि नये मंत्री जब-तब अपना त्यागपत्र देते रहेंगे और यह लज्जास्पद बात हो जायेगी ।

वाइसराय के साथ घनश्यामदासजी की खुली बातचीत हुई । इसके बाद घनश्यामदासजी को लगा, वाइसराय एक ओर विश्वयुद्ध की भयानकता और दूसरी ओर भारतीय स्वतंत्रता मार्ग पर आयी हुई विषम परिस्थिति के कारण, बहुत ही क्षुब्ध और निराश हैं । वाइसराय को इस तरह देखकर घनश्यामदासजी समझ गये कि भारतीय स्वतंत्रता के संदर्भ में इनसे इस समय कुछ भी आशा करना बेकार है ।

घनश्यामदासजी को जो आभास हुआ, वह धीरे-धीरे भारतीय बुद्धिजीवी और जागरूक लोगों के मानस में भी उतर आया । पूरे भारत के लोगों में यह धारणा बनने लगी कि ब्रिटिश सरकार के इरादे सच्चे नहीं हैं । इसके फलस्वरूप लोगों में घोर असंतोष भरने लगा और उसका विस्फोट हुआ आठ अगस्त उन्नीस सौ बयालीस के 'भारत-छोड़ो आंदोलन' में । तय तो यही हुआ था कि गांधीजी के नेतृत्व में यह आंदोलन शांतिपूर्ण रहेगा, लेकिन सरकार ने पहले से ही चौकन्नी होकर सारे नेताओं को गिरफ्तार कर लिया । आंदोलन अपनी दिशा खो बैठा और सारे देश में खलबली मच गयी । लोग विध्वंस और हिंसा पर उतर आये । लार्ड लिनलिथगो को यह संदेह हो गया कि इस आंदोलन को बिड़ला परोक्ष रूप से वित्तीय सहायता दे रहे हैं ।९७

गांधीजी पूना के आगाखां पैलेस में नजरबंद थे । उन्होंने वहां उपवास की घोषणा कर दी, उपवास की अवधि इक्कीस दिन है, सुनकर घनश्यामदासजी घबरा गये । के० एम० मुंशी को अपने साथ लेकर घनश्यामदासजी ने एक प्रतिनिधि सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया, जिससे सरकार को बापू की रिहाई के लिए प्रेरित किया जा सके । राजगोपालाचारी और सर तेजबहादुर सप्रू को तार भेजकर उनसे सम्मेलन में उपस्थित होने का अनुरोध किया । वे राजी हो गये ।

९७. द ट्रांसफर आफ पावर, खंड २, पृष्ठ ७६२, डाकूमेंट संख्या ५९२

घनश्यामदासजी का दिल्ली वाला मकान इतने बड़े सम्मेलन के लिए पर्याप्त नहीं था, इसलिए घनश्यामदासजी ने उसका अधिवेशन भारतीय व्यापारी संघ के अहाते में किया। सबने एक स्वर से गांधीजी को रिहा करने का प्रस्ताव किया। तब भी ब्रिटिश सरकार का दिल नहीं पसीजा। घनश्यामदासजी को भय हुआ, गांधीजी की यदि मृत्यु हो जाये, तो क्या होगा ?

गांधीजी सामान्य व्यक्ति नहीं थे। उनका अनशन निर्विघ्न पूरा हो गया। इसी बीच बापू के विश्वस्त निजी मंत्री और घनश्यामदासजी के परमप्रिय मित्र महादेव भाई का नजरबंदी काल में ही देहावसान हुआ। यों तो गांधीजी द्वंद्वों से परे महापुरुष थे, तब भी महादेव भाई के देहावसान से उन्हें बहुत क्लेश हुआ।

प्यारेलाल और उनकी बहन डा० सुशीला का गांधीजी के साथ पुराना संबंध था। अब महादेव भाई का स्थान प्यारेलाल ने ले लिया। महादेव भाई के स्वर्गवास के बाद ही आगाखां पैलेस में कस्तूरबा ने भी गांधीजी से अंतिम विदा ले ली। गांधीजी के लिए यह जीवन का सर्वाधिक टूटन का क्षण था। कस्तूरबा के बिना गांधीजी को जो लगा हो वह अलग बात है, घनश्यामदासजी को लगा कि गांधीजी के प्रति उनकी जिम्मेदारी अब और अधिक बढ़ गयी है।

उसी समय कुछ मित्रों ने, जिन्होंने बिड़ला-परिवार के साथ बापू के संपर्क को सदैव अपनी ईर्ष्या का विषय बनाया था, यह आपत्ति उठायी कि जब कभी बापू दिल्ली या बंबई आते हैं तो बिड़ला भवन में ही क्यों ठहरते हैं ? उन्होंने बापू को यह समझाने की चेष्टा की कि बिड़ला भवन से ही वह पहले भी गिरफ्तार हो चुके हैं और उनकी गिरफ्तारी बिड़ला-परिवार के लिए अहितकर हो सकती है। बापू ने कहीं और ठहरने से इंकार कर दिया और उन्होंने जब यह बात घनश्यामदासजी को बतायी तो उनका यही उत्तर था कि किसी भी हालत में वह बापू की जिम्मेदारी उठाने से पीछे नहीं हटेंगे। यह जिम्मेदारी उन्होंने निबाही भी। वे गांधीजी का ध्यान रखते रहे और साथ ही यह स्पष्ट करते रहे कि मेरी भक्ति बापू के प्रति है और मैं उन्हें किसी भी चीज के लिए इंकार नहीं कर सकता हूं। उन्हें मुझसे जो रुपया मिला, उसे उन्होंने ऐसे काम में लगाया जो जनता के हित के लिए हो। जनता के लिए वे बहुत बड़े धन-संग्राहक बन गये थे, तथा उनकी अपीलें हरिजनों, गृह-उद्योगों, बुनियादी तालीम और विविध रचनात्मक कामों के लिए होती थीं।९८

९८. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ४२६

गांधीजी ने राजनैतिक कार्यों के लिए घनश्यामदासजी से पैसा नहीं मांगा। यदि वे मांगते तो घनश्यामदासजी राजनैतिक कार्यों के लिए भी गांधीजी को पैसा देते। गांधीजी को किसी भी काम के लिए मना करना उनके लिए संभव ही नहीं था। किंतु गांधीजी स्वयं चाहते थे कि घनश्यामदासजी का रुपया खादी, हरिजन-उद्धार, आश्रम के कार्य इत्यादि रचनात्मक कामों में ही लगे, इसीलिए उन्होंने उन्हीं रचनात्मक कामों के लिए समय-समय पर रुपया मांगा।

वाइसराय को भी इसका विश्वास नहीं था कि घनश्यामदासजी का रुपया राजनीतिक कामों में नहीं लगता था। उनके सेक्रेटरी लेथवेट से घनश्यामदासजी की एक बार जबरदस्त बहस हुई।

लेथवेट ने घनश्यामदासजी से कहा, "क्या यही बात सबकी जबान पर नहीं है कि आप कांग्रेस को धन देते हैं।"

घनश्यामदासजी ने कहा, "सबकी जबान पर क्या बात है, इससे तो मुझे कोई सरोकार नहीं है, प्रश्न तो यह है कि क्या आपका भी यही विश्वास है ?"

उन्होंने कहा, "नहीं !"

घनश्यामदासजी ने कहा, "चूंकि मुझे यह पता चल गया है कि वाइसराय को मुझ पर भरोसा नहीं है, इसलिए मैं बात को आगे नहीं बढ़ाना चाहता।"

लेथवेट ने कहा, "पर क्या आप कांग्रेसवादी नहीं हैं ?"

घनश्यामदासजी ने उत्तर दिया, "मैं और कुछ नहीं जानता, मैं गांधीवादी अवश्य हूं। गांधीजी मेरे लिए पिता के समान हैं। मैं उनके सारे लोकोपकारी और रचनात्मक कार्यों में गहरी दिलचस्पी रखता हूं। गांधीजी ने मुझसे राजनैतिक लड़ाई में भाग लेने को कभी नहीं कहा। वाइसराय को अब तक यह जान लेना चाहिए था कि समूचे भारत में उनकी सहायता करने की जितनी चेष्टा मैंने की और उनका साथ देने के मामले में जितनी वफादारी मैंने दिखायी, उतनी और किसी ने नहीं दिखायी होगी और वाइसराय ने मुझे यह पुरस्कार दिया है। यदि वाइसराय की धारणा यह है कि एक ओर तो मैं उनके पास एक मित्र की हैसियत से आता हूं और दूसरी ओर गुप्त रूप से उनके खिलाफ काम कर रहा हूं तो फिर उनका समय और अधिक बर्बाद करने की मेरी इच्छा नहीं है। वाइसराय ने मेरी ईमानदारी पर शक करके मेरे प्रति अन्याय किया है और मैं और अधिक लांछित होना नहीं चाहता।"[९९]

९९. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ४२७-४२८

लेथवेट ने घनश्यामदासजी को शांत करने की बहुत चेष्टा की। वे उन्हें विदा करने के लिए अपने कार्यालय के बाहरी अहाते तक आये। हर तरह का शिष्टाचार दिखाया, पर घनश्यामदासजी किसी भी तरह शांत होने की वृत्ति में नहीं थे।

लेथवेट ने कहा, "हम चाहे जब मिल सकते हैं और बातचीत कर सकते हैं।"

पर घनश्यामदासजी ने कह दिया, "वाइसराय की ओर से यह प्रसाद पाने के बाद वाइसराय भवन में फिर पांव रखने की मेरी इच्छा नहीं है और उनके साथ मेरी बातचीत का यह बिल्कुल अंतिम अध्ययन है।"१००

बीस अक्तूबर उन्नीस सौ तैतालीस को लिनलिथगो के बाद लार्ड वैवेल भारत के वाइसराय बनकर आये। उन्हें इसलिए चुना गया था, क्योंकि वह एक फौजी थे। इस समय भारत, ब्रिटिश सरकार के लिए दोहरा संकट बना हुआ था। भारत की सीमा पर जापानी सैनिक बढ़े आ रहे थे और अंदर, देश में हिंदू और मुसलमानों के बीच भयंकर तनातनी चल रही थी।

ऐसे समय में भी घनश्यामदासजी कांग्रेस और सरकार के बीच कड़ी बने रहे। सबसे पहले लार्ड वैवेल ने घनश्यामदासजी को बंगाल अकाल के संबंध में बातचीत के लिए बुलाया। इस बात का उतना राजनीतिक महत्त्व नहीं था, लेकिन इससे यह पता चलता है कि ब्रिटिश सरकार घनश्यामदासजी की आर्थिक सूझ-बूझ का कितना लाभ उठाना चाहती थी।

लार्ड वैवेल यह जानते थे कि लड़ाई खत्म होते ही यदि भारत को आजादी न मिली तो सारे संसार में ब्रिटेन की बदनामी हो जायेगी। इसलिए उन्होंने प्रचलित संविधान के अंतर्गत एक अस्थायी सरकार बनाने की योजना बनायी। घनश्यामदासजी को इस बात का आभास हो गया था। छब्बीस नवंबर उन्नीस सौ चवालीस को इसी बात की पुष्टि के लिए वह लार्ड वैवेल के निजी सचिव सर ई० जैनिकन्स से मिले। उसी दिन वाइसराय ने भारत सचिव लार्ड एमेरी को लिखा, "बिड़ला की राय में इसी विधान के अंतर्गत एक मिली-जुली सरकार बनाना असंभव नहीं है। उनके अनुसार गांधीजी का भी यही मत था।"१०१

इस समय घनश्यामदासजी चाहते थे कि जल्दी-से-जल्दी इस मामले का फैसला हो जाये। इसके दो कारण थे—एक, समय बड़ी तेजी से बदल रहा था, लोगों की मांगें भी बहुत थीं। दूसरी बात यह, इस समय कांग्रेस में उग्रवादी कम थे और समझौता

१००. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ४२८
१०१. द्वि ट्रांसफर आफ पावर खंड २, पृष्ठ २५२, डाकुमेंट संख्या १२०

करना आसान था । लार्ड वैवेल वैधानिक सुधार के विषय में नेताओं से बातचीत कर रहे थे । उस समय गांधीजी रोग शैया पर थे । घनश्यामदासजी को भय था कि गांधीजी की मृत्यु के बाद कांग्रेस में बवेला उठ खड़ा हो सकता है, जिसका लाभ उठाकर ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता के सवाल को फिर टाल देगी । इसी आशय का एक तार लार्ड वैवेल ने एमेरी को उन्नीस जनवरी उन्नीस सौ पैंतालीस को भेजा ।१०२

चौबीस मई उन्नीस सौ पैंतालीस को घनश्यामदासजी और वैवेल लंदन में मिले । वैवेल ने उस समय की चर्चा से यह अंदाजा लगाया कि भारत के शिक्षित वर्ग ने समझौते के लिए अच्छा वातावरण तैयार कर रखा है । उन्होंने घनश्यामदासजी से यह भी पता लगा लिया कि गांधीजी अंग्रेजों के खिलाफ नहीं हैं, समझौते के लिए तैयार हैं । अपनी बातचीत में उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि वह भारत में एक ऐसी सरकार चाहते हैं, जो संविधान से अधिक देश की अर्थव्यवस्था पर ध्यान दे । उन्हें डर था कि भारत में यदि समाजवादियों की शक्ति बढ़ जायेगी तो इसका प्रभाव अच्छा नहीं होगा।

अपने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों के आधार पर घनश्यामदासजी को यह विश्वास था कि जो भी हो, समाजवादी गरीबी बांटते हैं और पूंजीवादी समृद्धि ।

भारत लौटने पर, चौदह जून उन्नीस सौ पैंतालीस को लार्ड वैवेल ने एक रेडियो-वार्ता दी । उसमें उन्होंने कहा कि वह एक नयी कार्यकारिणी बनाने जा रहे हैं। उसमें वाइसराय और फौज के सेनापति के अतिरिक्त सभी सदस्य भारतीय रहेंगे । उसमें आधे हिंदू और आधे मुसलमान । जेल में बंद सारे राजनीतिक नेताओं की रिहाई की भी आज्ञा दे दी गयी है। इसी के बाद शिमला में कांफ्रेंस हुई जिसमें मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग पर दृढ़ थी । महात्मा गांधी भारत के विभाजन के विरुद्ध थे।

सन उन्नीस सौ छियालीस के जनवरी तक भारतीय राजनीति पाकिस्तान के मामले को लेकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच तनातनी से भरी रही । अंत में ब्रिटिश सरकार ने दो अलग-अलग भागों में पाकिस्तान बनाने की अनुमति दे दी थी । ऐसा ब्रिटिश सरकार ने लार्ड वैवेल के सुझाव पर किया था । लार्ड वैवेल के सलाहकारों में थे—सर होमी मोदी, डा० जान मथाई (दोनों ही टाटा के डायरेक्टर) और घनश्यामदास बिड़ला (कांग्रेस के समर्थक) जिन्होंने शांतिपूर्ण सत्ता हस्तांतरण के लिए वाइसराय को यह सुझाव दिया था ।१०३

१०२. द्वि ट्रांसफर आफ पावर, खंड ५, पृष्ठ ४७९, डाक्यूमेंट संख्या २३५
१०३. वैवेल का पेथिक लारेंस को पत्र, १ जनवरी १९४६,
घनश्यामदासजी बिड़ला का ट्रेंडरसन को पत्र, ६ दिसंबर १९४५

चौबीस मार्च उन्नीस सौ छियालीस में एक केबिनेट मिशन भारत आया। उसके सदस्य थे—लार्ड पेथिक लारेंस, जो उस समय सेक्रेटरी आफ स्टेट थे और सर स्टाफर्ड क्रिप्स, जो बोर्ड आफ ट्रेड के सभापति थे। मिशन का काम था—स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माण तक एक अंतरिम सरकार बनाना। उसमें वाइसराय के अतिरिक्त कोई और अंग्रेज नहीं होगा। इस कार्य में घनश्यामदासजी ने कैबिनेट मिशन की कितनी सहायता की, उसके बारे में 'ट्रांसफर आफ पावर' के पृष्ठों में काफी चर्चा है।

कैबिनेट मिशन के सभी प्रयास असफल हुए। मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच समझौता नहीं हो सका। हिंदू-मुस्लिम दंगों ने भयानक रूप धारण कर लिया। घनश्यामदासजी की समझ में अब स्पष्ट रूप से यह आ गया कि ये दंगे गृह-युद्ध का ही रूप नहीं लेंगे, बल्कि इसी के साथ अब पाकिस्तान बनकर ही रहेगा।

बारह सितंबर उन्नीस सौ छियालीस को नेहरूजी के नेतृत्व में अंतरिम सरकार बन गयी। अंतरिम कैबिनेट की पहली मीटिंग से पूर्व इसके सारे मंत्रिगण बिड़ला हाउस गये। वहां रामेश्वरदास बिड़ला की धर्मपत्नी ने सबके हाथ में नारियल देकर माथे पर तिलक लगाया।

आरंभ में मुस्लिम लीग इसमें शामिल नहीं हुई, लेकिन अक्तूबर में लियाकत अली आ गये और उन्होंने वित्त विभाग संभाला। लियाकत अली ने इस सरकार की ओर से बजट पेश किया, वह ऐसा था कि जिससे कांग्रेस और उसके सहयोगी, विशेषकर जो समृद्ध उद्योगपति थे, उनके बीच अलगाव आ जाये। घनश्यामदासजी को इन बातों की चिंता नहीं थी। उन्हें यही चिंता थी कि अंतरिम मंत्रिमंडल एक सुखी, स्वस्थ परिवार सिद्ध नहीं हो रहा है। वह दो झगड़ने वाले तत्त्वों का अखाड़ा बन गया है। उन्हें अनुमान हो गया कि तेल और पानी की तरह उनके मिलने की कोई संभावना नहीं है।

इसके बाद कलकत्ता में जो भयंकर नरसंहार हुआ, उससे घनश्यामदासजी के हृदय पर बड़ी चोट लगी। उन्होंने सोलह अक्तूबर उन्नीस सौ छियालीस को सर स्टेफर्ड क्रिप्स को लिखा, "लीग अंतरिम सरकार में विरोधी मानस के साथ शामिल हो रही है। जिन्ना ने जवाहरलालजी की शर्तों को तो अस्वीकार कर दिया, पर जब वही शर्तें उनके सामने वाइसराय ने रखीं तो उन्हें स्वीकार कर लिया। यह भावी मेल-मिलाप के शुभ चिह्न नहीं हैं। हमारी सरकार को तो राजनीति की अपेक्षा जनता की गरीबी की ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए।"

इसी पत्र में महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू ने बंगाल और बिहार में सांप्रदायिक एकता स्थापित करने का जो शौर्यपूर्ण कार्य किया था, उसके बारे में भी घनश्यामदासजी ने सर स्टेफर्ड को लिखा। उन्होंने अठारह नवंबर उन्नीस सौ छियालीस को घनश्यामदासजी को उत्तर दिया, "मेरे खयाल में शांति-स्थापना के कार्य में गांधीजी का योगदान बहुत ही उल्लेखनीय रहा है और उन्होंने जो कुछ किया है, उसके लिए मैं उनका अत्यंत आभारी हूं।"१०४

इस अवधि में महात्मा गांधी, जो उस समय नोआखाली में सांप्रदायिक सद्भाव-यज्ञ में अपने आपकी आहुति डालने लगे थे, काजिरखिल शिविर, तारघर रामगंज से बराबर घनश्यामदासजी को पत्र देते रहे। साथ ही प्यारेलालजी और घनश्याम-दासजी के बीच तार द्वारा संपर्क जारी रहा। घनश्यामदासजी बराबर यह जानकारी रखते रहे कि—गांधीजी का स्वास्थ्य कैसा है ? वे क्या खा रहे हैं ? कितना विश्राम कर पा रहे हैं ? नोआखाली के किन-किन गांवों का दौरा कर रहे हैं ?

बापू का छब्बीस नवंबर उन्नीस सौ छियालीस का घनश्यामदासजी के नाम पत्र, उस समय की घोर संकटपूर्ण स्थिति का दस्तावेज है, "चिरंजीव घनश्यामदास, तुम्हें पता है कि मैं श्रीरामपुर में एकाकी रहता हूं। जब तक यहां के हिंदू-मुसलमान हार्दिक मैत्री से नहीं रहते, तब तक तो यहीं रहने का इरादा है। भगवान ही मन स्थिर रख सकता है। आज तो दिल्ली छूटा, सेवाग्राम छूटा, उरूली, पंचगनी छूटा। इच्छा यहां मरना या करना है। इसमें मेरी अहिंसा की परीक्षा है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए आया हूं।" अब घनश्यामदासजी गांधीजी के इतने पास पहुंच चुके थे कि उनके विश्वस्ततम व्यक्तियों में वे एक थे।

इस दुखभरे काल में घनश्यामदासजी ने एक लंबा पत्र फिर सर स्टेफर्ड क्रिप्स को लिखा। इसमें उन्होंने मुस्लिम लीग की जिद, अपशब्दों का व्यवहार करने वाले जिन्ना के सामने वाइसराय का सिर झुकाना, सांप्रदायिक दंगों और मुसलमानों द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई आदि घटना का समुचित ब्यौरा दिया। साथ ही उन्हें विश्वास दिलाने की चेष्टा की कि कांग्रेस अधिक से अधिक सदिच्छा से काम कर रही है। स्थिति कैसे संभाली जाये, क्रिप्स के इस प्रश्न के उत्तर में घनश्यामदासजी ने निम्नलिखित सुझाव दिये :

१. अंतरिम सरकार एक टोली के रूप में काम करे। मुस्लिम लीग या तो

१०४. मेरे जीवन में गांधीजी, पृष्ठ ४३७

संविधान सभा में भाग ले या अंतरिम सरकार से अलग हो जाये। उससे यह बात साफ-साफ और दृढ़तापूर्वक कह देनी चाहिए।

२. यद्यपि मैं आत्मनिर्णय के सिद्धांत पर आपत्ति नहीं करता, पर साथ ही हम यह भी हर्गिज मंजूर नहीं करेंगे कि हमारे ऊपर उनका प्रभुत्व लादा जाये।

३. वाइसराय और अंग्रेज अफसरों को अपना काम ठीक तरह से करना चाहिए। लार्ड वैवेल राजनीतिज्ञ नहीं हैं। उनके सलाहकार लीग का पक्षपात करते हैं और भारत को स्वतंत्र नहीं देखना चाहते।

४. हर हालत में एक निश्चित तारीख को सत्ता भारतीयों के हाथों में सौंप दी जायेगी, इसकी घोषणा होना बहुत जरूरी है।

घनश्यामदासजी की ये चारों बातें ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार कर ली थीं। ब्रिटिश सरकार ने सत्ता हस्तांतरण के लिए निश्चित तारीख नियत कर दी। लार्ड वैवेल को वापस बुलाकर उनके स्थान पर लार्ड माउंटबेटन को वाइसराय बनाकर भेजा।

सन उन्नीस सौ छियालीस में अंतरिम सरकार का गठन हुआ। इसमें जितने लोग मंत्री बने, वे सब घनश्यामदासजी के मित्र थे, जैसे : जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, राजगोपालाचारी, सरदार पटेल, जगजीवनराम, आसफअली, शरदचंद्र बोस, डा० जान मथाई आदि।

तब तक माउंटबेटन भारत के गवर्नर जनरल होकर आ गये। वह भारत के दो टुकड़े—हिंदुस्तान और पाकिस्तान की योजना अपने साथ लाये। विभाजित भारत पंद्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस को स्वतंत्र हुआ।

घनश्यामदासजी ने इस तरह समूचे स्वतंत्रता-संग्राम में बहुत अहम भूमिका निबाही थी। साथ ही, वे उद्योगों के विकास में भी उतने ही सक्रिय रहे। वे चाहते थे कि अंग्रेजों से मिला गरीब और जर-जर देश तीव्र गति से विकसित हो। उद्योगों को विकसित किये बिना न तो बेकारी की समस्या हल हो सकती थी और न आर्थिक रूप से देश अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, इसी चेतना-दृष्टि के कारण सन उन्नीस सौ तीस से घनश्यामदासजी ने अपने ही उद्योगों का विकास नहीं किया, उन्होंने दूसरे व्यापारियों को भी नये-नये उद्योग खोलने को प्रेरित किया।

नौ सितंबर उन्नीस सौ सैंतालीस को बापू कलकत्ता से दिल्ली आ गये। कलकत्ता की हरिजन कालोनी पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों से भर गयी थी। दिल्ली में

वे बिड़ला हाउस में ठहरे। आज जिस सड़क का नाम 'तीस जनवरी मार्ग' है, तब उसका नाम अल्बुकर्क रोड था। बंगला नंबर पांच तब पुराना बिड़ला हाउस था।

महात्मा गांधी ने बिड़ला हाउस में उपवास शुरू कर दिया। यह उपवास विभाजन की कड़वाहट को रोकने के लिए था। वे चाहते थे कि हिंदू और मुसलमान शांतिपूर्ण ढंग से बंट जाएं, लेकिन जो खून-खराबा हो रहा था, उससे बापू का दिल हिल उठा था। घनश्यामदासजी नहीं चाहते थे कि बापू उपवास करें। वे पहले ही बहुत कमजोर थे। उसी समय सरदार पटेल बंबई जा रहे थे। उन्होंने चाहा कि घनश्यामदासजी उनके साथ चलें। घनश्यामदासजी बापू को ऐसी स्थिति में अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे। वे पशोपेश में पड़ गये और बंबई नहीं गये।

उन्हीं दिनों उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री पं० गोविंदवल्लभ पंत दिल्ली में आये हुए थे। उन्होंने कभी पिलानी नहीं देखी थी। उन्हें तथा उनके पुत्र कृष्णचंद्र पंत को पिलानी दिखाने के निमित्त घनश्यामदासजी बापू की आज्ञा लेकर पिलानी चले गये। बिड़लाजी पिलानी तो गये, परंतु वे निरंतर बापू के स्वास्थ्य के प्रति चिंतित थे। अचानक पिलानी में ही उन्हें पता चला कि गांधीजी को गोली मार दी गयी है। वे प्रार्थना सभा में थे और नाथूराम गोडसे ने उन पर गोलयां चला दीं। बापू वहीं धराशायी हो गये।

घनश्यामदासजी तुरंत दिल्ली आ गये। बिड़ला हाउस का सारा दृश्य दर्द से भरा था। "कोई कुरान पढ़ रहा था, कोई ग्रंथ साहब पढ़ रहा था, कोई गीता पढ़ रहा था।"१०५ लार्ड माउंटबेटन, जवाहरलाल नेहरू और अन्य सभी बड़े नेता बिड़ला हाउस में थे। कहीं एक तिल भी रखने की जगह नहीं थी। "गांधीजी के शव को ट्रक में डालकर लार्ड माउंटबेटन, जवाहरलालजी सब उसमें बैठकरके उन्हें ले चले। मुझे बैठने को स्थान कहां ? मुझे तो धक्के-मुक्के देकर दूर कर दिया गया। थोड़ी देर तक मैं उस जुलूस के पीछे-पीछे चला, फिर मैंने कहा, बेकार है।"१०६

बिड़ला-परिवार की ओर से कृष्णकुमारजी शव-यात्रा में गये और अंत तक रहे। उन्होंने अश्रुपूरित आंखों से देश के महान और प्रिय नेता को अग्नि के हवाले होते देखा। यह अत्यंत भाव-विह्वल दृश्य था और राजघाट के आसपास का सारा इलाका लाखों स्त्री-पुरुषों से भरा था। महात्मा गांधी के पार्थिव शरीर को लेकर भारत के प्रधानमंत्री

१०५. घनश्यामदासजी बिड़ला के अभिभाषण में राष्ट्रपिता पूज्य बापू
२४ दिसम्बर १९८१, संगीत कला मंदिर
१०६. वही

जवाहरलाल नेहरू तो चले गये, घनश्यामदासजी अकेले रह गये। उन्हें लगा, बिड़ला हाउस से इतिहास का एक जीता-जागता अध्याय चला गया है, चारों ओर सन्नाटा रह गया है।

गांधीजी की हत्या के बाद कुछ लोगों की निरंतर यह मांग थी कि बिड़ला हाउस का अधिग्रहण भारत सरकार को कर लेना चाहिए। इस संबंध में कांग्रेस पार्टी और संसद में भी कई प्रश्न उठाये गये। सात मई उन्नीस सौ अड़तालीस को प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने घनश्यामदासजी को एक पत्र लिखा…

"दिल्ली के बिड़ला हाउस को लेकर निरंतर प्रबल आंदोलन हो रहे हैं।"

उन्होंने आगे लिखा…

"मैं नहीं समझता कि यह सही रास्ता है… "

उन्होंने आगे लिखा…

"यद्यपि यह सही है कि इस संबंध में जनता की मांग बहुत प्रबल है और वह मांग किसी व्यक्ति की निजी संवेदनाओं को बहुत महत्त्व नहीं देती। जनता की इस भावना का मैं आदर करता हूं और उसे समझ सकता हूं। लेकिन जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं इस भावना से इतना प्रेरित नहीं हो सकता कि आपकी इच्छा के बिना कोई कार्यवाही करूं।"

इसी पत्र में पंडितजी ने आगे लिखा है…

"मैं अब आपके सामने आपके विचारार्थ एक प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूं। प्रस्ताव यह है कि बिड़ला हाउस यानी पूरा भवन हम नहीं लेना चाहते, वह आपके निजी उपयोग के लिए रहे। मैं नहीं चाहता हूं कि वह स्थान, जहां बापूजी रोज प्रार्थना किया करते थे और जहां उन्हें गोली मारी गयी थी, उसे मुख्य भवन तथा शेष उद्यान से अलग कर दिया जाये। इसे एक स्मारक का रूप दे दिया जाये जो जनता के दर्शनार्थ खुला रहे।"

घनश्यामदासजी का बिड़ला भवन से गहरा भावनात्मक संबंध था। वे नहीं चाहते थे कि उस भवन के टुकड़े हों। तब भी उन्होंने पंडितजी को लिखा कि वे जैसा चाहते हैं, वैसा ही किया जायेगा। घनश्यामदासजी चाहते थे कि पूरा बिड़ला हाउस प्रधानमंत्री का निवास-स्थान बना दिया जाये। इस संबंध में कुछ विचार-विमर्श के बाद पंडितजी का प्रस्ताव मान लिया गया। कुछ वर्षों के बाद यह प्रश्न फिर उठा।

इसके बाद घनश्यामदासजी ने निर्णय कृष्णकुमारजी की इच्छा पर छोड़ दिया। कृष्णकुमारजी ने घनश्यामदासजी को राजी कर लिया कि सबसे अच्छा तो यह होगा कि पूरा बिड़ला हाउस राष्ट्र को समर्पित कर दिया जाये। अपने पिताजी की सहमति प्राप्त कर कृष्णकुमारजी ने इस मामले के संबंध में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से बातचीत की। भारत सरकार ने इस मामले को उचित ढंग से नहीं सुलझाया लेकिन बिड़लाओं ने वह बिड़ला हाउस, जहां गांधीजी, घनश्यामदासजी के मेहमान बनकर ठहरे थे, राष्ट्र को समर्पित कर दिया। बाकी आस-पास की जगह सरकार ने अपने कब्जे में ले ली।

इच्छा पर छोड़ दिया।
बसे अच्छा तो यह होगा
पने पिताजी की सहमति
ीन प्रधानमंत्री श्रीमती
को उचित ढंग से नहीं
ंधीजी, घनश्यामदासजी
की आस-पास की जगह

# समृद्धि का अर्थ

घनश्यामदासजी को भविष्य में देखने की जैसे ईश्वरीय क्षमता प्राप्त थी। उनकी दृष्टि दूर देखने के साथ-ही-साथ, उनके चारों ओर वर्तमान में जो कुछ हो रहा है उसे भी सतत देखती रहती थी। जो व्यक्ति मरुभूमि में जन्म लेता है वह कैसे स्वप्न-जीवी हो सकता है। शुरू से ही वह सुनता आया है, 'सशक्त बनो, जीवन के लिए निरंतर द्वंद्व करो।' मरुभूमि से परे जो हरी धरती है उसे प्राप्त करने की इच्छा, उसके मानस को दृढ़ और उसके शरीर को बलशाली और सहनशील बना देती है। ऐसे व्यक्ति का एकमात्र लक्ष्य हो जाता है—मरुभूमि की प्राणहीन धरती को एक सुंदर उद्यान में बदल देना।

स्वभावतः घनश्यामदासजी की यही आकांक्षा थी और इसे पूरा करने की उनके अंदर क्षमता भी थी। दो अगस्त उन्नीस सौ पच्चीस को घनश्यामदासजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीनिवासजी को एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने अत्यंत सहज रूप से 'समृद्धि का अर्थ' समझाने की चेष्टा की थी। उन्होंने लिखा था, 'लोगों की सेवा करना व्यक्ति के सम्मान को नहीं घटाता ··· मैंने इस विषय पर बहुत कुछ पढ़ा है और मैं अच्छी तरह जानता हूं कि समृद्ध लोग बिलकुल बेकार होते हैं ··· वे कोई फल-प्रद काम नहीं करते और बहुत-कुछ आत्मसात करते रहते हैं। संसार के सभी दुर्गुण उनमें समाहित रहते हैं। ··· वास्तव में वे कुछ भी ऐसा नहीं करते जो उन्हें सम्मान दिलाये, लेकिन वे सम्मान की गलत धारणाएं लिये रहते हैं। ··· अच्छा काम किसी के भी सम्मान के स्तर को नीचा नहीं करता, अपितु उसे और सम्मान दिलाता है। एक आदर्श रूप से समृद्ध व्यक्ति वही है, जो अपने आपको अपनी संपत्ति का 'ट्रस्टी' समझता है। ··· इस प्रकार का आदर्श-व्यक्ति सचमुच में सम्माननीय

है । वह सबका मित्र है और सबकी सद्भावनाओं का अधिकारी ।'१०७

उनकी इसी क्षमता ने देख लिया था कि देश सही अर्थों में तभी स्वाधीन होगा जब देशवासी समृद्ध हो जाएंगे । उनके लिए समृद्धि का अर्थ केवल अपने आपको समृद्ध करना नहीं था । वह समृद्धि चाहते थे लोगों के लिए—लोगों के द्वारा । साथ ही वह यह भी चाहते थे कि जनता भी इसमें पूरा योगदान दे ।

इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्नीस सौ तीस में ही उन्होंने 'फेडरेशन आफ इंडियन चैंबर्स आफ कामर्स एंड इंडस्ट्री' के अंतर्गत एक 'स्वदेशी सभा' के निर्माण में अपना पूरा सहयोग दिया । मई उन्नीस सौ तीस में उसका संविधान तैयार हुआ । संविधान का प्रमुख लक्ष्य था—'स्वदेशी कपड़ों की कीमतों पर नियंत्रण रखना और विदेशी कपड़ों को 'स्वदेशी' नाम से बिकने न देना ।'१०८

उस समय भारत का प्रमुख उद्योग कपड़ा उद्योग ही था। अंग्रेज व्यापारी लंकाशायर की मिलों में बने कपड़े भारत में बहुत सस्ते दामों पर बेचते थे, ताकि इस उद्योग को यहां बढ़ने का कोई अवसर ही न मिले । इसके पीछे ब्रिटिश उद्योगपतियों की एक गहरी चाल थी। वे चाहते थे कि भारतीय उद्योगपति यहां कभी भी स्वतंत्र रूप से अपने पैरों पर खड़े ही न हो सकें। इसके लिए वे अंग्रेजी हुकूमत से मिलकर भारतीय उद्योगपतियों के रास्ते में तरह-तरह के अड़ंगे लगाते थे। इस मर्म को समझने वालों में जमशेदजी टाटा, बालचंद हीराचंद तथा घनश्यामदास बिड़ला प्रमुख थे ।

यह समय था आर्थिक पृथकतावाद का। हर क्षेत्र में भारतीयों को अंग्रेजों से अलग, नीचा स्थान दिया जाता था । उस पृथकतावाद ने घनश्यामदासजी के मन में यह विश्वास भर दिया कि जब तक वह अपने उद्योग न लगा लेंगे, भारत का स्वाभिमान नहीं उभर सकता ।

उद्योग-स्थापना और उसकी संचालन-कला में वे निपुण हो सकें, इसके प्रशिक्षण हेतु उन्होंने अंग्रेज व्यापारियों की कार्य-विधियों का सूक्ष्म अवलोकन और अध्ययन किया । इस तरह कठिन परिश्रम और अध्यवसाय के बल पर ही वे व्यापार-उद्योग क्षेत्र में सफल हो सके ।

उस समय भारत पर औपनिवेशिक पिछड़ेपन की एक गहरी छाप थी । लोगों में आत्मबल और आत्मविश्वास दोनों की ही कमी थी । ऐसे समय में सभी बाधाओं

१०७. लक्ष्मीनिवास बिड़ला को लिखे पत्र से
१०८. 'स्वदेशी सभा' पो. आ. दिल्ली क्लाथ मिल, १९३०

और चुनौतियों के बावजूद स्वतंत्र रूप से कपड़ा और जूट मिल की स्थापना का निर्णय लेना, किसी साहसी व्यक्ति का ही काम था ।

उस समय यह निर्णय, समृद्धि के पथ पर घनश्यामदासजी का पहला कदम था । इस दिशा में उनके चरित्र का एक विशेष गुण रेखांकित करने योग्य है । व्यक्ति के चरित्र से वह उतना ही ग्रहण करते, जितना उन्हें मूल्यवान लगता । बापू का उन्होंने सदा साथ दिया । राष्ट्रीय आंदोलन में सदा उनकी मदद की, लेकिन उद्योग के प्रति गांधीजी के दृष्टिकोण को उन्होंने स्वीकार नहीं किया ।

बंबई के पत्रकारों से उन दिनों एक बार बात करते हुए घनश्यामदासजी ने कहा था, "मुझे पुराने और नये तकनीक संबंधी झगड़े समझ में नहीं आते । भारत की तात्कालिक आवश्यकता है—'कैपिटल गुड्स'--मशीनें । मैंने रूस से एक मशीन आयात की है, यह अच्छा काम करती है । मैं इस झगड़े में क्यों पड़ूं कि वह किस देश की है । उसकी तकनीक नयी है अथवा पुरानी ।"

सार्वजनिक व्यापार-क्षेत्र तथा सरकार की आर्थिक नीतियों के प्रति उनके विचार व्यावहारिक थे । वह कहा करते थे, सरकार की आलोचना करने की अपेक्षा कहीं अच्छा है कि हम स्वयं अच्छा काम करके दिखाएं और सरकार को भी कुछ व्यावहारिक सूझ-बूझ दें । उद्योगपति घनश्यामदासजी के व्यक्तित्व में यह बात उनके पिता तथा गांधीजी और सरदार पटेल के सान्निध्य से आयी थी ।

उन्नीस सौ तीस का वर्ष उद्योगपति घनश्यामदास बिड़ला के चरित्र को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है । सन उन्नीस सौ तीस में वे फिक्की के अध्यक्ष थे । उन्नीस सौ तीस में हुई इसकी तीसरी वार्षिक सभा में काफी महत्त्वपूर्ण लोग उपस्थित थे--जैसे वाइसराय, लाला श्रीराम, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, बालचंद हीराचंद, उद्योग एवं श्रम-विभाग के सदस्य, 'धारासभा' के अध्यक्ष, वित्त-सदस्य, सर जार्ज शुस्टर, सर फ्रैंक नायस, सर आर्थर मैक्वाटर, पंडित मदनमोहन मालवीय, सर हरिसिंह आदि । उन दिनों की दो प्रमुख घटनाओं का प्रभाव इस सभा के वातावरण में व्याप्त था । पहली घटना थी वाइसराय पर हुए आक्रमण की । दूसरी घटना थी कलकत्ता की जूट मिलों में हड़ताल की । अपने अध्यक्षीय भाषण में घनश्यामदासजी ने इन घटनाओं के पीछे जो आर्थिक समस्या काम कर रही थी, उसी को प्रकट करते हुए कहा, "सारे राष्ट्रीय कार्यक्रम, विशेषतया उद्योग, मंदी में जा रहे हैं । सारे उपद्रवों का मूल यही है । इस मंदी के कारण ही चारों ओर वैमनस्य और बिखराव फैला हुआ

है । जब तक मंदी है, उद्योग के क्षेत्र में प्रगति के कोई आसार नहीं हैं ।"१०९

अपने इसी अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने स्पष्ट किया, "बाहर से गेहूं और चावल मंगाया जा रहा है, इसलिए कि हमारे उत्पादन के लिए कोई बाजार ही न रह जाये । भारत के लिए आवश्यक है निर्यात, आयात नहीं । इसी को दृष्टि में रखकर भारत की अर्थ-नीति बननी चाहिए । इंग्लैंड के पूंजी-निवेशक हमारे यहां कोई पूजी नहीं लगाते, क्योंकि निर्यात में हमें कोई फायदा नहीं है । हमारी तो हालत यह है कि हम अपना ऋण कभी नहीं उतार सकते । भारतीय जीवन की सच्चाई यह है कि लोग गरीबी में आकंठ डूबे हैं, कर के बोझ से लोग दबे हैं और उनके जीवन-स्तर को उठाने की बात आज के संदर्भ में असंभव है ।"११०

इसका क्या उपाय है? घनश्यामदासजी के शब्दों में, "भारत में उत्पादन बढ़ाना होगा । सेना के ऊपर जो खर्च होता है, वह धन ब्रिटिश सरकार को देना चाहिए । इससे भी ज्यादा जरूरी है कि उद्योग और कृषि दोनों ही क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने की नीति को सरकारी बल मिलना चाहिए ।"

उन्नीस सौ तीस में भारतीय वैज्ञानिक श्री सी० वी० रमण को भौतिक शास्त्र के महत्त्वपूर्ण आविष्कारों के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया । तब श्री रमण ने सार्वजनिक रूप से घनश्यामदासजी का आभार माना था । बिड़लाजी ने उन्हें बीस हजार रुपयों की आर्थिक सहायता दी थी । इसी राशि से श्री रमण ने विदेशों से यंत्र मंगाये थे और श्रमपूर्वक अपने प्रयोग पूरे किये थे । घनश्यामदासजी के पास उद्योग-क्षेत्र में व्यावहारिक अनुभव और सूक्ष्म आर्थिक दृष्टि थी । इन दोनों का प्रत्यक्ष प्रमाण था--द्वितीय गोलमेज परिषद में उनकी सार्थक भूमिका । अंग्रेजों की भरसक कोशिश थी कि अर्थ पर राजनीति हावी रहे । घनश्यामदासजी ने यह स्थापित कर दिखाया कि राजनीति की बुनियाद ही अर्थ है । यही कारण है कि 'गोलमेज परिषद' से लौटने के वाद घनश्यामदासजी ने जो आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक कार्य किये, उनसे यह पुष्ट हो गया कि वह समृद्धि के अर्थ को समझते थे ।

आर्थिक क्षेत्र में ओटावा कांफ्रेंस के 'ओटावा बिल' को लेकर अंग्रेजों और भारतीय उद्योगपतियों के बीच तनातनी चल रही थी । घनश्यामदासजी भी इस बिल का विरोध कर रहे थे। इस प्रसंग में सर सैमुअल होर के साथ इंग्लैंड में पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के बीच पत्रों का काफी आदान-प्रदान हुआ । पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने

१०९. फिक्की, तीसरी वार्षिक सभा, १४ फरवरी १९३०
११०. वही

लंदन से पच्चीस नवंबर उन्नीस सौ बत्तीस को घनश्यामदासजी को पत्र लिखा था कि उनके ओटावा बिल के विरोध से होर अप्रसन्न और क्षुब्ध है।

घनश्यामदासजी ने होर के अप्रसन्न होने की जरा भी परवाह नहीं की। उनके विचार स्पष्ट थे। दिसंबर उन्नीस सौ इकतीस में घनश्यामदासजी ने अपने एक अध्यापक मित्र को पत्र लिखा था। यह पत्र शायद उनकी दृढ़ विचारधारा का परिचायक है, "इंग्लैंड से अमेरिका जाता हूं तो मालूम होता है कि किसी दरिद्र स्थान से इंद्रालय की ओर जा रहा हूं। इतना ऐशो-आराम, इतनी भाग की भूख तभी तक निभ सकती है, जब तक कि खानेवाले थोड़े हों, खिलाने वाले असंख्य। इन मूल्यों में यंत्र का आविष्कार भी इसी सिद्धांत पर हुआ है। ... कुछ लोग संसार को सुखी देखना चाहते हैं, किंतु जब तक राक्षसी भूख है, तब तक संसार के लिए सुख मृगतृष्णा है। जब तक उन गोरों की भोग-पिपासा पर कुठाराघात नहीं होगा, तब तक संसार का दुख बना ही रहेगा।"[१११]

स्पष्ट है कि घनश्यामदासजी भारत के लिए एक ठोस श्रम-नीति के पक्षधर थे ताकि गरीबी दूर हो। अपनी पुस्तक 'रुपये की कहानी' में उन्होंने कई बातें स्पष्ट की हैं। उन्होंने देखा कि जनसंख्या बढ़ी है और कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्रों में उत्पादन गिरा है। फिर भी कुछ लोग, अधिकांशत: अर्थशास्त्री, मुद्रासंकोच, ब्याज की दर बढ़ाने, नोटों की चलन बंद करने की बातें करते हैं। इन अर्थशास्त्रियों की समस्त जानकारी विदेशी है। इन्हें पता नहीं है कि उद्योग और कृषि एक-दूसरे पर निर्भर हैं, जैसे बीज और पेड़। अगर कृषि-उत्पादन बढ़ाना चाहते हैं तो उद्योग पर ध्यान देना होगा।

इसी संदर्भ में आगे घनश्यामदासजी ने सात बोध-सूत्र दिये हैं—पहला प्रशासन, दूसरा लाइसेंस प्रणाली को व्यावहारिक बनाना, तीसरा मूल्य-नीति की स्पष्टता, चौथा पर्याप्त ऊर्जा, पांचवां मजदूरों और मजदूरी की सुरक्षा, छठा सुचारु परिवहन-व्यवस्था और अंतिम, सरकारी नियमों का सरलीकरण।

उनका कहना था, 'क्या हम सब उत्पादन बढ़ाने के बारे में जरा भी गंभीर हैं? क्या हम समस्या के साथ खिलवाड़ कर नहीं रहे? ... हमारे पास फालतू जन-शक्ति है, अनंत साधन हैं, बेकार पड़ी मशीनें हैं, हम उनका उपयोग क्यों न करें? हमारे पास आटा, चीनी, और घी है, आप उनसे हलवा क्यों नहीं बना सकते? पर हम हलवा नहीं बनाते, हम सब अपने को भूखा मार रहे हैं।"[११२]

---

१११. देश-विदेश में, बिखरे विचारों की भरौटी, पृष्ठ २५४
११२. रुपये की कहानी, बिखरे विचारों की भरौटी, पृष्ठ २३५, २३६

इन प्रश्नोत्तरों के भीतर घनश्यामदासजी का ध्यान उस महत्त्वपूर्ण मानवीय तथ्य पर था जिसे उन्होंने व्यक्ति-संकल्प कहा है। संकल्पवान व्यक्ति ही अपने समय की चुनौती सफलतापूर्वक स्वीकार करता है।

सन उन्नीस सौ चौंतीस में 'फिक्की' के मंच से बोलते हुए उन्होंने एक बड़े पते की बात कही थी, "मैं यह बताना चाहूंगा कि हम बाहरी विशेषज्ञों को बुलावा नहीं दे रहे हैं कि आइए और बताइए कि हमें कौन-सी योजनाएं अपनानी चाहिए और कौन-सी नहीं। मेरा मानना है कि अगर हम भारतवासी ही अपनी आर्थिक समस्याओं को नहीं जानते तो और कोई भी उन्हें जान नहीं सकता।"

घनश्यामदासजी यह मानते थे कि एक सीमा से अधिक आर्थिक असमानता समाज में पनपने देना सर्वनाश को न्योता देना है। वह रूजवेल्ट के प्रशंसक थे। रूजवेल्ट, जिसने अमेरिका जैसे विशाल देश को तीसरे दशक की भयंकर मंदी से उबार लिया। उसने निष्क्रिय पूंजी को बहुजन-हिताय लगाकर घाटे की अर्थव्यवस्था का सार्थक उपयोग करके अपने देश को घोर आर्थिक संकट से उबारा और उसे साम्यवाद की ओर जाने से बचाया।

आर्थिक क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप, घनश्यामदासजी को एक हद तक स्वीकार था, बल्कि राष्ट्रवादी होने के कारण वह इतना और भी जोड़ देते थे कि इस क्षेत्र में सफल भूमिका स्वदेशी सरकार की ही हो सकती है, विदेशी शासन की नहीं।

आर्थिक नियोजन की बात पहले-पहल घनश्यामदासजी ने ही सन उन्नीस सौ चौंतीस के लगभग उठायी। इस संदर्भ में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि आर्थिक नियोजन देश की मिट्टी, उसकी जलवायु और लोगों की प्रकृति को ध्यान में रखकर करना चाहिए। तभी यह नियोजन फल-फूल सकता है।

सन उन्नीस सौ चौंतीस में ही 'प्रोसपेरिटी' नामक उनके भाषणों का एक संग्रह 'हिंदुस्तान टाइम्स' से प्रकाशित हुआ था। उसी वर्ष जुलाई में 'पानी में मीन पियासी' नामक विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित हुआ, जिससे आर्थिक क्षेत्र में उनके असंतोष का प्रमाण मिलता है। भारत में इतने तरह के साधनों के रहते हुए भी यहां के लोग गरीब और असहाय क्यों हैं?

सन उन्नीस सौ पैंतीस में इकतालीस वर्ष की अवस्था में घनश्यामदासजी भारत-ब्रिटिश व्यापार बातचीत के लिए भारत सरकार के गैर-कानूनी सलाहकार नियुक्त

हुए। इसी सिलसिले में वे लार्ड विलिंगडन और वाइसराय दोनों से मिले।११३ उसी वर्ष गर्मियों में वे लंदन गये। बंगाल के गवर्नर ने उन्हें अपने परिचित लंदन के महत्त्व-पूर्ण व्यक्तियों के परिचय-पत्र दिये। लंदन में उनकी पहली मुलाकात इंडिया आफिस के सर फिंडलेटर स्टुअर्ट से हुई। उसके बाद घनश्यामदासजी ब्रिटेन के अर्थ-मंत्री बटलर से मिले। स्टुअर्ट और बटलर से घनश्यामदासजी की जो भी बातचीत हुई उसकी लंबी रिपोर्ट वे गांधीजी को बरावर भेजते रहे। बटलर को घनश्यामदासजी ने यह सुझाव दिया, "भारत में जो नया वाइसराय भेजा जाये उसे भारतवासियों के साथ तुरंत संपर्क स्थापित करने की पूरी ताकीद रहे। दूसरा सुझाव था कि गांधीजी को लंदन बुलाया जाये। यदि संभव हो तो उनके बुलाने का कारण कुछ और बताया जाये यद्यपि उद्देश्य रहे बातचीत करने का।"

इसके बाद घनश्यामदासजी की मुलाकातें सर बेसिल ब्लैकेट, हेनरी पेजक्राफ्ट, अनुदार दल के सदस्य और फिर मैनचेस्टर के नेताओं के साथ हुई। लार्ड लोदियन के साथ भी लंबी बातचीत हुई। इन बातचीतों में घनश्यामदासजी ने पाया कि भारत की समृद्धि के प्रति इन लोगों का रुख सहानुभूतिपूर्ण है।

उसी दौरान घनश्यामदासजी भूतपूर्व भारत मंत्री, सर आस्टिन चेंबरलेन, जिन्होंने वाइसराय का पद ग्रहण करने से इंकार कर दिया था, से मिले। वे कैंटरबरी के लाट पादरी श्री वाल्डविन, 'टाइम्स' के संपादक ज्योफरी डासन, सर वाल्ट रलेटन, 'न्यू स्टेट्समैन' के किंसले मार्टिन और 'मैनचेस्टर गार्जियन' के संपादक से भी मिले। ये सब-के-सब भारत के हितैषी होने का दम भरते थे।

इसी समय घनश्यामदासजी विंस्टन चर्चिल से भी मिले। विंस्टन चर्चिल भारत-शासन विधान बिल के सबसे बड़े विरोधी थे। इस बार घनश्यामदासजी उनसे भारत की सामान्य आर्थिक स्थिति के विषय में ही अधिकतर चर्चा करते रहे, विशेषकर भारत पर लादे गये, भारी विदेशी ऋण की।

घनश्यामदासजी इंग्लैंड में जितने दिन रहे और जितने व्यक्तियों से मिले, उन सबसे उनकी बातचीत का विषय 'विदेशी ऋण' और 'विदेशी पावना' ही रहा। उन्होंने इस आवश्यकता पर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया कि ब्रिटिश सरकार को ऐसी स्थिति पैदा करनी चाहिए, जिससे भारतीय उद्योगपति निर्यात बढ़ाकर धन अर्जित करें और अपनी वार्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद, यदि संभव हो सके तो भारत के ऋण की कुछ अंशों में, अदायगी भी कर सकें। वे 'फिस्कल कमीशन' के

११३. पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के नाम घनश्यामदासजी का पत्र, ६ फरवरी, १९२५

सदस्य रह चुके थे। उस कमीशन में बहुमत द्वारा जो सिफारिशें की गयी थीं, इंग्लैंड में इस बार उन्होंने उनकी दो-टूक आलोचना की। उन्होंने कहा कि अर्थ-नीति को जो रूप दिया जाने वाला है, उससे उत्पादकता बढ़ाने की दिशा में आवश्यक प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हो पायेगा।

लंदन में रहते हुए बिड़लाजी ने इस बात का विरोध किया कि गोल्ड स्टैंडर्ड से इंग्लैंड के अलग हो जाने के बाद भारतीय रुपये को स्टर्लिंग पौंड से संबद्ध कर दिया जाये। ब्रिटिश सरकार भारत के एक रुपये को एक शिलिंग छः पैसे के बराबर कूत रही थी और यह भारत के विदेशी व्यापार के लिए अहितकर था।

इंग्लैंड से लौटकर घनश्यामदासजी भारत में वाइसराय से मिले। वाइसराय ने कहा कि कठिनाइयों को अतिरंजित करके देखना उत्पादन में सहायक नहीं हो सकता। वाइसराय की इस बात से वे पूरी तरह सहमत थे। वह इससे भी आगे देश, राजनीति और उद्योग समुदाय में समानांतर रूप से व्याप्त भ्रष्टाचार से चिंतित थे। "इस समय कांग्रेस में पूरी तरह भ्रष्टाचार फैला हुआ है। गांधीजी और वल्लभभाई जैसे लोग इस निर्णय पर पहुंचे हैं कि अगर वे कांग्रेस से भ्रष्टाचार नहीं निकाल सके तो वे स्वयं उससे अलग हो जाएंगे। हमें भी इसी तरह से व्यापारिक संगठनों से भ्रष्टाचार उन्मूलन का संकल्प लेना चाहिए। ··· मैं यह कह सकता हूं कि ब्रिटिश सरकार भी अब गांधीजी की ओर आकृष्ट हो रही है। सरकार को यह पता चल रहा है कि वह एक ऐसे व्यक्ति हैं जो अनुशासित समाज के संरक्षक हो सकते हैं।"११४

घनश्यामदासजी का यह निश्चित मत रहा कि भारत के जिन क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना हो, उन्हीं क्षेत्रों के श्रमिक कार्य में लगें तथा उन्हीं क्षेत्र के लोगों को उन कंपनियों के शेयर-होल्डरों और डाइरेक्टरों में प्राथमिकता दी जाये। इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। बिड़लाजी द्वारा संचालित दिल्ली और ग्वालियर कपड़ा मिलों के लिए रुई पंजाब की मंडियों से खरीदकर भेजी जाती थी। उससे तैयार किये गये कपड़ों का उपयोग, विशेषतः पंजाब की जनता के लिए ही होता था। उपभोक्ताओं को रुई और कपड़े के यातायात व्यय के कारण कपड़ा महंगा न पड़े, इसलिए घनश्यामदासजी ने पंजाब प्रांत स्थित रुई के उत्पादन-केंद्र आकाड़ा मंडी, जिला मांटगुमरी (अब पाकिस्तान) में विस्तृत भूमि खरीदकर सन उन्नीस सौ पैंतीस में नयी मिल की स्थापना की। उसका नामकरण पंजाब प्रांत की बड़ी नदी सतलज के नाम पर 'सतलज

११४. पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के नाम घनश्यामदासजी का पत्र, ३ अगस्त १९३४

काटन मिल्स लिमिटेड' किया गया । उसके शेयर विशेष रूप से पंजाब की जनता को ही बेचे गये । लाहौर के रायबहादुर रामशरणदास को उस मिल का एक डाइरेक्टर नियुक्त किया गया ।

उसी समय घनश्यामदासजी को ब्रिटेन से सर रेजिनाल्ड क्लार्क का एक पत्र मिला जिसमें निवेदन किया गया था कि वे भारत में लंकाशायर के कपड़े की बिक्री में मदद दें । घनश्यामदासजी ने उत्तर दिया, "आप लोगों ने शुरू से ही अपने मामले को बिगाड़ दिया है, क्योंकि लंकाशायर वालों ने यह समझा कि यहां की सरकार के चाहने मात्र से लोग लंकाशायर के कपड़े के लिए दौड़ेंगे···। मैं एक मित्र की तरह उन लोगों को बता दूं कि यह भारी भूल होगी ।" लंकाशायर के कपड़े पर जिस तरह का कर लगाया जाता था, उसे ध्यान में रखते हुए, "उनकी यह मांग उचित नहीं थी, भारत सरकार उसके लिए बाजार की गारंटी नहीं दे सकती है। केवल कांग्रेस उनकी मदद कर सकती है जो अब विधानसभा में हैं और लंकाशायर के लिए कांग्रेस को नजरअंदाज करना ठीक नहीं ।"११५

इसके उत्तर में रेजिनाल्ड क्लार्क ने लिखा था, "मेरी राय में आप इस प्रकार मदद कर सकते हैं, लंकाशायर को यह कहा जायेगा कि व्यापार समझौते के लिए भारतीय विरोध का कारण है भारतीय उद्योगपतियों की सलाह न लेना ।"११६

इंग्लैंड की यात्रा और ओटावा कांफ्रेंस में जाकर उन्हें ऐसा लगने लगा था कि पश्चिम के नेताओं के मन में भारत एक अंधकार का ही क्षेत्र बना हुआ है । घनश्यामदासजी इसको दूर करने की कोशिश में लग गये । बीस अप्रैल उन्नीस सौ तीस को उन्होंने विंस्टन चर्चिल को पत्र लिखा । विंस्टन चर्चिल उस समय बड़ी तेजी से इंग्लैंड के एक समर्थ नेता के रूप में उभर रहे थे। उन्होंने लिखा था, "कांग्रेस के नेता और पिछली सरकार के बीच विचारों के व्यक्तिगत आदान-प्रदान के अभाव में दोनों पक्षों के बीच अविश्वास का वातावरण फैला हुआ है। ···ऐसे ही वातावरण में कांग्रेस नये विधान को अपनाने जा रही है । ··· मुझे आज भी आपकी वह बात नहीं भूलती, आपने कहा था, यदि आप अपने देशवासियों को अधिक समर्थ और समृद्ध बना सकें तो मुझे पूरा संतोष होगा । ब्रिटेन के प्रति अधिक स्वामिभक्ति की जरूरत नहीं है।"११७

उन्नीस सौ छत्तीस-सैंतीस में जब फेडरेशन की अध्यक्षता श्री देवीप्रसाद खेतान

११५. घनश्यामदासजी का सर रेजिनाल्ड क्लार्क के नाम पत्र, १६ नवंबर, १९३४
११६. क्लार्क का घनश्यामदासजी के नाम पत्र, ४-२-३५
११७. चर्चिल के नाम घनश्यामदासजी का पत्र

कर रहे थे, भारत सरकार ने ओटावा समझौते के स्थान पर एक नया समझौता करने की पेशकश करने के लिए घनश्यामदासजी को एक गैर-सरकारी सलाहकार दल का सदस्य मनोनीत किया। यह उनके उत्कर्ष का विशेष अध्याय था।

व्यवसाय और समृद्धि की चर्चा करते हुए यह भी बताना आवश्यक है कि घनश्यामदासजी में कई चारित्रिक गुण थे। जिनकी वे मदद करते थे, कई बार बताते भी नहीं थे। गुप्तदान देकर वह अपनी विशिष्टता का परिचय देते रहे हैं। उदाहरण के लिए मगनवाड़ी वर्धा से तीस अगस्त उन्नीस सौ छत्तीस को महादेवभाई का एक पत्र घनश्यामदासजी को मिला। उस पत्र से अलग विश्व भारती, शांति निकेतन, संसद की कार्रवाई की नकल भी मिली। अपने पत्र में महादेवभाई ने साठ हजार रुपयों के गुप्तदान की सहायता की सूचना दी थी। महादेवभाई को पता नहीं था कि यह गुप्तदान स्वयं घनश्यामदासजी ने किया था। यह बात जब पता चली और उनसे पूछा गया तो उन्होंने सिर्फ इतना कहा, 'इस दान के पीछे एक मर्मस्पर्शी इतिहास है, जिसे दोहराने की जरूरत नहीं है।' वह मर्मस्पर्शी इतिहास इस प्रकार है : विश्वभारती पर साठ हजार रुपये का ऋण उतारने के लिए रवींद्रनाथ टैगोर अपने नाट्य दल के साथ स्वयं दिल्ली आये थे। यह सूचना जैसे ही महात्मा गांधी को मिली, उन्होंने घनश्यामदासजी से कहा कि यह हम सब लोगों के लिए अपमान की बात है कि इस अवस्था में गुरुदेव इस तरह कष्ट उठाएं। इतना संकेत पाते ही घनश्यामदासजी ने विश्वभारती को साठ हजार रुपयों का गुप्तदान कर दिया। समृद्धि के उपयोग का यह अनोखा उदाहरण है।

इसी तरह उन्तीस अक्तूबर उन्नीस सौ बत्तीस को घनश्यामदासजी ने 'एंटी-अन्टचविल्इटि लीग' के लिए चंदा उगाहने का काम शुरू किया। उनका लक्ष्य था कि नवंबर तक कलकत्ता से एक लाख रुपये और बंबई से पचहत्तर हजार रुपये एकत्र हो जाएं। वैसे तो यह पूरी रकम वे अकेले ही दे सकते थे, लेकिन वे अपने मित्रों को इस काम में सहयोगी बनाना चाहते थे। इस संदर्भ में अपने मित्र सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास को उन्होंने सबसे पहले पत्र लिखा, "पचहत्तर हजार रुपये आप दो बंबई से। एक लाख कलकत्ता से आशा है।" ११८

विविध क्षेत्रों में बहु-आयामी ढंग से जीवन को जीने वाले घनश्यामदासजी के प्रति लोग आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे थे। यह व्यक्ति राजनीति और उद्योग

११८. पी. डी. फाइल ७२९/१९३२ नेहरू संग्रहालय पुस्तकालय

व्यवसाय, दो परस्पर विरोधी क्षेत्रों में इतनी सफलता के साथ कैसे रह रहा है। जिस अंग्रेजी शासन-व्यवस्था में उसके इतने उद्योग चल रहे हैं वह कैसे उसी शासन-व्यवस्था के खिलाफ खड़े होकर स्वतंत्रता-संग्राम में संलग्न है। इससे भी अधिक आश्चर्य भारतीयों और अंग्रेज दोनों को इस बात पर था कि इसके बावजूद 'गीता' को सदा अपने सिरहाने रखने वाला यह व्यक्ति 'रामायण', 'जीवन आदर्श', 'शुद्ध कर्म' के अर्थ को समझकर उन्हीं की प्रेरणा से अपना जीवन जी रहा है। सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास से लेकर गिलबर्ट लाफेट, विंस्टन चर्चिल, रेजिनाल्ड क्लार्क और लार्ड लोदियन आदि अनेक देशी-विदेशी नेता और उद्योगपतियों ने उनसे प्रश्न किये हैं, 'इन क्षेत्रों में रहकर आप हर समय गीता की बात क्यों करते हैं? क्या आप संन्यासी हैं?'

सर पुरुषोत्तमदास को इसका उत्तर देते हुए घनश्यामदासजी ने कहा, "मुझे ईश्वर पर पूर्ण विश्वास है, मेरी इस बात पर आपको हंसी आती है और आप मुझ पर अभियोग लगाते हैं कि मैं हर समस्या को दार्शनिक-आध्यात्मिक दृष्टि से देखने लगता हूं। पर मैं क्या करूं, यही मेरा स्वभाव है। जब व्यक्ति बेसहारा महसूस करता है तो ईश्वर ही एकमात्र सहारा है।"[११९]

सन उन्नीस सौ बयालीस के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के शांत हो जाने के बाद भारतीय जनमानस में यह विश्वास पैदा हो गया कि स्वतंत्रता अब दूर नहीं है। आंदोलनों का दौर समाप्त हो चुका था और भारतीय तथा ब्रिटिश नेताओं के बीच व्यावहारिक बातचीत प्रारंभ हो चुकी थी। घनश्यामदासजी इस समय स्वतंत्रता की प्राप्ति में सक्रिय भूमिका निभाने के अतिरिक्त भारत की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए ठोस योजनाओं के विषय में सोचने लगे थे।

समृद्धि का एक व्यापक मानचित्र उनके मानस में तैयार हो रहा था। वह चाहते थे, स्वतंत्रता के बाद भारत आर्थिक रूप से एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरे। उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता का अर्थ था--आर्थिक निर्भरता। यह केवल उनकी कल्पना नहीं थी। इस कल्पना को यथार्थ में बदलने के लिए उन्होंने एक योजना तैयार करने की सोची। बहुत से उद्योगपतियों ने मिलकर एक योजना बनायी, जिसके दो भाग थे--पहले भाग में उत्पादन पर विचार किया गया था और दूसरे में वितरण पर। चार मार्च उन्नीस सौ चवालीस की इस योजना की रूपरेखा फिक्की के वार्षिक अधिवेशन में बंबई के उद्योगपतियों, व्यापारियों और अधिकारियों के सामने घनश्यामदासजी ने प्रस्तुत की। इसका नाम पड़ा—'बांबे प्लान'।

---

११९. पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास के नाम घनश्यामदासजी का पत्र, १५ जून, १९३३

भारत में योजना से संबंधित यह पहला कदम था। घनश्यामदासजी ने, जो महात्मा गांधी के साथ देश से बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़े थे, सहज ही यह जान लिया कि स्वतंत्रता की ओर बढ़ने की इच्छा जाग उठी है।

'बांबे प्लान' में भारत की दरिद्रता को मिटाकर, देश को समृद्ध बनाने के उपायों की घनश्यामदासजी ने गंभीर विवेचना की, "एक अंग्रेज साल भर में जितनी रकम अपनी सिगरिटों पर खर्च करता है, उतना ही एक भारतीय साल भर में उपार्जन करता है।"१२०

यह घनश्यामदासजी के लिए एक डरावना चित्र था। उन्होंने सबसे पहले यह स्पष्ट किया कि भारत में समृद्धि के आधारभूत तत्त्वों—खनिज, जंगल और श्रम—किसी वस्तु का अभाव नहीं है। अभाव है तो उनके ठीक प्रयोग का।

'बांबे प्लान' की रूपरेखा के संबंध में उन्होंने कहा कि इसकी कोई सुनिश्चित रूपरेखा नहीं है। इसे कार्यरूप देते समय अनेक परिवर्तन करने होंगे। यह कथन एक अत्यंत व्यावहारिक व्यक्ति का है जो यह जानता है कि केवल योजना बना देने से ही काम सफल नहीं हो जाता। योजना के बावजूद भूलें होती रहती हैं, क्योंकि कोई भी योजना हर तरह से संपूर्ण नहीं हो सकती।

'बांबे प्लान' का लक्ष्य था—हर व्यक्ति को खाना, कपड़ा, मकान, शिक्षा और स्वास्थ्य की न्यूनतम मात्रा उपलब्ध हो, ताकि उसे सामाजिक आधार मिल सके।

खाना, कपड़ा और मकान की न्यूनतम मात्रा थी, अट्ठाईस सौ उष्मांक (कैलोरी) का संतुलित भोजन, तीस गज कपड़ा और सौ वर्ग फुट की एक साफ-सुथरी जगह।१२१

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दस हजार करोड़ रुपये का नियोजन आवश्यक था। इस रकम का कुछ भाग कृषि और कुछ उद्योग के क्षेत्र पर खर्च किया जाना चाहिए। साथ ही सामाजिक कार्यक्रम—जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, यातायात—पर भी कुछ खर्च करना आवश्यक है।

घनश्यामदासजी ने बार-बार दोहराया है कि योजनाएं तभी कुछ करने में सक्षम होंगी, जब देश स्वतंत्र हो जायेगा। वे उथल-पुथल की क्रांति से स्वतंत्रता प्राप्त करने

---

१२०. 'बांबे प्लान' से उद्धृत

१२१. वही

के पक्ष में नहीं थे। उथल-पुथल की क्रांति चाहे जिस उद्देश्य के लिए की गयी हो, अपने पीछे विनाश ही छोड़ जाती है। समृद्धि के अर्थ को सही ढंग से समझने वाले घनश्यामदासजी इसी कारण उथल-पुथल की क्रांति को स्वराज का ठीक रास्ता नहीं मानते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपने सहकर्मियों से यह अनुरोध किया कि यद्यपि बहुत से नेता अब भी बंदी हैं, तथापि योजना का काम शुरू कर दिया जाना चाहिए, ताकि स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देश समृद्धि की ओर सुचारु रूप से आगे बढ़ सके। कुछ समाजवादी विचारोंवाले व्यक्तियों ने 'बांबे प्लान' को सिर्फ इसलिए दोषपूर्ण बताया कि वह पूंजीपतियों द्वारा बनाया गया था। इसका उत्तर देते हुए घनश्यामदासजी ने कहा कि दुनिया में हर जगह लोग किसी-न-किसी 'वाद' के शिकार हैं। वह तो सिर्फ उसी 'वाद' को महत्त्वपूर्ण मानते हैं जो भारत को संसार में एक स्वतंत्र, सम्मानित और समृद्ध राष्ट्र बना दे।

घनश्यामदासजी ने उन लोगों की भी आलोचना की जो भारत की समृद्धि को सिर्फ कृषि के क्षेत्र में बांधकर रखना चाहते थे। वे जानते थे कि केवल कृषि के बल पर आधुनिक युग में कोई भी देश पूरी तरह समृद्ध नहीं हो सकता। भारत-जैसा विशाल देश तो कदापि नहीं, जहां अनंत साधन उपलब्ध हैं। अभाव है तो केवल सुनियोजन का।

घनश्यामदासजी चाहते थे कि देश की कृषि-आबादी घटे, इसके बिना समृद्धि असंभव है। कृषक भारत में आवश्यकता से अधिक हैं, जिन्होंने भूमि पर बेहद दबाव डाल रखा है। इसके फलस्वरूप उनके पास पूरे समय का काम भी नहीं होता है। इस कारण घनश्यामदासजी के विचार से कृषि-क्षेत्र की आबादी को घटाकर पचास-साठ प्रतिशत कर देना चाहिए और बची आबादी के बड़े हिस्से को उद्योगों में लगाने के लिए देश का औद्योगीकरण तेजी से होना चाहिए। ऐसा ही करके जापान तेजी से समृद्ध हो गया है। इस बात का आंकड़ों सहित उदाहरण देकर उन्होंने अपनी बात को स्पष्ट किया।

योजना के लिए सबसे बड़ी कठिनाई वित्त की है, कुछ नेताओं ने ऐसा कहा था, लेकिन उन्होंने एक सुलझा हुआ हल निकाल दिया। औद्योगीकरण के लिए विदेशों से ऋण लेने की बात करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि जनसंख्या यदि नहीं बढ़ी तो देश का जीवन-स्तर पंद्रह सालों में दो सौ प्रतिशत ऊंचा उठ जायेगा। ऋण की अदायगी निर्यात से हो जायेगी। इन सारी बातों को उन्होंने पहले एक विशेषज्ञ

अर्थशास्त्री की तरह समझाया और उसी को फिर जन-सामान्य की सरल भाषा में खोलकर स्पष्ट किया ।

कृषि, उत्पादन, श्रम और धन के संबंधों का अच्छी तरह विश्लेषण करते हुए घनश्यामदासजी ने अंत में कहा, "इस योजना को बौद्धिक मनोरंजन कहना एक बड़ी भूल होगी ।"१२२ उन्होंने यह बताया कि यह योजना कार्यरूप में कई बार बदल जायेगी और इस प्रकार इसमें जो खामियां हैं, वे दूर की जायेंगी ।

घनश्यामदासजी में मैत्री बनाये रखने के अनेक गुण थे । वे एक साथ कई व्यक्तियों के रूप में भी जिया करते थे । आठ जनवरी उन्नीस सौ बयालीस को आनंद भवन इलाहाबाद से जवाहरलाल नेहरू का एक पत्र घनश्यामदासजी को मिला । उस पत्र में जवाहरलालजी ने अपनी एक अत्यंत व्यक्तिगत समस्या के बारे में लिखा था । समस्या थी महायुद्ध के कारण पेट्रोल की कमी की । इसी से वह कार को छोड़कर अब साइकिल की सवारी करना चाहते थे । इलाहाबाद में स्वदेश में बनी साइकिल उपलब्ध नहीं थी और विदेशी साइकिल जवाहरलालजी खरीदना नहीं चाहते थे ।१२३ उस समय भारत में बिड़ला-बंधु ही एकमात्र स्वदेशी साइकिलों के निर्माता थे ।

जवाहरलालजी के पत्र के उत्तर में घनश्यामदासजी ने लिखा, "आपका पत्र पाते ही बंबई में अपने भाई रामेश्वरदास को लिख दिया है कि वह आपके लिए दो साइकिलें तुरंत रवाना कर दें । हो सकता है कि आपसे पसंद कराने के लिए वर्धा में ही कोई आपको साइकिलों के साथ मिले ।"१२४

अपने इस पत्र में उन्होंने उस समय के एक ज्वलंत प्रश्न की भी चर्चा की । उन्होंने हिंदू-मुसलमान की सांप्रदायिक समस्या और पाकिस्तान-निर्माण को आर्थिक दृष्टि-कोण से देखते हुए लिखा, "यदि मैं मुसलमान होता तो कभी भी पाकिस्तान स्वीकार नहीं करता, क्योंकि वह पृथक मुस्लिम भारत एक निर्धन देश होगा । वहां न कोयला होगा और न लोहा ।"१२५

किसी भी उद्योग के लिए कोयला और लोहा, ये दो बुनियादी साधन हैं । इनके बिना समृद्धि की कल्पना नहीं का जा सकती । जवाहरलाल नेहरू को लिखे पत्र में उन्होंने साइकिल की बात को केवल एक वाक्य में ही पूरा कर दिया है । शेष पूरे पत्र

१२२. बांबे प्लान से उद्धृत
१२३. घनश्यामदासजी के नाम नेहरूजी का पत्र
१२४. नेहरूजी को घनश्यामदासजी का पत्र
१२५. वही

में जिन मुद्दों को लेकर जो चिंता अभिव्यक्त की है, उससे पता चलता है, घनश्यामदासजी के व्यक्तित्व का निर्माण किन निश्चयात्मक तत्त्वों से हुआ था। वे जब दिल्ली में रहते तो उद्योग-व्यापार से अपना पूरा ध्यान हटाकर केवल सार्थक राजनीति में व्यस्त रहते। राजनीति का उनके उद्योग-व्यापार से कोई संबंध नहीं था। दिल्ली से जब कलकत्ता पहुंचते तो उनका पूरा व्यक्तित्व सहज ही एक कर्मठ उद्योगपति बन जाता। उनके इस व्यक्तित्व में तब राजनीति की कहीं कोई गुंजाइश नहीं होती। कार्यालय से घर पहुंचते ही उनका व्यक्तित्व शुद्ध पारिवारिक हो उठता, जिसकी सीमाएं बढ़कर समाज तक चली जातीं।

सन उन्नीस सौ पैंतीस-छत्तीस तक बिड़ला ब्रदर्स के दस बड़े उद्योग थे—चार कपड़े की मिलें, पांच चीनी की मिलें और एक जूट मिल। युद्ध के दिनों में भी बिड़ला-बंधु का विकास तेजी से हुआ। उनका कार्यक्षेत्र बढ़ा। उनके पास बाईस बड़े-बड़े कारखाने हो गये, जिनकी पूंजी बीस करोड़ थी। इसी समय घनश्यामदासजी ने पूंजी संग्रह की कुछ विशेष विधियों की रचना की और उनका अवलंबन लिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध काल में घनश्यामदासजी ने उद्योग क्षेत्र में समृद्धि अर्जन के अतिरिक्त अपनी कई पारिवारिक जिम्मेदारियां भी निभायीं। अपनी दूसरी बेटी अनुसूया का नरेंद्रसिंह तापड़िया के साथ रिश्ता तय किया। नाते-रिश्तेदारों ने यह टिप्पणी की कि लड़के की हैसियत विशेष कुछ नहीं है। घनश्यामदासजी ने इन बातों पर जरा भी ध्यान नहीं दिया। वे यही मानते थे कि रिश्ते तय करते समय पूरा ध्यान वर पर होना चाहिए। वे यह नहीं देखते थे कि वर-पक्ष वाले भी उतने ही धनी हों। अनुसूया का विवाह अठारह फरवरी उन्नीस सौ इकतालीस को संपन्न हुआ।

इसके बाद ही घनश्यामदासजी ने अपनी सबसे छोटी और मुंहलगी बेटी शांति का रिश्ता कृष्णगोपाल माहेश्वरी से तय किया। यह शादी बंबई में सोलह फरवरी उन्नीस सौ इकतालीस को हुई। अप्रैल में मैट्रिक की परीक्षा थी। शांतिबाई परीक्षा नहीं दे सकीं। कैम्ब्रिज परीक्षा का फार्म भी समय पर नहीं पहुंचा, तब वह बहुत रोयीं, छटपटायीं। उस समय पिता ने उन्हें समझाया, "असली परीक्षा मैट्रिक की या कैम्ब्रिज की नहीं होती, असली परीक्षा तो वह है जो जीवन में रोजाना चलती रहती है। उसकी सफलता वहीं देखी जाती है। खाली डिग्री लेने से कोई सफल नहीं हो जाता।"१२६

१२६. शांतिबाई से साक्षात्कार

इस विवाह के बाद घनश्यामदासजी ने अपनी लड़कियों को अनेक पत्र लिखे हैं। उनमें उनकी मां और पिता वाली दोहरी भूमिका स्पष्ट है --"तुम पढ़ी-लिखी हो, तुम्हें इन लोगों की भलाई के कामों में दिलचस्पी लेनी चाहिए, कुछ सेवा भी करनी चाहिए। सेवा बिना जीवन ऐसा है जैसा बिना प्राण का शरीर।"१२७

अपने जामाता कृष्णगोपालजी को भी घनश्यामदासजी बराबर शिक्षा भरे पत्र भेजते रहे। उद्देश्य था, जामाता में छिपी हुई रचनात्मक शक्ति को जगाना और उनमें जीवन के प्रति उत्साह भरना। सफलता की कुंजी को बताते हुए उन्होंने लिखा, "मेरा सदा से ख्याल रहा है कि संसार में महज अक्ल के बल पर कोई नहीं जीत सकता। सफलता की कुंजी लगन, सरलता, अध्यवसाय, गहरा उतरने की आदत और दृढ़ता है। उत्साह और विवेक दोनों रहें। पढ़ना इसीलिए है और उस पढ़ी हुई चीज को काम में लाना और गुनना है। व्यवसाय में सबसे बड़ी चीज है ईमानदारी।"१२८

शिक्षा को जीवन के लिए आवश्यक मानते हुए भी उन्हें स्कूली शिक्षा के ऊपर विश्वास नहीं था। बड़े पुत्र लक्ष्मीनिवासजी को तो मैट्रिक के बाद ही उन्होंने व्यवसाय में लगा दिया था। पटसन की दलाली और सूती-कपड़ा मिलों के संचालन के अनुभव के बाद उन्होंने बीमा के काम में बहुत दिलचस्पी ली और फिर कोयला-खनन को अपना विशेष क्षेत्र बनाया।

दूसरे पुत्र कृष्णकुमारजी मैट्रिक पास करने के बाद कालेज में पढ़ना चाहते थे। वे प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे और अपनी कक्षा में हमेशा उच्च श्रेणी प्राप्त किया करते थे। सन उन्नीस सौ पैंतीस में जब वे कलकत्ता विश्वविद्यालय से मैट्रिक की परीक्षा में बैठे थे तो उत्तीर्ण होने वाले पच्चीस हजार विद्यार्थियों में उनका ग्यारहवां नंबर था। कृष्णकुमारजी ने जो यह विशेष योग्यता पायी, उससे घनश्यामदासजी बहुत प्रसन्न हुए। इसके बावजूद वे नहीं चाहते थे कि कृष्णकुमारजी आगे कालेज की पढ़ाई करें। उनका विश्वास था कि घर में जो शिक्षा दी जाती है, वह अधिक प्रभावशाली होती है। उनका यह विचार उस समय था। आगे चलकर घनश्यामदासजी ने अपना यह विचार बदल दिया और अपने पौत्र आदित्य विक्रम को हाईस्कूल की पढ़ाई के बाद मेसाच्यूसेट्स भेजा, वहां एम० आई० टी० (मेसाच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी) से उन्होंने केमिकल इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त की। इसके पहले घनश्यामदासजी घर में दी जाने वाली शिक्षा पर बहुत जोर दिया करते थे। उन्होंने

१२७. शांतिबाई के नाम घनश्यामदासजी का पत्र
१२८. घनश्यामदासजी का कृष्णगोपाल के नाम पत्र

अनेक पत्र लिखे हैं।
'तुम पढ़ी-लिखी हो,
कुछ सेवा भी करनी
१२७

बर शिक्षा भरे पत्र
जगाना और उनमें
हुए उन्होंने लिखा,
पर कोई नहीं जीत
रने की आदत और
उस पढ़ी हुई चीज
मानदारी।"१२८

ूली शिक्षा के ऊपर
ही उन्होंने व्यवसाय
संचालन के अनुभव
ा-खनन को अपना

पढ़ना चाहते थे।
प्राप्त किया करते
ैट्रिक की परीक्षा
का ग्यारहवां नंबर
यामदासजी बहुत
कालेज की पढ़ाई
धिक प्रभावशाली
दासजी ने अपना
ईस्कूल की पढ़ाई
इंस्टीट्यूट आफ
। इसके पहले
रते थे। उन्होंने

मदासजी का पत्र
ोपाल के नाम पत्र

स्वयं अपना उदाहरण देते हुए कृष्णकुमारजी को समझाया कि वे व्यापार का काम संभालें और चाहें तो साथ-साथ स्वयं पढ़ते भी रहें। कृष्णकुमारजी अपनी बात पर अड़े रहे। घनश्यामदासजी ने उनकी यह जिद देखकर अंत में उन्हें कालेज में भरती होने की आज्ञा दे दी। कृष्णकुमारजी ने दिल्ली में हिंदू कालेज में प्रवेश लिया। बिड़ला-परिवार में वे पहले व्यक्ति थे जो कालेज तक गये थे। उन्होंने उन्नीस सौ सैंतीस में हिंदू कालेज से विज्ञान में इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की और दिल्ली विश्वविद्यालय में सातवां स्थान प्राप्त किया। यद्यपि उन्हें परीक्षा में इससे और ऊंची श्रेणी मिलती, लेकिन ऐसा नहीं हो सका, क्योंकि पढ़ाई के साथ-साथ उनके पिताजी ने अपने बहनोई श्री बंशीधर डागा के साथ व्यापार संभालने की भी आज्ञा दी थी। बंशीधरजी, जो पहले दिल्ली रहते थे, कलकत्ता चले गये।

इंटरमीडिएट पास करने के बाद कृष्णकुमारजी आगे पढ़ना चाहते थे, लेकिन वे गंभीर रूप से बीमार पड़ गये और उन्हें कालेज छोड़ना पड़ा।

बीमारी भी साधारण नहीं थी। उनको हल्का-सा बुखार रहने लगा था और खांसी भी आती थी। कलकत्ता और दिल्ली के विख्यात डाक्टरों ने कृष्णकुमारजी की जांच की। इन जांच करने वालों में उस समय समूचे देश में विख्यात डा० विधानचंद्र राय भी थे। डा० विधानचंद्र राय ने बताया कि संदेह तपेदिक का है। यह सुनते ही घनश्यामदासजी बेहद परेशान हुए। उन्हें इस बीमारी का कटु अनुभव हो चुका था, क्योंकि सन उन्नीस सौ छब्बीस में तपेदिक से ही उनकी पत्नी का देहांत हो गया था। अब क्या दूसरा लड़का भी उसी बीमारी का शिकार हो गया है? उन दिनों तपेदिक का कोई इलाज नहीं था। घनश्यामदासजी ने तय किया कि कृष्णकुमारजी को इलाज के लिए स्विटजरलैंड भेजा जाये। इसके पहले उन्होंने गांधीजी से सलाह ली। गांधीजी ने सलाह दी कि वे कृष्णकुमारजी को अल्मोड़ा भेजें, जहां की जलवायु ऐसी बीमारी के इलाज के लिए अच्छी है। कृष्णकुमारजी को सन उन्नीस सौ अड़तीस में अल्मोड़ा भेजा गया, जहां वे पांच महीने रहे। पांच महीनों के बीच उन्होंने पूरी तरह स्वास्थ्य-लाभ कर लिया। कृष्णकुमारजी को यह विश्वास था कि उन्हें यह 'स्वास्थ्य-लाभ दवाओं की अपेक्षा कहीं अधिक गांधीजी के आशीर्वाद से मिला है। इस बीमारी के कारण उनका एक साल वैसे ही खराब हो गया था, इसलिए अब कालेज में प्रवेश लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। तब घनश्यामदासजी ने उन्हें सलाह दी कि वे व्यापार संभालें। उन्होंने यही किया। उनकी रुचि पढ़ाई की ओर बहुत थी, इसलिए व्यापार में प्रशिक्षण लेते हुए भी उन्होंने प्रभाकर (हिन्दी में विशेष योग्यता) की



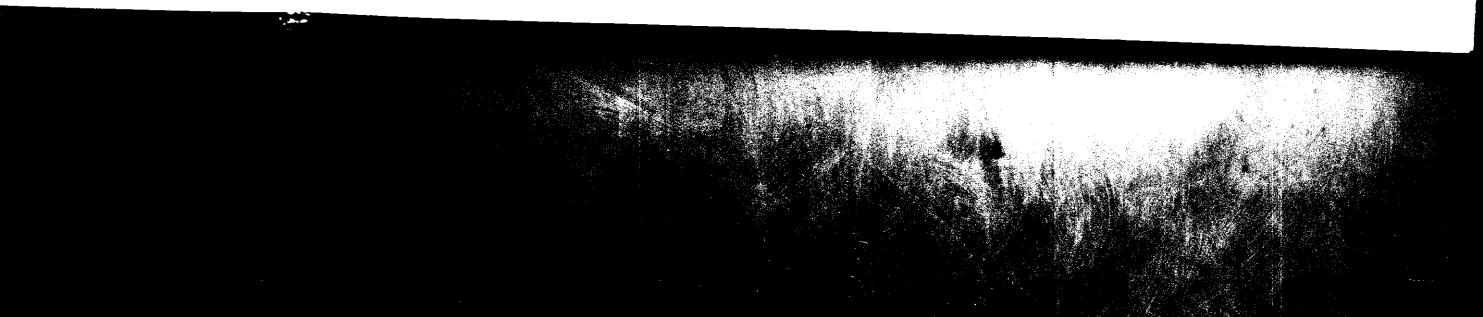

पढ़ाई प्राइवेट ढंग से शुरू की। सन उन्नीस सौ उन्तालीस में पंजाब विश्वविद्यालय से उन्होंने प्रभाकर की परीक्षा पास की और पूरे विश्वविद्यालय में पांचवां स्थान प्राप्त किया।

सन उन्नीस सौ अड़तीस में कृष्णकुमारजी दिल्ली से कलकत्ता आये और बिड़ला जूट मिल्स और केशोराम मिल में लेखे-जोखे का काम सीखना शुरू कर दिया। व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र में घनश्यामदासजी के प्रशिक्षण देने का पहला पाठ था—समृद्धि की आधारशिला है अंकों का सम्यक् ज्ञान।

उद्योग संचालन, वित्त प्रबंध और अर्थ नियंत्रण के लिए घनश्यामदासजी की अपनी बनायी हुई प्रणाली थी। ये सारी विधियां उनके मैनेजरों को सीखनी पड़तीं। एक साधारण कर्मचारी की तरह कृष्णकुमारजी को उद्योग की सारी बुनियादी शिक्षाएं लेनी पड़ीं, "बीच-बीच में पिताजी मुझे बुलाते और मुझसे काम के बारे में जवाब-तलब करते। मेरे बारे में वह लेखा-विभाग के अधिकारियों से भी बराबर पूछताछ करते कि मैं कैसा काम कर रहा हूं?"

कृष्णकुमारजी के अनुसार, घनश्यामदासजी कहते थे, "जिन प्रबंधकों के नीचे तुम्हें सीखने भेजा जा रहा है, उनसे काम तभी सीख सकोगे जब सचमुच अपने को उनके मातहत मानोगे। स्वामित्व वाले भाव से जाओगे तो सिफर-के-सिफर लौट आओगे।"

इसी दृष्टि से घनश्यामदासजी ने अपने सबसे छोटे पुत्र, बसंतकुमारजी को प्रशिक्षित किया। प्रशिक्षण काल में उन्होंने बसंतकुमारजी को अपने ही मातहत रखा। यह प्रशिक्षण लगातार पांच साल तक चला, "पिताजी ने मुझे सन उन्नीस सौ छत्तीस से लेकर सन उन्नीस सौ चालीस के बीच व्यवसाय के लिए पूरी तरह से तैयार किया। उन्होंने स्वयं मुझे 'कठिन प्रशिक्षण' दिया। कठिन प्रशिक्षण इसलिए था कि मैं उनकी तरह बिलकुल 'ठीक' और 'सही' ढंग से काम करना सीख लूं। अगर मैं उनको कोई चीज अंदाज से बताता तो पहले वे काफी नाराज होते और फिर बड़े धैर्य से उसे समझाते। वे कहते थे, 'बात तुम्हें पक्की मालूम हो तभी उत्तर दो—सोचकर, समझ-कर उत्तर दो।' उनका यह मानना था कि लेखा में निष्णात हो जाने पर सब-कुछ समझ में आ जायेगा। उत्पादन, बिक्री और फैक्ट्री की देखभाल (प्रोडक्शन, सेल्स और फैक्ट्री) सभी की ट्रेनिंग हुई।"१२९

१२९. बसंतकुमारजी से साक्षात्कार

दूसरे विश्वयुद्ध के समय घनश्यामदासजी राजनीति के साथ-साथ औद्योगिक विकास के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग कर रहे थे। उस समय आर्थिक नियंत्रण और उद्योग संचालन के जो तरीके उन्होंने अपनाये, उनके कारण प्रबंधकों को बहुत कम निर्देश देने की जरूरत होती थी । उनकी बतायी पद्धति पर उद्योग जैसे स्वतः ही चलते रहते । इसी कारण इतने उद्योगों के स्वामित्व को संभालते हुए भी घनश्यामदासजी राजनीति, समाजसेवा, शिक्षा आदि क्षेत्रों में इतनी उपलब्धियां प्राप्त कर सके ।

जो लोग अपने व्यापार और उद्योग चलाते हैं, बहुधा अपने परिवार के लिए भी समय नहीं निकाल पाते, लेकिन घनश्यामदासजी में ऐसा नहीं था । जीवन को भव्य बनाने के सभी गुर उन्हें मालूम थे । समृद्धि के अर्थ को समझकर उन्होंने अपने व्यक्तित्व में नये-नये आयाम जोड़ लिये ।

सन उन्नीस सौ चालीस में घनश्यामदासजी को लगा कि द्वितीय पुत्र कृष्णकुमारजी अब पूरी तरह स्वस्थ हो गये हैं और तब उन्हें उनकी सगाई की फिक्र हुई । रिश्ते तो बहुत आ रहे थे, लेकिन घनश्यामदासजी के मन के लायक लड़की नहीं मिल रही थी । तापड़िया परिवार से एक अच्छा रिश्ता आया । इसी परिवार में उनके छोटे भाई ब्रजमोहनजी का विवाह हुआ था । इस परिवार के साथ, पुराने विचार वाले और नये विचारवाले माहेश्वरियों के संघर्ष के दिनों में, बिड़ला-परिवार की कुछ कटुता हो गयी थी । इस कटुता को मिटाने का काम किया था दोनों परिवार के मित्र रामकुमार केजरीवालजी ने । अंततः, तीन जुलाई उन्नीस सौ इकतालीस को कलकत्ता में धूमधाम से कृष्णकुमारजी का विवाह मनोरमा देवी के साथ संपन्न हुआ । मनोरमाजी का स्वभाव अत्यंत सहज, सीधा और सरल है ।

अब छोटे पुत्र बसंतकुमारजी के विवाह की बारी थी । उनका विवाह विदर्भ (अकोला) के श्री ब्रजलाल बियाणी की पुत्री से तय हुआ । वे वही बियाणीजी थे, जिन्होंने उन्नीस सौ बाईस में कलकत्ता में माहेश्वरी समाज को आपसी झगड़ों के कारण विघटित होने से बचाया था । घनश्यामदासजी की तरह समाज-सुधार के क्षेत्र में--वृद्ध विवाह, मृत्यु-भोज, दहेज, पर्दा-प्रथा आदि--कुरीतियों को हटाने के लिए इन्होंने महत्त्वपूर्ण कार्य किये थे ।

बियाणीजी के जीवन पर दो व्यक्तियों का प्रभाव था । उनमें से एक थे महात्मा गांधी और दूसरी थीं उनकी पत्नी श्रीमती सावित्री देवी । सावित्री देवी स्नेह और श्रद्धा की प्रतिमूर्ति थीं । उनके यही गुण कन्या सरला को विरासत में मिले थे । सरला को पिता की ओर से विद्या, चरित्र और सेवाभाव--ये तीन विशेषताएं मिली थीं ।

तीस अप्रैल उन्नीस सौ बयालीस को सरलाजी बसंतकुमारजी की धर्मपत्नी बनकर बिड़ला-परिवार में आयीं।

घनश्यामदासजी ने जो पत्र इस विवाह की चर्चा करते हुए अपनी बेटियों को लिखे थे, उनसे स्पष्ट है कि उनके लिए बसंत-सरला का यह विवाह एक महत्त्वपूर्ण पारिवारिक घटना थी। घनश्यामदासजी उससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने एक नयी परंपरा का आरंभ किया—अपनी पुत्रवधू से पत्राचार का क्रम शुरू किया। उनके पत्रों की कुछ पंक्तियां उल्लेखनीय हैं : "संगीत सीखती हो, यह भी अच्छा है।··· अध्ययन में संस्कृत का स्थान होना चाहिए।··· इसके अलावा भोजन, विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान और सेवा-सुश्रूषा विज्ञान भी जानना चाहिए।··· कातना। गांधीजी ने विशेष कहलवाया था कि लड़कियां कातें तो मुझे सुख होगा।" सरलाजी के माध्यम से उन्होंने बसंतकुमारजी को भी मार्गदर्शन देना चाहा, "बसंत ने जो हरिजन-आश्रम की योजना तैयार की थी, वह कागज तक सीमित रही। परमार्थ का कुछ काम करना चाहिए। धन के लोभ में तुम लोग कर्त्तव्य भूल बैठोगे।··· जो लोग अपने जीवन में शुभ कार्य नहीं करते, उनका जीवन निकम्मा है। इसलिए कुछ करो और शीघ्र करो।"[१३०]

चौदह नवंबर उन्नीस सौ तैंतालीस को दिल्ली में बसंतकुमारजी की प्रथम संतान का जन्म हुआ, जिसका नाम स्वयं घनश्यामदासजी ने आदित्य विक्रम रखा। 'आदित्य' और 'विक्रम' दोनों शब्दों के चयन में उन्होंने अपने वंश का तेज, प्रताप और भविष्य सब-कुछ उसमें समा दिया।

१३०. घनश्यामदासजी का सरलाजी के नाम पत्र, ५ अप्रैल १९४२